MAHIN-502

हिंदी गद्य साहित्य I

MA HINDI

3rd Semester

Rajiv Gandhi University

ww.ide.rgu.ac.in

हिंदी गद्य साहित्य -I

एम.ए. (हिंदी)

(तृतीय सत्र)

MAHIN-502

RAJIV GANDHI UNIVERSITY

Arunachal Pradesh, INDIA – 791 112

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. Of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. Of Hindi Delhi University	**External Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. Of Hindi Guwahati University	**External Member**
Prof. Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. Mohammad Erfan, Dr. Laxmi Pandey, Dr. Suresh Acharya, Yatindra Naath Gaur, Dr. Abha Gupta Thakur

Revised Edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Infomation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, IDE-Rajiv Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use"

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.
Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD
E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999
Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055
Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख उच्च संस्थानों (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के शैक्षिक परिदृश्य में (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा .मी . हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमफिल व . एड का कोर्स भी चलाता है। .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .पी

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देशविदेश के -

प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र परीक्षाओं में भी NET | सफल हुए हैं

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है |

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक बाधाओं को दूर करने का - यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी - भारत के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते हुए (आईटीई) आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री** -**(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक -**(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों के लिए सीसीपी .ए.

के लिए सीसीपी में उपस्थिति अनिवार्य .ए.अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

हिंदी गद्य साहित्य-I

Syllabi- MAHIN-502	Mapping in Book
इकाई : 1 परिचय; गोदान- व्याख्या खंड; गोदान एवं भारतीय किसान; गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न; दलित चेतना; स्त्री चेतना; महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गोदान; गोदान में आदर्श और यथार्थ; गोदान में चित्रित यथार्थ; गोदान में चित्रित आदर्श; गोदान का भाषा शिल्प	**इकाई 1 : गोदान (मुंशी प्रेमचंद)**
इकाई 2 : परिचय; पात्र परिचय एवं व्याख्याएं **;** पात्र परिचय; व्याख्या ; आधे-अधूरे में आधुनिकता बोध **;** आधे-अधूरे की प्रयोगधर्मिता	**इकाई 2 : आधे-अधूरे (मोहन राकेश) – I**
इकाई 3 परिचय **;** हृदय - बालकृष्ण भट्ट**;** व्यक्तित्व एवं कृतित्व**;** हृदय-मूल पाठ**;** बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली**;** हृदय प्रतिपाद्य**;** हृदय समीक्षात्मक अध्ययन**;** काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था - रामचंद्र शुक्ल**;** व्यक्तित्व एवं कृतित्व**;** काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था- मूल पाठ**;** निबंध शैली**;** काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : प्रतिपाद्य**;** काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : समीक्षात्मक अध्ययन	**इकाई 3 : निबंध – I**
इकाई 4 परिचय**;** 'उसने कहा था' - चंद्रधर शर्मा गुलेरी**;** लेखक परिचय ; उसने कहा था मूल पाठ**;** चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं **;** कहानी का सार**;** कहानी की समीक्षा**;** कहानी कला के तत्व और 'उसने कहा था'**;** महत्वपूर्ण व्याख्याएं**;** ठाकुर का कुआं मुंशी प्रेमचंद**;** लेखक	**इकाई 4 : कहानी – I**

परिचय; ठाकुर का कुआ मूल पाठ; प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएं; कहानी का सार; कहानी की समीक्षा; कहानी कला के तत्व और ठाकुर का कुआ; महत्वपूर्ण व्याख्याएं	
इकाई 5 परिचय; यात्रावृत्त : 'परशुराम से तुरख' तक अज्ञेय; परशुराम से तूरखम (एक टायर की रामकहानी); लेखन शैली; रिपोर्ताज : 'ऋणजल-धनजल' फनीश्वरनाथ 'रेणु'; ऋणजल – धनजल; लेखन शैली; साहित्यिक अवदान; रेखाचित्र : 'भाभी' – महादेवी वर्मा ; भाषा शैली	**इकाई 5 : यात्रावृत्त, रिपोर्ताज,रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी – I**

विषय-सूची

परिचय

इकाई 1 : गोदान (मुंशी प्रेमचंद)

1.0 परिचय
1.1 गोदान- व्याख्या खंड
1.2 गोदान एवं भारतीय किसान
1.3 गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न
    1.3.1 दलित चेतना
    1.3.2 स्त्री चेतना
1.4 महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में गोदान
1.5 गोदान में आदर्श और यथार्थ
    1.5.1 गोदान में चित्रित यथार्थ
    1.5.2 गोदान में चित्रित आदर्श
1.6 गोदान का भाषा शिल्प

इकाई 2 : आधे-अधूरे (मोहन राकेश) – I

2.0 परिचय
2.1 पात्र परिचय एवं व्याख्याएं
    2.1.1 पात्र परिचय
    2.1.2 व्याख्या
2.2 आधे-अधूरे में आधुनिकता बोध
2.3 आधे-अधूरे की प्रयोगधर्मिता

इकाई 3 : निबंध – I

3.0 परिचय
3.1 हृदय - बालकृष्ण भट्ट
    3.1.1व्यक्तित्व एवं कृतित्व
    3.1.2 हृदय-मूल पाठ
    3.1.3 बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली
    3.1.4 हृदय प्रतिपाद्य
    3.1.5 हृदय समीक्षात्मक अध्ययन

3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था - रामचंद्र शुक्ल

3.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

3.2.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था- मूल पाठ

3.2.3 निबंध शैली

3.2.4 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : प्रतिपाद्य

3.2.5 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : समीक्षात्मक अध्ययन

इकाई 4 : कहानी – I

4.0 परिचय

4.1 'उसने कहा था' - चंद्रधर शर्मा गुलेरी

4.1.1 लेखक परिचय

4.1.2 उसने कहा था मूल पाठ

4.1.3 चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं

4.1.4 कहानी का सार

4.1.5 कहानी की समीक्षा

4.1.6 कहानी कला के तत्व और 'उसने कहा था'

4.1.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

4.2 ठाकुर का कुआं मुंशी प्रेमचंद

4.1.1 लेखक परिचय

4.1.2 ठाकुर का कुआ मूल पाठ

4.1.3 प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएं

4.1.4 कहानी का सार

4.1.5 कहानी की समीक्षा

4.1.6 कहानी कला के तत्व और ठाकुर का कुआ

4.1.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

इकाई 5 : यात्रावृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी – I

5.0 परिचय

5.1 यात्रावृत्त : 'परशुराम से तुरख' तक अज्ञेय

5.1.1 परशुराम से तूरखम (एक टायर की रामकहानी)

5.1.2 लेखन शैली

5.2 रिपोर्ताज : 'ऋणजल-धनजल' फनीश्वरनाथ 'रेणु'

5.2.1 ऋणजल – धनजल

5.2.2 लेखन शैली

5.2.3 साहित्यिक अवदान
5.3 रेखाचित्र : 'भाभी' – महादेवी वर्मा
5.3.1 भाभी
5.3.2 भाषा शैली

इकाई 1 गोदान (मुंशी प्रेमचंद)-I

1.0 परिचय

गोदान उपन्यास के लेखक प्रेमचंद ने भारतीय समाज के विविध रूपों का सजीव एवं विश्लेषणात्मक चित्रण किया है। जिसमें सोहाग का मजबूत आधार, कृषक जीवन, जमींदारों का वास्तविक स्वरूप, सामाजिक व्यवस्था, आत्मचिंतन, दाम्पत्य जीवन, पुरुष की स्वार्थी प्रवृति का चित्रण, नारी चेतना, धार्मिक विकृतियों को दर्शन, भविष्य की आशंका, कर्तव्यों का निर्वाहन, वर्गीय भेदभाव का दुष्प्रभाव, बौद्धिकता की प्रधानता, विवाह संस्कार, लोकतंत्र का विकृत स्वरूप, आर्थिक अभाव, नारी के आदर्श गुणों का बखान, पाश्चात्य संस्कृति का दुष्प्रभाव, वंशानुगत गुणों का प्रभाव, आधुनिक युगबोध का दिग्दर्शन, संयुक्त परिवार का लाभ, सेवा भाव जैसे ज्वलंत मुद्दों का बहुत सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

गोदान उपन्यास में जीवन के आदर्श और यथार्थ दोनों स्थितियों का चित्रण किया गया है। मानव जीवन आदर्श और यथार्थ के प्रांगण में फलीभूत होता है। आदर्शवाद समाज के भयावह विकराल यथार्थ को मनोरम स्वरूप प्रदान कर सर्वग्राह्य बनाता है और यथार्थ धरातल मनुष्य की चिंतन शैली को विकसित करता है। गोदान को महाकाव्य माना जाए या न माना जाए इस विषय पर एक मत होने से पहले महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओं का गोदान के साथ तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है और यहां इस आधार पर गोदान उपन्यास को महाकाव्य की कसौटी पर परखने का प्रयास किया गया है।

प्रेमचंद ने उपन्यास को मानव जीवन चरित्र का चित्र कह कर पात्र योजना एवं चरित्र-चित्रण को प्रमुखता दी है। गोदान उपन्यास में चरित्र चित्रण द्वारा प्रेमचंद के वैयक्तिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया गया है। आधुनिकता के संदर्भ में हम अगर बात करें तो गोदान केवल सामाजिक जीवन का ही प्रतिबिंब नहीं अपितु युगीन संदर्भों, ज्वलंत मुद्दों, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संरचना जैसे पक्षों को प्रस्तुत करने में भी सक्षम है। गोदान आधुनिक संदर्भों में भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय था। इस इकाई में इस उपन्यास के विभिन्न पक्षों का विस्तृत विवेचन किया जा रहा है।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- प्रेमचंद के गोदान के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर पाएंगे;
- गोदान मे चित्रित भारतीय किसान की दशा की पहचान कर पाएंगे;
- गोदान में उठाई गई दलित एवं स्त्री समस्याओं का आकलन कर पाएंगे;
- गोदान की महाकाव्यात्मक बिशेषताओं क उदाहरण सहित वर्णन कर पाएंगे।
- गोदान में चित्रित आदर्श एवं यथार्थ का विश्लेषण कर पाएंगे।

1.2 गोदान-व्याख्या खंड

- विपन्नता के इस अथाह सागर में सोहाग ही वह तृण था,जिसे पकड़े हुए सागर को पार कर रही थी। इन असंगत शब्दों ने यथार्थ के निकट होने पर भी मानो झटका देकर उसके हाथ से वह तिनके का सहारा छीन लेना चाहा, बल्कि यथार्थ के निकट होने के कारण ही उनमें इतनी वेदनाशक्ति आ गई थी। काना कहने से काने को जो दु:ख होता है, वह क्या दो आंखों वाले आदमी को हो सकता है ?

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

आर्थिक विपन्नता के फलस्वरूप होरी और धनिया के जीवन में समय-समय पर कलह प्रारंभ हो गया था। जिस अवस्था में व्यक्ति प्रौढ़ता को प्राप्त करता है, होरी उस स्थिति में पहुंचकर निराशा के गर्त में गिरता जा रहा था। होरी ने असहाय स्थिति में दुर्गति होने से पूर्व परमात्मा के पास जाने की इच्छा व्यक्त की। होरी के इस वचनों को सुनकर धनिया के पैरों की जमीन खिसकने लगी। धनिया का आंतरिक हृदय पति (होरी) के प्रति समर्पण भाव से ओतप्रोत था। धनिया के हृदय में होने वाली अमंगल की आशंका का वर्णन करते हुए उपन्यासकार ने कहा-

व्याख्या

धनिया के वैवाहिक जीवन का प्रारंभ आर्थिक विपन्नता से हुआ। (पति) को प्राप्त कर धनिया इस निर्धनता में भी प्रसन्न थी, क्योंकि उसका जीवन साथी उसकी आंखों के सामने था। किंतु आज पति की भविष्यवाणी को सुनकर धनिया आंतरिक रूप से टूट चुकी थी। भविष्य की अनहोनी से चिंतित होकर धनिया (पति) होरी को खोना नहीं चाहती थी, क्योंकि उसका पति ही इस विषम स्थिति में उसके जीवन का सहारा था। सोहाग को लेकर जो धनिया आश्वस्त थी, वही आज भविष्य को लेकर चिंतित है। होरी के इन असंगत शब्दों ने उसके भविष्य का सहारा भी छीन लेना चाहा है। धनिया व्यवहार कुशल थी, यथार्थ को अवश्यंभावी मानकर वेदना के आवरण में भी प्रसन्न थी। धनिया ने अपनी अभिव्यक्ति को स्पष्ट करते हुए कहा कि जिस प्रकार काने व्यक्ति को काना कहने से पीड़ा होती है वही पीड़ाा आज धनिया को हो रही थी, वह यथार्थ से परिचित थी, लेकिन भयभीत न थी। दो आंखों वाला व्यक्ति कभी दु:खी नहीं होता। यही उक्ति धनिया के जीवन पर भी लागू हो रही थी।

विशेष

- ❑ कृषक जीवन की त्रासदी एवं वास्तविकता का वर्णन है।
- ❑ धनिया का अंर्तद्वंद्व एवं भविष्य की आशंका से त्रस्त मन:स्थिति का वर्णन है।

- ❑ यह यथार्थ हे कि आर्थिक विपन्नता के प्रभाव स्वरूप व्यक्त असमय बूढ़ा हो जाता है।
- ❑ पति परमेश्वर होता है जिसके बिना पत्नी का जीवन सारहीन हो जाता है।
- ❑ सोहाग विवाहित जीवन की प्रसन्नता, खुशहाली का प्रतीक है।
- ❑ शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- ❑ सोहाग ही वह तृण था, उत्प्रेक्षा अलंकार तथा विपन्नता के अथाह सागर में रूपक अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- ❑ यह अवतरण होरी की आर्थिक विपन्नता का बोध कराता है।

    - किसान पक्का स्वार्थी होता है, इसमें संदेह नहीं। उसकी गांठ से रिश्वत के पैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, भाव ताव में भी वह चौकस होता है, ब्याज की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महाजन की घंटों चिरौरी करता है, जब तक पक्का विश्वास न हो जाए, वह किसी के फुसलाने में नहीं आता, लेकिन उसका संपूर्ण जीवन प्रकृति के स्थायी सहयोग से है। वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है, वह संसार के काम आता है, गाय के धन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती, दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है, ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान? होही किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

भोला की असहाय स्थिति का लाभ उठाना होरी ने नहीं सीखा था। भूसे के लिए गाय को बेचने की दुविधा से दु:खी होकर होरी भोला को साहस दिलाता है। कृषक जीवन की सादगी व संवेदना का वर्णन करते हुए प्रेमचंद ने कहा-

व्याख्या-

प्रेमचंद का मानना है कि किसान भोला, मूर्ख सरल एवं सीधा नहीं होता, उसमें भी परिस्थितिवश निर्णय लेने की क्षमता होती है। भोला अहीर की असमर्थता को देखकर होरी अपनी सांत्वना व्यक्त करता है। स्वार्थहित वह व्यवहार में परिवर्तन करना भी जानता है। वह कष्ट सहकर भी रिश्वत का एक पैसा देने को उत्सुक नहीं होता। अपनी वस्तु को बेचते समय कई बार मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन भी करता है। आश्वस्त होकर निर्णय करता है। कोई उसको अपने जाल में

नहीं फंसा सकता। किसान का जीवन प्रकृति की खुली किताब होता है। प्राकृतिक आपदा को भाग्य मानकर सहन भी कर लेता है। किसान की प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए प्रेमचंद कहते हैं कि किसान परमार्थ के लिए अपने जीवन का होम करता है जिस प्रकार वृक्ष अपने फल स्वयं न खाकर दूसरों को प्रदाान करते हैं उसी प्रकार किसान के खेत में उत्पन्न अनाज भी औरों के काम आता है। गाय अपना मधुर दूध अपने बच्चे के साथ दूसरों को प्रदान करती है। बादलों से होने वाली वर्षा से समस्त वसुंधरा हरी-भरी होकर तृप्त होती है। जब प्रकृति में कोई स्वार्थ नहीं है, फिर किसान के जीवन में होना संभव नहीं। क्योंकि होरी भी किसान था उसका जीवन भी परोपकार को समर्पित था इसीलिए स्वार्थवश भोला अहीर की असमर्थता का लाभ उठाना उसे शोभा नहीं देता।

विशेष

- ❒ कृषक जीवन की सादगी, सहजता, निस्वार्थ भावना का वर्णन किया गया है।
- ❒ होरी की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- ❒ होरी के माध्यम से किसानों की विशेषताओं को चित्रित किया गया है।
- ❒ मानव और प्रकृति का संबंध अटूट होता हौ यही प्रकृति मानव को निस्वार्थ भावना की शिक्षा देती है।
- ❒ परोपकार की कोष से अनेक साहित्यकारों ने अपनी साहित्य साधना की प्रेरक पृष्ठभूमि प्राप्त की। छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत का जीवन इसका प्रमाण है।
- ❒ परवाहपूर्ण भाषा का चित्रण है।
- ❒ विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- संपत्ति और सहृदयता का बैर है। हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं। लेकिन जानते हो क्यों? केवल अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। हम में से किसीपर डिग्री हो जाए, कुर्की आ जाए, बकाया मालगुजारी की इल्लत में हवालात हो जाए, किसी का जवान बेटा मर जाए, किसी की विधवा बहू निकल जाए, किसी के घर में आग लग जाए, कोई किसी वेश्या के हाथों उल्लु बन जाए, या अपने आसामियों के हाथों पिट जाए, तो उसके और सगे भाई उस पर हंसेंगे, बगलें बजाएंगे, मानो सारे संसार की संपदा मिल गई है और मिलेंगे तो इतने प्रेम से, जैसे हमारे पसीने की जगह खून बहाने को तैयार हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है

प्रसंग

जेठ के दशहरे पर धनुष यज्ञ की चैयारी चल रही थी होरी को राजा जनक की भूमिका निभाने का आदेश मिला। ठाकुर राय साहब अमरपाल सिंह के घनिष्ठतम व्यक्तियों में होरी का नाम भी आता था। अपने मन का बोझ हल्का करने के लिए होरी से एकांत में वार्तालाप करता है। बड़े व्यक्तियों के व्यवहार का वर्णन करते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं-

व्याख्या

रायसाहब होरी से अपने मन की व्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि धनवान व्यक्ति में संवेदना का लेशमात्र भी अंश नहीं होता, उनकी संवेदना में कुत्सित प्रवृत्ति का बोध होता है। धनाढ्य व्यक्ति का दान दिखाने के लिए होता है। धार्मिक कार्यों से सभी का शुभचिंतक एवं उदार बनना चाहता है। जिसके पास धन होगा उसमें दया, ममता का नामोनिशान नहीं होता। यह यथार्थ है कि संपत्ति व सहृदयता एक दूसरे की प्रतिरोधी हैं। अपने को बराबर वालों में श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए ही हम व्यर्थ का ढोंग करते हैं। हमारे कार्यों में भी अहंकार की भावना प्रदर्शित होती है। अगर हमारे साथी की कुर्की हो जाए, या डिग्री हो जाए तो हमें आनंद का अनुभव होता है। कोई अगर हवालात में बंद हो जाए तो हमारे हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। दुर्भाग्यवश किसी का बेटा मरा जाए, तो हम मुदित होते हैं कि उसका सहारा छिन गया। आपसी विवाद से किसी की बहु घर से निकले तो हम उस पर कीचड़ उछालकर खुश होते हैं। कोई किसी वेश्या द्वारा मुर्ख बना दिया जाए तो उसकी हंसी उड़ाते हैं। दुर्व्यवहार के फलस्वरूप अगर कोई आसामियों द्वारा पीटा जाता है तो उसकी दुर्गति होने पर हमें अच्छा लगता है। भाई-भाई का नहीं होता है। हमारे सभी संबंध स्वार्थ के होते हैं। हमारी मित्रता भी स्वार्थ से खाली नहीं होती। हम जब मिलते हैं तो दिल खोलकर रख देते हैं जब बिछड़ते हैं तो खाल खींचकर ही शांत होते हैं। हमारी मित्रता में कृत्रिमता झलकती है।

विशेष

- ❒ राय साहब द्वारा बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
- ❒ राय साहब द्वारा जमींदारों की कथनी और करनी में अंतर दिखाया गया है।
- ❒ उपन्यास में वर्गीय पात्रों का वर्णन है। रायसाहब जमींदार वर्ग क प्रतिनिधित्व करते हैं।

- ❒ रायसाहब की अभिव्यक्ति में शोषक की गंध आती है।
- ❒ यह अवतरण परतंत्र भारत में किसानों की दयनीय स्थिति का वर्णन करने में सक्षम है।
- ❒ होरी रायसाहब का विश्वसनीयपात्र है।

- ❒ मुहावरे प्रधान भाषा–उल्लु बनाना, बगलें झांकना आदि का सुंदर प्रयोग है।
- ❒ भाषा में लाक्षणिकता के दर्शन होते हैं।
- ❒ संपत्ति और सहृदयता में बैर है– सूक्ति का प्रयोग किया गया है।
- ❒ मानो सारे संसार की संपत्ति मिल गई हो– उत्प्रेक्ष अलंकार का प्रयोग किया गया है।
- गरीबों में अगर ईर्ष्या या बैर है तो स्वार्थ के लिए या पेट के लिए। ऐसी ईर्ष्या और बैर को मैं क्षम्य समझता हूं। हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले तो उसके गले में उंगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है। अगर हम छोड़ दें तो देवता हैं। बड़े आदमियों की ईर्ष्या या बैर केवल आनंद के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गए हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में भी नि:स्वार्थ और परम आनंद मिलता है। हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुंच गए हैं, जब हमें दूसरों के रोने पर हंसी आती है, उसे तुम छोटी साधना मत समझो।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

दशहरे के अवसर पर होरी ने सेमरी गांव पहुंचकर रायसाहब अमरपाल सिंह के यहां हाजिरी दी। सभी अपने–अपने उत्तरदायित्व का पालन करने में व्यस्त हैं। होरी को गांव वालों द्वारा सगुन भेजने की जिम्मेदारी मिली। होरी ने ठाकुर अमरपाल सिंह से कहा हम तो आपको बड़ा आदमी समझते थे पर आज पता चला कि बड़े आदमियों में भी ईर्ष्या, द्वेष की भावना पाई जाती है। स्वयं की प्रशंसा सुनकर ठाकुर अमर पाल ने कहा–

व्याख्या

अमर पाल ने होरी की जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा कि हम बड़े व्यक्ति केवल नाम के होते हैं हमारे नामानुसार कार्य नहीं होते। हमारे लिए ईर्ष्या द्वेष केवल आनंद के लिए होते हैं जबकि गरीबों में ईर्ष्या का होना स्वाभाविक है। उनके पेट की भूख उन्हें ऐसा करने को बाध्य करती है। पेट के लिए किया गया व्यवहार क्षमा के योग्य है। शत्रुत को सही ठहराता हूं। अगर कोई

हमारा नुकसान पहुंचाना चाहे तो उससे बदला लिए बिना हमारी आत्मा शांत नहीं होती उसको त्रस्त करना हमारा मौलिक कर्तव्य हो जाता है। यही हमारा धर्म है। अगर हम अपने धर्म का पालन न करें तो बराबर वाले हमे असमर्थ व असहाय समझते हैं। अगर हम ऐसा न करें तो हमें देवताा

मान लिया जाता है। बड़े व्यक्तियों में ईर्ष्या एवं बैर आनंद का बोध कराता है। हमें नीचता एवं कुत्सित कार्यों में बड़प्पन का आभास होता है। परम आनंद की प्राप्ति होती है। हमें दूसरों के रोने में आनंद मिलता है। हमारा यह व्यवहार किसी देवता से कम नहीं है। हमारी आत्मा मर चुकी है।

हम सहृदयता से कोसों दूर हैं। दु:खी व्यक्ति का उपहास उड़ाना हम नैतिक उत्तरदायित्व समझते हैं।

विशेष

- ❒ मुंशी प्रेमचंद ने रायसहब अमरपाल सिंह द्वारा जमींदार वर्ग की विशेषताओं का उल्लेख करवाया है।
- ❒ बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलता का वर्णन किया गया है।
- ❒ यह अवतरण प्रेमचंद के अनुभवी जीवन का बोध कराता है।
- ❒ मुहावरे प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है, जैसे- नाम बड़े दर्शन छोटे।
- ❒ लाक्षणिकता की झांकी- देवतापन, विपरीत, विशेषताओं, तुच्छता, नीचता में मिलती है।
- ❒ रायसाहब की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट दिखाई देता है।

- दुनिया समझती है हम बड़े सुखी है। हमारे पास इलाके, महल, सवारियां, नौकर-चाकर, कर्ज, वेश्याएं क्या नहीं है। लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दु:ख पर सब हंसे और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों तले दबी हो, जो भोग विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने अधीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

अपने दुर्गुणों पर प्रकास डालते हुए ठाकुर अमरपाल सिंह अपनी मनोव्यथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि हम बड़े लोगों में चारित्रिक पतन का होना स्वाभाविक है। हमारी अतंरात्मा अंदर से दु:खी है, हमारी कृत्रिम हंसी में हमारी कथनी और करनी का प्रतिबिंब झलकता है। हमें शोषण करने में आत्मसंतुष्टि होती है। बड़े व्यक्तियों पर प्रकाश डालते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं-

व्याख्या

ठाकुर अमरपाल सिंह अपने दुगुणों पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि दुनिया की दृष्टि में हमें बड़ा माना जाता है, हमारी सुख-सुविधाओं से हमारी प्रसन्नता का अनुमान लगाया जाता है। हमारे पास बड़े-बड़े इलाके हैं, विशाल महल हैं, आने जाने के निजी सवारियां हैं हमारे आगे पीछे नौकर धूमते हैं। इतना होने के बावजूद हम दु:खी हैं। हमारा यह सब वैभव दिखावा मात्र है। जिस व्यक्ति में आत्मबल नहीं है। स्वाभिमान की भावना नही है वह व्यक्ति मनुष्यता का अधिकारी नहीं है। हम शोषण के दलदल में डूबे हुए हैं जिससे, मानवता कोसों दूर हो गई है। अपनी तथा जमींदारों की वैयक्तिक जीवन शैली का वर्णन करते हुए अमरपाल सिंह ने कहा कि वह व्यक्ति किसी भी रूप में सुखी नहीं है जो निश्चिंत होकर सो नहीं सकता। जिसके हृदय में संवेदना का जन्म न हो, जो असहाय स्थिति का फायदा उठाने के लिए तत्पर न होता हो उससे बड़प्पन की गंध नहीं आती। किसी का खून-चूसना महानता नहीं कहलाती। जिसे भोग-विलास में जीवन का चरमोत्कर्ष दिखाई देता हो वह किसी भी रूप में बड़ा नहीं हो सकता।

विशेष

- ❒ जमींदारों के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला गया है।
- ❒ अमरपाल सिंह के उद्‌गारों में हृदय की निश्छलता झलकती है।
- ❒ सुखी जीवन के अनुभव का अनुमान आत्मिक सुख से लगाया जा सकता है।
- ❒ शोषण की प्रवृत्ति का वर्णन है।
- ❒ बड़े व्यक्तियों की चारित्रिक दुर्बलताओं का उल्लेख है।
- ❒ मुहावरेदार भाषा का प्रयोग- तलवे चाटना, खून चूसना द्वारा हुआ है।
- ❒ अरबी शब्दो का भी प्रयोग हुआ है, जैसे- हुक्काम।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया है।

- लक्षण कह रहे है कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन क स्वागत करने को तैयार बैठा हूं। ईश्वर वह दिन जल्द लाए। वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है, और जब तक संपत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, तब तक यह अभिशाप

हमारे सिर पर मंडरता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुंचना ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्घृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब भविष्य में होने वाले परिवर्तनों से अवत हैं कि जमींदारी प्रथा का खात्मा होने वाला है तथा जमींदारों की आलसी प्रवृत्ति तभी दूर होगी। सरकार भी भविष्य में होने वाले बदलाव का संकेत दे रही है।

व्याख्या

रायसाहब अमरपाल सिंह स्वयं जमींदार हैं इलाके में उनका आतंक है। वे बदलती परिस्थितियों से भली-भांति अवगत हैं। इसीलिए होरी से अपने मनोभाव व्यक्त करते हुए कहते हैं कि अब समय बदल रहा है। समयानुकुल मनोवृत्ति को भी बदलना पड़ेगा। जमींदारी प्रथा समाप्त होने वाली है। मेरी भी इच्छा यही है कि यह प्रथा जितनी जल्दी समाप्त हो जाए उतना ही श्रेयस्कर है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करने को उत्सुक हूं। ईश्वर भी यही चाह रहा है। वह दिन हमारे पुनरुद्धार का होगा। हम परिस्थितियों के आगे विवश थे जिसके कारण हम अकर्मण्य हो गए हैं। हमारी संपत्ति ही हमारी बड़ी शत्रु है क्योंकि अपने धन के कारण ही हम स्वेच्छाचारी हो गए हैं हमारा मानवता से कोई संबंध नहीं रहा जिस मानवता के लिए मनुष्य व्यथित होता है वह प्राप्त नहीं कर सकता। उसके बिना जीवन को सार्थकता व्यर्थ है हमने मानव विरुद्ध कार्य करके अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली है।

विशेष

- जमींदारी प्रथा की समाप्ति का संकेत मिलता है।
- प्रेमचंद का मानना है कि जमींदारी प्रथा से समाज का विकास संभव नहीं है।
- जमींदारों से त्रस्त कृषक जीवन की त्रासदी का अनुमान लगाया जा सकता है।
- रायसाहब के दोहरे व्यक्तित्व का दिग्दर्शन है एक ओर वह शोषण के प्रतीक है, दूसरी ओर होरी से संवेदना व्यक्त करके सहानुभूति दिखाना चाहते हैं।
- प्रेमचंद के विचारानुसार प्रगतिवादी चेतना का समर्थन करना ही तत्कालीन युग की मांग थी।
- प्रवाहमयी सहज भाषा का प्रयोग हुआ है।

- ❒ प्रेमचंद की भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि का चित्रण देखने को मिलता है।
- ❒ यह यथार्थ है कि धूर्त, मक्कार व्यक्ति के व्यक्तित्व में भी मानवता के दर्शन होते हैं।
- ❒ रायसाहब अमरपाल सिंह द्वारा प्रेमचंद ने मानवतावादी भावना को प्रमुखता प्रदन की है।
- ❒ यह यथार्थ है कि धन के आवरण में लिप्त व्यकिट में स्वच्छंदता, कुप्रवृत्तियां स्वत: आ जाती है।

- यह सब कहने की बात है। हम लोग दाने-दाने को मोहताज हैं, देह पर साबित कपड़े नहीं है, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दी-मसनद लगाए बैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्घृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह से मिलने के पश्चात होरी अपने घर वापस आया। धनिया उत्सुकतावश पूछती है कि ठाकुर साहब से क्या बातें हुई तो होरी बड़े आजमियों के विवशता पर प्रकाश डालता है कि बड़े व्यक्ति भी पीड़ित और व्यथित हैं। उन्हें भी हजारों चिंताए घेरे रहती है। गोबर होरी की इन बातों का खंडन करता है।

व्याख्या

होरी द्वार जमींदारों के दु:खी होने की बात सुनकर प्रतिकार स्वरूप कहता है यह सब दिखावा है केवल कहने भर को है। इसमें लेशंमात्र भी सच्चाई नहीं है। दु:ख तो गरीबों को होता है, उन्हें एक वक्त की रोटी के लिए बड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। एक-एक दाने को मोहताज रहते हैं। तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता। अथक परिश्रम करने पर भी गुजर नहीं हो पाती। जमींदार तो मज `से रहते हैं। मोटे-मोटे गद्दों पर निश्चिंत होकर सोते हैं। सैकड़ों नौकर देखभाल में लगे रहतै हैं। हजारों आदमियों पर अपना एक छत्र शासन करते हैं। उनकी धनलिप्सा कभी पूर्ण नहीं होगी। धन के द्वारा सभी सुख-सुविधाओं को प्राप्त किया जा सकता है। धन के बिना जीवन की सार्थकता व्यर्थ ही रहती है।

विशेष

- ❒ गोबर आधुनिक युवा वर्गका प्रतीक है।

- ❒ गोबर द्वारा प्रेमचंद ने भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख किया है।
- ❒ गोबर द्वारा युवा वर्ग का आक्रोश मुखरित हुआ है।
- ❒ होरी का भाग्यवादिता का वर्णन किया गया है।
- ❒ यह यथार्थ है कि जमींदारों की कथनी करनी में अंतर होता है।
- ❒ यह अवतरण जमींदारों की दोहरी मानसिकता को दर्शाता है।
- ❒ गरीब किसान की दृष्टि में धन सभी सुखों का मूल होता है।
- ❒ मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया गया है।
- ❒ उर्दू **शब्दों** का प्रयोग- मुहताज, साबित, गुजर हुकूमत आदि के रूप में हुआ है।
- ❒ गोबर के प्रतिकार में होरी की पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया गया है।

- मैं तो कभी-कभी सोचता हूं कि अगर सरकार हमारे इलाके छीनकर हमें अपनी रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान उपकार करे, और यह तो तय है कि सरकार भी अब हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह जमींदार वर्ग की अकर्मण्यता को उजागर करते हुए कहते हैं कि जमींदारी प्रथा समाप्त होने वाली है। भविष्य में बदलाव को अवश्यंभावी मानकर होरी से अपनी व्यथा व्यक्त करते हैं-

व्याख्या

रायसाहब अमरपाल सिंह कह रहे हैं कि परिश्रम करने से ही आत्मसंतुष्टि मिलती है। परिश्रम का फल मीठा होता है। हमारा यह जमींदार वर्ग मेहनत करने का आदी हो जाएगा। सरकार जितनी जल्दी हो सके हमारे इलाकों को छीन ले तो सरकर का बड़ उपकार होगा। शोषण की कड़ी समप्त होगी और स्वार्थी प्रवृत्ति का अंत होगा। सरकार भी समय के साथ फैसला करेगी, **क्योंकि** जमींदारों से उसका भला नहीं होने वाला। अगर इन अमीरों, जमींदारों का अस्तित्व समाप्त हो जाए तो श्रेयस्कर होगा।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद की भविष्योन्मुखी यथार्थ दृष्टिकोण का वर्णन है।

- ❒ ज्ञात होता है कि जमींदारी प्रथा की समाप्ति के लक्षण प्रारंभ हो चुके थे।
- ❒ संपत्ति पर सभी का अधिकर हो, प्रेमचंद का ऐसा मानना दृष्टिगोचर होता है।
- ❒ सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली प्रयुक्त हुई है।
- ❒ रायसाहब अमरपाल सिंह की प्रत्युत्पन्नमति का चित्रण किया गया है।

- कौन कहता है कि हम तुम आदमी हैं। इसमें आदमियत कहं? आदमी वह है जिसके पास धन है, इख्तियार है, इलम है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकता। एका का नाम नहीं। एक किसान दूसरे के खेत पर न चढ़े तो कोई जाफा कैसे करे, प्रेम तो संसार से उठ गया है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी भोला अहीर से मिलकर उसकी सदाशयता की प्रशंसा करता है। भूसा देकर अपनी व्यवहार कुशलता का परिचय देता है। रास्ते में होरी और भोला युग के परिप्रेक्ष पर विहंगम दृष्टि से चिंतन करते हैं। होरी का मानना है कि गरीबों का जन्म दूसरों की सेवा करने के लिए हुआ है। बड़े आदमियों पर कोई अंकुश नहीं है छोटे आदमियों पर तरह-तरह के प्रतिबंध है। भोला का मानना है कि हम छोटे आदमी कभी भी बड़े आदमियों की बराबरी नहीं कर सकते क्योंकि हमें आदमी नहीं माना जाता।

व्याख्या

भोला कहता है कि कौन कहता है कि हम भी आदमी हैं- आज आदमी की परिभाषा बदल गई है। आदमी की पहचान का पैमाना संपत्ति माना जाता है। जिसके पास जितनी अधिक संपत्ति होगी वह उतना ही बड़ा आदमी माना जता है। जिसके पास अधिकार जमाने की शक्ति है, जिसके पास उचित-अनुचित का निर्णय करने की क्षमता है। जिसमें मनुष्यों को सोचने पर विवश करने की बहस का माद्दा है वही बड़ा आदमी माना जाता है। छोटे व्यक्तियों को आदमी न मानकर बैल माना जाने लगा है। लगता है ईश्वर ने हमारा जन्म इनकी सेवा करने के लिए किया है। दिन रात बैल की तरह परिश्रम करते रहें। हमारी इस स्थिति के लिए हमारी आपसी फूट और विद्वेष की भावना उत्तरदायी है। हम आपस में लड़ते झगड़ते हैं। एक होकर रहना नहीं सीखा। हमारी आपसी वैमनस्य की प्रवृत्ति के कारण ही जमींदार अत्याचार करता जाता है और हम मूक होकर सहन करते रहते हैं। एक किसान का खेत दूसरा किसान सहर्ष अपना लेता है। प्रेम का भाव समाप्त हो

गया है। जब तक किसान संगठित होकर अपने लिए संघर्ष नहीं करेंगे तब तक उनकी शोषण से मुक्ति संभव नहीं।

विशेष

- ❒ भोला का अनुभवी जीवनोद्‌गार व्यक्त हुआ है।
- ❒ आर्थिक विपन्नता का प्रभाव मनुष्य की जीवन शैली को बदल देता है।
- ❒ मनुष्यताा की पहचान इनसानियत से न होकर धन दौलत,शक्ति ज्ञान एवं अहंकार से की जाने लगी है।
- ❒ संगठन में शक्ति होती है। भोला के अनुसार आपसी वैमनस्य ही किसानों की दुर्दशा का मूल कारण है।
- ❒ पारस्परिक मतभेद के बीच प्रेम का परिपक्व होना असंभव है।
- ❒ बैल होने से तात्पर्य मंदबुद्धि से है।
- ❒ विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है, जैसे- आदमी, इख्तियार, इलम, आदमियत आदि।

- वैवाहिक जीवन के प्रभाव में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है, और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण क्षण पर बगुले उठते हैं और पृथ्वी कांपने लगती है। लालसा क सुनहर आवरण हट जाता है और वास्तविकता अपे नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है शीतल और शांत, जब हम थके हुए पथिक की भांति दिनभर की यात्रा का वृतांत कहते और सुनते हैं तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊंचे शिखर पर जा बैठे हैं जहां नीचे का जानवर हम तक नहीं पहुंचता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

दमड़ी बसोर को सस्ते दाम मे बांस बेच देने के कारण फन्नी हीरा से झगड़ती है परिणाम स्वरूप पिटती है लेकिन तत्क्षण पति के साथ खेतपर भी चली जाती है। होरी फन्नी की प्रशंसा करता है तो धनिया हीरा की। उसे (पति) होरी की सज्जनता पर क्रोध आता है। होरी और धनिया के वैवाहिक जीवन का वर्णन दिन से तुलना करते हुए लेखक कहता है।

व्याख्या

लेखक के अनुसार वैवाहिक जीवन कार प्रारंभ उषाकाल के समान अनेक प्रकार की सुख शांति लेकर आता है। जिस प्रकार प्रात: काल की बेला मनुष्यों में नवीन स्फूर्ति का संचार करती है, समस्त अंधकारमय वातावरण को तिरोहित कर देती है, चारों ओर सूर्य के प्रकाश से दिशाएं जगमगा जाती हैं, उसी प्रकार वैवाहिक जीवन जीवन का आरंभ भी एक प्रकर से मस्ती भरा और आनंदमय होत है। जीवन में हर्ष, उल्लास का वातावरण देखने को मिलता है। वर-वधू का हृदय रूपी आकाश गुलाबी मादकता से भरा होता है। नाना इच्छाओं का जन्म नवीन कल्पनाओं की सृष्टि करता है। युगल को यह विश्वास रहता है कि हमारे जीवन में सदैव ऐसी ही आनंदमय छटा छाई रहेगी। प्रेमयुक्त हृदय जब मिलते हैं तो समस्त चिंताएं भोग आनंद के सामने तुच्छ सी लगती हैं। जिस प्रकार प्रात: काल का सूर्य दोपहर के समय अपने चरमोत्कर्ष पर आग उगलता है, तो वातावरण तापमय हो जाता है। प्रात: काल की रंगीन किरणें अग्निवाणों की वर्षा करती हैं। लू चलने लगती है। चारों ओर धूल भरी तेज हवाएं भी चलने लगती हैं। प्रात: काल की लालिमा छंट जाती हैं। गृहस्थ जीवन में पड़कर उत्तरदायित्व का बोध बढ़ने लगता है। मानव आनंदमयी बेला को त्यागकर जीवन के संघष युक्त वातावरण में कूद पड़ता है। तब उसका सामना संघर्षों की बेला से होता है। अथक परिश्रम ही उसकी प्रगति का मूलाधार होता है। जीवन की वास्तविकता सामने आकर खड़ी हो जाती है। कभी-कभी तेज गर्मी के समान नव दंपत्ति का जीवन भी डगमगाने लगताहै। वैवाहिक जीवन का तीसरा चरण विश्राममय संध्या से शुरु होता है। ऐसे समय में क्लांत पथिक की भांति विश्राम करने को उत्सुक होता है। उसके जीवन का तीसरा चरण विश्राममयी संध्या के रूप में सामने आता है। संघर्ष का चरण समालत हो जाता है। अपने विगत जीवन की गतिविधियों पर परिचर्चा करने में व्यस्त हो जाता है। वह उस व्यक्ति के समान होता है जो पर्वत के ऊंचे शिखर पर बैठकर नीचे घटित होने वाली घटनाओं को देख रहा है।

विशेष

- दाम्पत्य जीवन का चित्रण दिन के सांगरूपक द्वारा चित्रित किया गया है।
- वैवाहिक जीवन के मधुर एवं कटु दोनों अनुभवों का संयोग दर्शाया गया है।
- अप्रत्यक्ष रूप से होरीके जीवन का तीसरा चरण व्यक्त हुआ है।
- व्याख्यात्मक एवं तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग हुआ है।
- सांगरूपक अलंकार एवं उत्प्रेक्ष अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत किया गया है।
- भावात्मक शैली एवं अलंकारिक शैली प्रयुक्त हुई है।
- छायावादी शैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।
- सूर्य को जीवन के संघर्ष का प्रतीक माना गया है।

- द्वेष का मायाजाल बड़ी-बड़ी मछलियों को ही फंसाता है। छोटी मछलियां या तो उसमें फंसती ही नहीं या तुरंत निकल जाती हैं। उनके लिए यह घातक जाल क्रीड़ा की वस्तु है, भय की नहीं। भाइयों से होरी की बोलचाल बंद थी, पर रूपा दोनों घरों में आती-जाती थी। बच्चों से क्या बैर।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी के घर गाय आई तो सारा गांव गाय देखने आया। होरी केभाई हीरा और श्यामा नही आए। धनिया कहने लगी कि तुम्हारे भाई बैर रखते है। धनिया के हटने पर होरी ने छोटी बेटी रूपा को भाइयों के घर भेजा कि शोभा और हीरा को उंगली पकड़कर ले आए। रूपा उछलती कूदती चली गई। उसके हृदय में कोई द्वेष की भावना न थी। बच्चें का हृदय निर्मल होता है।

व्याख्या

प्रेमचंद ने बड़े मनुष्यों और बच्चों के स्वभाव चरित्र का अंतर स्पष्ट करते हुए कहा है कि बड़े मनुष्यों में द्वेष, प्रतिकार की भावना अधिक पाई जाती है। छोटे बच्चे इन दुर्गुणों से मुक्त रहते हैं। जिस प्रकार जाल से बड़ी मछलियां ही फंसती है छोटी नहीं फंचती, ठीक उसी प्रकार बड़े मनुष्यों में ईर्ष्या होती है। छोटे बच्चे निर्मल आत्म के होते हैं। उन पर इसका क्षणिक प्रभाव पड़ता है। उनके लिए यह व्यवहार खेल की वस्तु है। होरी के भाईयों में पारस्परिक मनमुटाव था। धनिया भी झगड़ती थी। किंतु रूपा तो छोटी बच्ची थी वह अपने परिवार में आती जाती थी। हीरा और शोभा से कोई द्वेष न था। रास्ते में धनिया के मिलने पर रूपा को वापस आना पड़ा।

विशेष

- ❒ ईर्ष्या, द्वेष का प्रभाव बड़ों पर होत है छोटे बच्चों पर नहीं।
- ❒ यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह दूसरे के सुख से दु:खी होता है। शोभा और हीरा भी इसी प्रवृत्ति के शिकार थे।
- ❒ यहां पर धनिया की चारित्रिक विशेषताओँ का वर्णन किया है, जो प्रतिकार एवं स्वाभिमान स्वरूप रूपा को रास्ते से वापस ले आती है।
- ❒ इसअवतरण से होरी के पारिवारिक विघटन का पता चलता है।
- ❒ ईर्ष्या द्वेष विकार हैं, इसीलिए प्रेमचंद ने इन्हें मायाजाल कहा है।
- ❒ बच्चे मन के सच्चे होते हैं। रूपा इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।
- ❒ शुद्ध हिंदीा का प्रयोग हुआ है।

- ❒ अलंकारिक शैली एवं प्रतीकात्मक शैली प्रयुक्त की गई है।
- ❒ रूपक अलंकार का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत हुआ है।

- उनकी दृष्टि में अभी उसके यौवन में केवल फूल लगे थे। जबतक फल न लग जाएं, उन पर ढेले फेंकना व्यर्थ की बात थी। और किसी ओर से प्रोत्साहन पाकर उसका कौमार्य उसके गले में चिपटा हुआ था। झुनिया का वंचित मन, जिसे भावियों के व्यंघ्य और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था उसके कौमार्य ही पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी की तरह यौवन जाग उठा।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर सोलह-सत्रह वर्ष क युवक था। गांव की प्रथानुसार वह लड़कियों को बहनमानता था, कोई उससे छेड़-छाड़ भी नहीं कर पाता था। भावियों की दृष्टि में वह अभी छोहा ही था। जब से भोला अहीर के यहां गाय के संदर्भ में गोबर को जाने क अवसर मिला तो झुनियाा से हृदय की बातें हुई, फलस्वरूप गोबर के हृदय में सहज अनुराग का जन्म होने लगा।

व्याख्या

मुंशी प्रेमचंद इसी विषय का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि बागवान तब तक प्रतीक्षा करता हैं जब तक कि फूल झड़कर फल न बन जाएं। उसी प्रकार गांव की भाभियां भी गोबर को नासमझ समझती थी क्योंकि गोबर में परिपक्वता के लक्षण नहीं थे। नारी वर्ग से मिलने वाली उपेक्षा से गोबर का मन भी अनासक्त भाव रखता था। इसीलिए वह कुंवारा ही था जबकि दूसरी और झुनिया इस आनंद सागर में डुबकी लगा चुकी थी। समय-समय पर भाभियों द्वारा छेड़खानी करने पर आनंद का अनुभव करती थी। उसने गोबर के कौमार्य से आकृष्ट होकर उसे अपने जाल में फंसाना चाहा, वह सफल भी रही। गोबर के सूने हृदय में भी प्रेम का सागर हिलोरें मारने लगा। जिस प्रकार शिकारी जानवर पत्ता खड़कते ही जाग जाता है उसी प्रकार गोबर ने भी शिकारी जानवर की भांति झुनिया के आमंत्रण को स्वीकार कर लिया।

विशेष

- ❒ गोबर झुनिया के पारस्परिक आकर्षण का चित्रण है।

- ❒ स्वस्थ शरीर प्रथम सुख होता है। झुनिया भी गोबर के कौमार्य पर रीझकर अपने जाल में फंसा लेती है।
- ❒ प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- ❒ मुहावरेदार सरल हिंदी का प्रयोग है।
- ❒ यौवन के दिन सुंदर होते हैं उसमें अनेक कल्पनाओं एवं उद्‌भावनाओं का जन्म लेना स्वाभाविक है।
- सबके सब भौंरे इसे लेकर उड़ जाने वाले। मैं भी उन्हें ललचाती हूं तिरछी नजरों से देखती हूं, मुस्कराती हूं। वह मुझे गधी बनाते हैं, मैं उन्हें उल्लु बनाती हूं। मैं मर जाऊं तो उनकी आंखों में आंसू न आएगा। वह मर जाए तो मैं भी कहूंगी, अच्छा हुआ निगोड़ा मर गया, मैं तो जिसकी ह जाऊंगी, उसकी जन्मभर के लिए हो जाऊंगी सुख में, दु:ख में, संपत में, विपत्त में, उसके साथ रहूंगी। हरजाई नहीं हूं कि सबसे हंसती बोलती फिरूं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर को होरी के साथ झुनिया के घर जाने का अवसर प्राप्त हुआ। एकांत पाकर झुनिया का हाथ पकड़कर वह अपनी समर्पण भावना व्यक्त करता है। झुनिया को वैधव्य के दुर्दिनों में लकड़ी का सहारा मिला तो वह शीघ्रताशीघ्र अपनी सहमति प्रदान कर परखने का प्रयत्न करती है कि यह हाथ पकड़ा है तो जन्म भर निभाना पड़ेगा। गोबर सहमति प्रपान करता है। झुनिया अपनी समर्पण प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती हुई कहती है–

व्याख्या

झुनिया का मानना है कि मर्द पहले तरह–तरह की कसमें खाते हैं। समर्पण, त्याग जताते हैं, लेकिन काम निकल जाने पर बेरुखे हो जाते हैं। परिस्थितिवश झुनिया ने दूध बेचने का काम करते समय व्यवहाारिक अनुभव प्राप्त किया था कि सभी उसके आगे–पीछे हाथ जोड़ा करते। झुनिया का मानना है कि मर्द का स्वभाव चंचल स्वार्थी भौंरे के समान है जो प्रतिदिन नयें पुष्प का मधुर पान करने के लिए भ्रमण करता है। मैंने भी स्वार्थी मनुष्यों को उल्लू बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया है। मेरा मुस्कराना उन्हें पलभर के सुख सागर में डुबकी लगाने को बाध्य करता है। वह मुझे मूर्ख बनाना चाहते हैं, तो मैं भी उन्हें उल्लू बनकर अपना का निकालती हूं। पर वास्तविकता यह है कि कोई मेरा जीवन भर साथ देने को तैयार नहीं है मेरे मरने पर उन्हें लेशमात्र भी दु:ख नहीं होगा। मैं

जिसे एक बार अपना लूंगी उसका जीवन भर साथ न छोडूंगी। उसके सुख-दु:ख में, संपत्ति और विपत्ति में उसका साथ नहीं छोडूंगी। हरजाई बनकर हंसी-ठिठोली करना मुझे स्वीकर्य नहीं।

विशेष

- ❒ झुनिय ाकी परिपक्वता की झलक दिखाई देती है।
- ❒ झुनिया व्यवहारिक एवं युगीन परिस्थितियों से भली-भांति अवगत है।
- ❒ परपुरुषों की लोलुप प्रवृत्ति का वर्णन किया गया है।
- ❒ झुनिया का मानना है कि विवाह संस्कार की सार्थकत समर्पण त्याग के बिना सारहीन है।
- ❒ यह अवतरण झुनिया की अनुभवशीलता का वर्णन करता है।
- ❒ तद्भव शब्दों का सुंदर प्रयोग-संपत और विपत के रूप में हुआ है।
- ❒ सरल प्रवाहमयी भाषा प्रयुक्त हुई है।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- मैं अहीर की लड़की हूं। मूंछ का एक-एक बाल नुचवा लूंगी। यही लिखा है तुम्हारे पोथी-पत्र में कि दूसरं की बहू-बेटियों को अपने घर में बंद करके बेइज्जत करो। इसीलिए तिलक-मुद्र का जाल बिछाए बैठे हो? लगा हाथ जोड़ने, पैर पकड़ने एक प्रेमी का मान रख दोगी, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा, झूना रानी! कभी-कभी गरीबों पर दया किया करो, नहीं भगवान पूछेंगे, मैंने तुम्हें इतना रूपधन दिया था तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया, तो क्या जवाब दोगी? बोले, मैं विप्र हूं, रुपये पैसे का दान तो रोज ही पाता हूं, आज रूप का दान दे दो।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

झुनिया ने वैधव्य जीवन में भी पराश्रित होकर जीना नहीं सीखा, अकर्मन्य रहकर बापके यहां बोझ बनना स्वीकार नहीं था इसीलिए दूध बेचने का कार्य करती थी। एक ब्राह्मण, झुनिया को अकेला पाकर अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। झुनिया अकेली होने पर भयभीत नहीं होती उल्टे विप्र को फटकारती है। अपनी इस असमंजस की स्थिति में साहस व धैर्य का परिचय देकर अपने अस्तित्व की रक्षा करती है।

व्याख्या

विप्र की कुत्सित प्रकृति को देखकर झुनिया ने उसे सबक सिखाना उचित समझा। अपना हवाला देती है कि मैं अहीर की लड़की हूं। कोई मुझे तंग करेगा तो उसकी मूंछ का एक-एक बाल

उखाड़ने की सामर्थ्य भी रखती हूं। विप्र को अपने धर्म और कर्म का बोध कराती है कि ब्राह्मण का धर्म शिक्षा देना है, विलासिता के भंवर में डूबना नहीं। क्या तुम्हारा धर्म बहू-बेटियों की इज्जत करना नहीं जानता, तुम्हारी कथनी और करनी में यह दोगलापन क्यों? झुनिया की प्रत्युत्पन्न से परास्त होकर विप्र विनती करने पर विवश होता है। धर्म की आड़ लेकर झुनिया के चंगुल से निकलना चाहता है। कहता है एक ब्राह्मण का मान रखने में तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा? स्वयं को असहाय बताकर लाभ उठाना चाहता है। कहता है कि ब्राह्मण की इच्छा को पूर्ण करो अन्यथा भगवान रुष्ट हो जाएंगे। दान का भूखा नहीं हूं, रूप का भूखा हूं।

विशेष

- ब्राह्मण वर्ग की विकृतियों का वर्णन किया गया है।
- झुनिया के साहसी स्वभाव का चित्रण हुआ है।
- झुनिया के द्वारा प्रेमचंद ने नारी जाग्रति एवं स्वाभिमान का वर्णन किया गया है।
- पुरुषों की कामुकता एवं लोलुपता का वर्णन हुआ है।
- झुनिया के कर्कश व्यवहार के फलस्वरूप ही उसे कोई अपनी हवस का शिकार नहीं बना पाया।
- पंडित मातादीन की असहाय स्थिति का वर्णन किया गया है।
- मुहावरेदार प्रवाहमयी भाषा प्रयुक्त हुई है।
- आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

- मैं तो केवल इतना जानता हूं। हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूं। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो तो मत खा, यह तो मेरी समझ में आता है। लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता समझता हूं और धूर्तता भी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह, मि. तन्खा, और पं. ओंकार नाथ में पारस्परिक वार्तालाप चल रहा है। अमरपाल सिंह की कथनी और करनी में अंतर है। बाहरी रूप से किसानं के साथ व्यवहारिकता का परिचय देकर प्रशंसा बटोरना चाहते हैं वहीं दूसरी ओर किसानों का शोषण करने में जरा भी हिचक

का अनुभव नहीं होता। प्रो. मेहता रायसाहब अमरपाल सिंह के इस दोगले व्यवहार से खिन्न हैं, अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए कहते हैं।

व्याख्या

मि. तन्खा रायसाहब अमरपाल सिंह की प्रशंसा करते हैं उन्हें साम्यवादी बताकर कहते हैं जबकि प्रो. मेहता की दृष्टि में यह उचित नहीं है। प्रो. मेहता रायसाह की दिखावे की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहते हैं कि किसानों का शोषण करना और पीठ पीछे उनसे सहानुभूति प्रदर्शित करना मनुष्य के दोगले व्यक्तित्व का द्योतक है। उनका मानना है कि साम्यवाद और रईसी एक दूसरे के विपरीत हैं। दोनों का एक साथ पालन करना संभव नहीं है। हमें अपने आचरण को सिद्धांतानुसार ढालना चाहिए। बाहरी दिखावा ढोंग मात्र है। उदाहरण देकर समझाते हैं कि मांस भक्षण बुरा नहीं हैं हां खाकर उसे बुरा कहना उससे अधिक घातक है। जीवन में पारदर्शिता अपनानी चाहिए। अच्छा समझकर छिपकर खाना श्रेयस्कर नहीं। ऐसा करना कायरता का सूचक है, साथ ही मक्कारी एवं धूर्तता का सूचक भी है।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद का जीवन दर्शन व्यक्त हुआ है।
- ❒ तथाकथित साम्यवादियों के दोगलेपन पर व्यंग्य किया गया है।
- ❒ प्रो. मेहता की चारित्रिक विशेषताओं का चित्रण किया गया है।
- ❒ राससाहब अमरपाल सिंह के दोहरे व्यक्तित्व का चित्रण किया गया है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है।
- ❒ सा□यवादी के लिए विचारों एवं करनी में एकरूपता का होना आवश्यक है।

- मैं स्वीकार करता हूं कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का धम है। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछलोग मौज करें और अधिक लोग पिसे और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती। पूंजी और शिक्षा जिसे मैं पूंजी का ही एक रूप समझता हूं। इनका किला जितनी जल्दीा टूट जाए, उतनी ही अच्छा है। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उसके अफसर और नियोजक दस-दस पांच-पांच हजार फटकारें। यह हास्यस्पद और लज्जास्पद भी है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह अपने व्यक्तित्व निर्माण की पृष्ठभूमि में अपने पारिवारिक प्रभाव को महत्वपूर्ण मानते हैं। अपने पिता के व्यवहार का वर्ण करते हुए कहते हैं, कि मेरे पिता किसानों के देवता कहलाते थे। प्रजा का पालन करना सर्वोपरि समझते थे इसके साथ ही अधिकार केरनाम पर एक कौड़ी भी किसानों पर छोड़ना पाप समझते थे। इसका प्रभाव मेरे जीवन पर भी पड़ा है। लेकिन किसानों की खुशहाली के लिए उन्हें अधिकार प्रदान करे पड़ेंगे। सद्भावना के आधारपर उनकी दशा सुधरने वाली नहीं। कानून के द्वारा ही हम मानवीय आचरण करने को बाध्य होंगे।

व्याख्या

अमरपाल सिंह अपनी मनोदसा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के लिए कर्म करना आवश्यक है। दूसरे के श्रम पर जीवन जीन सार्थक नहीं है। उपजीवी जीवन जीना शर्म एवं संकोच का प्रतीक है। यह धरती कर्मप्रधान है कर्मानुसार फलका मिलना स्वाभाविक है। परिश्रम द्वारा अर्जित संपत्ति में आनंद का अनुभव होत है। आत्मिक शांति मिलती है। समाज में स्थापित व्यववस्था में परिवर्तन अपेक्षित है तभी प्रत्येक व्यक्ति आत्मबंधन के लिए विवश होगा। मुठ्ठी भर लोग परिश्रम करें और बड़ा वर्ग उन पर आश्रित होकर अपनी मौज मस्ती में व्यस्त रहे, यह श्रेयस्कर नहीं है। इस व्यवस्था को पल्लवित करने में पूंजी और शिक्षा की अल्प भूमिका रही है। पूंजी ने वर्गीय भावना को पैदा किया है, शिक्षा बौद्धिक स्तर पर भेद को पैदा करने में सक्रिय रही है। इनका किला जितनी जल्दी समाप्त/टूट जाए तो उतना ही श्रेयस्कर है। एक ओर परिश्रम करने वाला वर्ग दो-दो दानों की मोहताज रहे और दूसरा वर्ग के सहारे दस-दस/पांच-पांच हजार रुपयों को डकार जाए। यह स्तिति जितनी हास्यास्पद है उतनी ही लज्जायुक्त भी है।

विशेष

- अमरपाल सिंह की भविष्यन्मुखी जीवन दृष्टि का वर्णन किया गया है।
- दर्शाया गया है कि परिश्रम करना प्राणीमात्रका धर्म है।
- समाज में पल्लवित पूंजी व्यवस्था एवं शिक्षात्मक व्यवस्था का चित्रण किया गया है।
- पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के लक्षणों का वर्णन है।
- वर्गीय भावना के दुष्प्रभवों का वर्णन किया गया है।
- रायसाहब की वैचारिकता, व्यवहारिकता का सजीव वर्णन है।
- प्रेमचंद के माउथपीस के रूप में अमरपाल सिंह को चित्रित किया गया है।
- आत्मनिर्भरता सम्मानित जीवन जीने के लिए आवश्यक है।

- ❒ गीता में भी कर्म की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- ❒ रामचरितमानस में कर्म की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है–

  कर्म प्रधान विश्व रचि राखा

  जो जस करत सो तस फल चाखा।
- ❒ सामान्य व्यवहार में भी कर्म की उपयोगिता प्रतिपादित की गई है–

  कर्मों की खेती है जगती, जैसी जिसने बोई

  देवों का भी कर्म नियन्ता एक और गत होई
- ❒ परिनिष्ठित हिंदी प्रयोग की गई है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- धन को आप बराबर फैला सकते हैं लेकिन बुद्धि को, चरित्र को, और रूप को, प्रतिभा को और बल को बराबर फैलाना तो आपकी शक्ति के बाहर हैं। छोटे-बड़े का भेद केवल धन से ही तो नहीं होता। मैंने बड़े-बड़े धन कुबेरों को भिक्षुकों के सामने घुटने टेकते देखा है, और आपने भी देखा होगा। रूप की चौखट पर बड़े-बड़े महीप नाक रगड़ते हैं। क्या यह सामाजिक विषमता नहीं हैं ? आप रूस की मिसाल देंगे। वहं इसके सिवाय और क्या है कि मिल के मालिक ने राज कर्मचारियों का रूप ले लिया है। बुद्धि तब भी राज करती थी अब भी करती है और हमेशा करेगी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता और संपादक ओंकारनाथ में युगीन व्यवस्था पर विचार-विमर्च चल रहा है। प्रो. मेहता का मानना है कि छोटे बड़े हमेशा रहेंगे, जबकि ओंकार नाथ इस व्यवस्था के विरोधी हैं, उनका मानना है कि बीसवीं सदी में ऊंच-नीच की भावना का समर्थन करना युगानुरूप नहीं हैं।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि समाज में एकरूपता का होना संभव नहीं हैं। ऊंच नींच की भावना हमेशा से रही है और रहेगी। प्रयत्न करने पर भी इस व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है। संपत्ति का विभाजन तो संभव है, लेकिन विचारों का समान होना संभव नहीं। बुद्धि का समान वितरण संभव नहीं है। चरित्र को समानता प्रदान करना दुष्कर है। रूप, प्रतिभा और शक्ति की समानता का होना असंभव है। केवल धन के आधार पर एकरूपता नहीं की जा सकती। बड़े-बड़े धन कुबेर

भिक्षुओं के सामने असहाय नजर आते हैं, रूप का आकर्षण किसे विचलित नहीं करता। बड़े महात्मा, योगी का सत् भी रूप के सामने डगमगा जाता है। सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए विषमता अपेक्षित है। रूप का उदाहरण व्यर्थ है। वहां भी बौद्धिक चेतना की प्रधानता पाई जाती है। बुद्धि की समानता मनुष्य की सामर्थ्य से परे है।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद ने यहां पर साम्यवादी व्यवस्था पर प्रकाश डाला है।
- ❒ सभी वर्गों की समानता करना संभव नहीं है।
- ❒ मनुष्य की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- ❒ प्रो. मेहता की दृष्टि में बौद्धिक चेतना सर्वोपरि है।
- ❒ सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली प्रयोग मे लाई गई है।

- बुद्धि अगर स्वार्थ से मुक्त हो, तो हमें उसकी प्रभुता मानने में कोई आपत्ति नहीं। समाजवाद का यही आदर्श है। हम साधु-महात्माओं के सामने इसीलिए सिर झुकाते हैं, कि उनमें त्याग का बल है। इसी तरह हम बुद्धि के हाथ में अधिकार भी देना चाहते हैं, सम्मान भी, नेतृत्व भी लेकिन संपत्ति किसी तरह कीन नहीं। बुद्धि का अधिकार और सम्मान व्यक्ति के साथ चला जाता है। लेकिन उसकी संपत्ति विष बोने के लिए, उसके बाद और भी प्रबल हो जाती है। बुद्धि के बिना किसी समाज का संचालन नहीं हो सकता। हम केवल इस बिच्छू का डंक तोड़ देना चाहते हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

रायसाहब अमरपाल सिंह प्रो. मेहता के आदर्शों से प्रसन्न नहीं हैं, अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए अमरपाल सिंह कहते हैं-

व्याख्या

प्रो. मेहता के विचारानुसार सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है, क्योंकि बुद्धि का विभाजन नहीं किया जा सकता। अमरपाल सिंह का मानना है कि बुद्धि अगर स्वार्थ से युक्त होती है तो विवेक का क्षय निश्चय है। समाजवाद भी बुद्धि का लोहा मानता है, तभी उसका यथोचित लाभ संभव है अन्यथा नहीं। शोषण, बेइमानी, अत्याचार और भ्रष्टाचार में बुद्धि का प्रयोग होने लगता है तो बुद्धि स्वीकार्य नहीं है। साधु संतों का सम्मान उनकी त्याग भावना एवं सदाशयता के कारण होता है। मानवता तभी जीवित रहती है जब तक कि उसमें त्याग प्रवृत्ति का अंश हो। मानव के दुर्गुणों का जन्म संपत्ति की कोष से होता है। उसका पतन भी इन्हीं कारणों से अवश्यंभावी है। बुद्धि संपन्न मानव का सम्मान होना स्वाभाविक है। उसका यह सम्मान उसके जीवन तक संभव है। जबकि धनवान व्यक्ति अपने साथ यश तो ले जाता है लेकिन अपने पछे विवद को छोड़ जाता है। पारस्परिक झगड़ों का जन्म स्वत: होने लगता है। इसीलिए संपत्ति रूपी बिच्छू का डंके तोड़ना आवश्यक है। बुद्धि से ही समाज का संचालन संभव है।

विशेष

- रायसाहब का बुद्धिचातुर्य दर्साया गया है।
- ज्ञात होता है कि विपत्तियों का जन्म संपत्ति के नीड़ से होता है।
- संपत्ति का वर्चस्व समाप्त करने के पीछे लेखक की समाजवादी भावना की अभिव्यक्ति की गई है।
- व्यक्ति के लिए यश की प्राप्ति बुद्धि से अधिक प्रभावशली होती है।
- व्यकाट की मृत्यु के साथ उसका प्रभुत्व भी स्वत: समाप्त ह जाता है।
- मानवता का जन्म ईमानदारी, त्याग, सहानुभूति से होता है।
- पूंजीवाद की समाप्ति की भविष्यवाणी व्यक्त की गई है।
- रूपक अलंकार का धनरूपी बिच्छू के रूप में प्रयोग हुआ है।
- मुहावरेदार भषा (सरल हिंदी) प्रयोग में लाई गई है।
- विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- गांधीवादी दर्शन की अभिव्यक्ति है।
- प्रेमचंद की प्रगतिशील विचारधार का वर्णन किया गया है।
- कबीरदास ने माया को महाठगिनी कहकर संबोधित किया है।

- विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूं, और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरुषों को है न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं, समझौता हो जाने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मनुष्य की पूर्णता नारी के संसर्ग से ही संभव है, यह संसर्ग विवाह संस्कार द्वारा ही प्राप्त होता है। प्रो. मेहता विवाह को बंधन मानते हैं। मि. खन्ना के विचार भी इसका समर्थन करते हैं। उनका मानना है कि बंधन और निग्रह पुराने विषय है, नये विषय उन्मुक्त विचरण का बोध कराते हैं। मालती प्रो. मेहता से विवाह के विषय पर विचार जानना चाहती है।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि विवाह समझौते का विकसित स्वरूप है। बिना सोचे समझे विवाह की परिणति अलगाव के रूप में देखने को मिलती है। पारस्परिक सहमति से किया गया विवाह सफल होता है। दोनों के लिए इस संस्कार का जीवनपर्यंत निर्वाह भी करना आवश्यक है। इसको तोड़ने (विच्छेद) का अधिकार किसी को नही हैं। स्वतंत्रता केवल समझौते से पूर्व ही होती है तत्पश्चात उसका पालन करना आवश्यक है।

विशेष

- ❒ प्रो. मेहता संस्कारी जीवन में विश्वास करते हैं इसीलिए विवाह संस्कार का पालन करना अपेक्षित समझते हैं।
- ❒ समझौते से मुस्लिम विवाह का समर्थन करते हैं।
- ❒ विवाह 8 प्रकार के माने गए हैं।
- ❒ वि वाह के लिए पूर्व सहमति का होना समाज की आधारशिला का सूचक है।
- ❒ लेखक के अनुसार विवाह विच्छेद करना सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से त्याज्य है।

- इस स्वच्छंद जीवन से उनके मन में अनुराग उत्पन्न हुआ। सामने की पर्वतमाला दर्शन तत्व की भांति अगम्य और अत्यंत फैली हुई, मानो ज्ञान का विस्तार कर रही हो, मानो आत्मा उस ज्ञान को, उस प्रकाश को, उस अगम्यता को, उसके प्रत्यक्ष विराट रूप में देख रही हो। दूर के एक बहुत ऊंचे शिखर पर एक छोटा सा मंदिर था जो उस अगम्यता में बुद्धि की भांति ऊंचा, पर खोया हुआ सा खड़ा था। मानो वहां तक पर मारकर पक्षी विश्राम लेना चाहता है और कहीं स्थान नहीं पाता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

शिकार खेलते समय प्रो. मेहता का परिचय एक ग्रामीण युवती से हुआ, जिसकी स्वच्छंदता, भोला स्वभाव उसे प्रभावित कर गया। उस ग्रामीण युवती की निर्भीकता एवं निश्छलता मन को भा गई। अपनी उन्मुक्त प्रवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो. मेहता कहते हैं-

व्याख्या

प्रो. मेहता पीपल वृक्ष के नीचे निश्चिंत होकर अपने आंतरिक पक्ष पर दृष्टिपात करने लगे। उनके खाली जीवन में अनुराग का उदय होने लगा। उसके सम्मुख विशाल पर्वतों की चोटियां किसी दार्शनिक की भांति गंभीरता का बोध करा रहीं थी, ऐसा लगता था मानो वह ज्ञान का विस्तार कर रही हों। उसकी अंतरात्मा उस ज्ञान को आत्मसात करने को उत्सुक थी। उस अलौकिक प्रकाश का आनंद ले रही थी। गंभीरता अपने प्रत्यक्ष रूप में सामने व्यक्त हो रही थी। दूरी पर स्थित ऊंचे शिखर पर बना मंदिर आकर्षण का केंद्र था, जिससे बुद्धि का प्रकाश चहुं ओर फैल हुआ था। प्रो. मेहता की स्थिति उस थके पक्षी के समान थी जो विश्राम के लिए व्यग्र था क्योंकि उसको अन्यत्र जाना दुष्कर था।

विशेष

- ❒ प्रो. मेहता का दार्शनिक व्यक्तित्व मुखरित हुआ है।
- ❒ कथात्मक भाषा का प्रयोग किया गया है।
- ❒ उपमा, रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
- ❒ दर्शन का क्षेत्र व्यापकता की अपेक्षा रखता है।
- ❒ प्रो. मेहता ने अपनी तुलना पक्षी से की है।
- ❒ अलंकारिक शैली की प्रधानता है।

- मुझे अब डेमोक्रेसी में भक्ति नहीं रही। जरा सा काम और महीनों की बहस। हां जनता की आंखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग है। इससे तो कहीं अच्छा हैकि एक गर्वनर रहे, चाहे वह हिंदुस्तानी हो या अंग्रेज, इसमें बहस नहीं। एक इंजन जिस गाड़ी को बड़ेमजे से हजारों मील खींच ले जा सकता है उसे दस हजार आदमी मिलकर भी उतनी जेती से नहीं खींच सकते। मैं तो यह सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेजार हो गया हूं। मेरा बस चले तो कौंसिल में आग लगा दूं। जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। रुपये के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएं तैयार हो

जाती हैं। बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े मौलवी, बड़े-बड़े लिखने और बोलने वाले जो अपनी जबान और कलम से पब्लिक को जिस तरह चाहे फेर दें, सभी सोने के देवता के पैरों पर माथा रगड़ते हैं। मैंने तो इरादा कर लिया है, अब इलैक्शन के पास न जाऊंगा। मेरा प्रोपेगंडा अब डेमोक्रेसी के खिलाफ होगा।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मि. तन्खा दांवपेंच के आदमी थे। वह स्वार्थहित असंभव को संभव बना सकते थे। चुनाव के समय उनकी पौ बारह हो जाती थी, किसी का समर्थन कर दस-बीस हजर ऐंठ लेना उनके बाएं हाथ का खेल था। उन्होंने कहा कि इस बार चुनाव में काफी उथल-पुथल होगी। बड़े-बड़े किले धरशायी होंगे।क्या इस बार मिर्जा जी का चुनाव लड़ने का इरादा है या नहीं। मिर्जा ने अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा-

व्याख्या

मि. तन्खा के प्रश्नों का उत्तर देते हुए मिर्जा जी कहते हैं कि चुनाव में अब निष्पक्षता नहीं रही। लोकतंत्र केवल नाममात्र को है। जो इसका समर्थन करते हैं, वही उसकी सबसे अधिक अवहेलना करते हैं। बहुत झुठे बायदे करने पड़ते हैं। महीनों पूर्व शारीरिक, मान सिक कसरत करनी पड़ती है। जनता भी बहुत चालाक हो गई है। किसी प्रत्याशी को निराश कर सिर दर्द मोल लेना नहीं चहती। सभी से धन ऐंठना चाहती है। अब लोकतंत्र केवल जनता को धोखा देने के लिए सबसे अच्छा साधन है। खूब झूठ बोलो, जीतने पर कभी उनकी ओर फिर न देखो। जब मिलने आएं तो पहचानने से इंकार कर दो। इससे तो कहीं बेहतर है हर प्रांत का गवर्नर बना दिया जाए, भले ही वह हिंदुस्तानी रियासत का हो या फिर ब्रिटिश साम्राज्य का। जिस प्रकार एक इंजन अनेक डिब्बो को खींचकर ले जा सकता है, ठीक उसी प्रकार एक गवर्नर पूरे राज्य को सुगमता से चला सकता है।

इस सभी प्रयासो से अब मुझे विरक्त होने लगी है। मैं कौंसिल से अलग हो गया हूं। जिसे डेमोक्रेसी कहते हैं उसमें अब बड़े व्यापारियों एवं जमींदारो का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है। अब उसकी विजय होती है जिसके पास धन दौलत है। धन के बल पर सभी सुविधाएं प्राप्त हो सकती हैं। बड़े-बड़े पंडित, मौलवी, लेखक सभी धनवानों के सामने नाक रगड़ते नजर आते हैं।

इसीलिए मैंने अब भविष्य में चुनाव न लड़ने का मन बना लिा है। अब मेरा उद्देश्य लोकतंत्र के विरुद्ध आवाज बुलंद करना है।

विशेष

- ❒ लोकतंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर संकेत किया गया है।
- ❒ जिस लोकतंत्र की स्थापना स्वच्छ प्रशासन के लिए की गई थी, उसकी पृष्ठभूमि में व्याप्त मनुष्यों की स्वार्थी भावना का वर्णन किया गया है।
- ❒ लोकतंत्र में बेईमानी तथा धन के हस्तक्षेप के फलस्वरूप ही पूंजीपतियों का वर्चस्व बढ़ता जा रहा है।
- ❒ मि. मिर्जा की बदलती मन:स्थिति का चित्रण किया गया है।
- ❒ मुहावरेदार भाषा का उत्तम प्रयोग हुआ है, जैसे नाक रगड़ा, धूल झोंकना, माथा रगड़ना।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ स्वांग-तद्भव शब्द प्रयुक्त हुआ है।
- ❒ अंग्रेजी शब्दो- गवर्नर, प्रोपेगंडा कौंसिल, डेमोक्रेसी आदि का प्रयोग किया गया है।
- ❒ जोर, बाजी, इरादा, मजे, बेजार, इलेक्शन, खिलाफ-अरबी/फारसी शब्दो का प्रयोग किया गया है।
- ये रुपये कहां लिए जा रहा है, बता? भला चाहता है जो सब रुपये लौटा दो, नहीं कहे देती हूं। घर के परानी रात-दिन मरें, और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुलि भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने। ऐसी बड़ी है तेरी इज्जत! जिसके घर में चूहे लोटें, वह भी इज्जत वाला है! दारोगा तलासी ही तो लेग। ले ले जहां चाहे तलासी। एक तो सौ रुपये की गाय गई, उस पर यह लपेथन! वाह री तेरी इज्जत।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी की इच्छा थी गाय पालने की। गाय घर आई, विपत्तियों का पहाड़ लेकर आई। भाई हीरा द्वारा जहर देने पर गाय मार दी जाती है, तत्पश्चात शुरु होता है शोषण का खेल, जिसमें झिंगुरी सिंह, पटेश्वरी और दारोगा अपने-अपने तरीके से होरी को लूटना चाहते है। होरी घर की इज्जत बचाने के लिए दारोगा को ब्याज पर रुपये लेकर देने को तैयार है। धनिया (पति) होरी की मन:स्थिति को व्यंत करती कहती है-

व्याख्या

होरी घर की लाचारी के आगे विवश है, जबकि धनिया होरी की मूर्खता पर व्यंग्य करती है। अंगोछे में बंधे रुपयों की पोटली छीनकर फटकारती है। इन रुपयों को लेकर घर की इज्जत बचाने की कोशिश करता है। जबकि घर के प्राणी दाने-दाने को परेशान हैं। जिस्म ढकने को कपड़ा मिलना दुष्कर है, ऐसी स्थिति में कर्ज लेकर रिश्वत देकर घर की आबरू बचाने का ढोंग व्यर्थ ही है।

जिसके घर में चूहों को भी एक दाना न मिले वह व्यक्ति कैसे सम्मान पा सकता है। घर की तलाशी से कोई हानि नहीं है। गायकी हानि के साथ रुपयों को देकर और मुसीबत खड़ी करना मूर्खता का प्रतीक है।

विशेष

- ❒ धनिया का ओजस्वी व्यक्तित्व व्यक्त हुआ है।
- ❒ धनिया के द्वारा नारी चेतना का वर्णन किया गया है।
- ❒ होरी के निर्मल स्वभाव का वर्णन है।
- ❒ परिवार के प्रति धनिया की सजगता एवं उत्तरदायित्वका वर्णन हुआ है।
- ❒ यह अवतरण शोषण की झांकी प्रस्तुत करता है।
- ❒ होरी की पारिवारिक स्थिति (दयनीय दशा) का चित्रण है।
- ❒ मुहावरेदार सरल भाष का प्रयोग किया गया है।
- ❒ उर्दू/अरबी/फारसी शब्दों का बहुलता से प्रयोग हुआ है, जैसे जमीन, मयस्सर, दारोगा, इज्जत, तलाशी, तरसें।
- ❒ नागिन की तरह- उपमा अलंकार का उदाहरण है।
- ❒ देशज शब्द- लत्ता, पलेथन प्रयुक्त हुए हैं।
- ❒ शब्दों की पुनरावृत्ति- दाने-दाने, ले-ले के रूप में हुई है।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अंधेरे में भी जैसे दीपक समान उसकी चिंता-जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो उठा। होरी को इस बीत-योवना में भी वही कोमल हृदय बालिका नजर आई, जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस आलिंगन में कितना अथाह वात्सल्य था जो सारे कलंक सारी बाधाओं और सारी मूलबद्ध परंपराओं को अपने अंदर समेट लेता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर भोला अहीर की पुत्री झुनिया को गर्भवती बनाकर घर से निकल जाता है। होरी और धनिया पुत्र गोबर की हरकतों से दु:खी हैं। उनकी सामाजिक मर्यादा भंग हो गई। अवशेष इज्जत भी समाप्त हो चली थी। धनिया होरी (पति) को झुनिया के प्रति विनम्र व्यवहार करने की सलाह देती है कि तुम झुनिया पर कभी हाथ न उठाना। उसका भाग्य ही खोटा है।

व्याख्या

धनिया की स्नेहमयी वाणी को सुनकर होरी का हृदय बदल गया. उफनता क्रोध विलुप्त होने लगा था। धनिय की मृदुल मुस्काने होरी को पच्चीस वर्ष पूर्व के वैवाहिक क्षणों की स्मृतियों में पहुंचा दिया। स्वयं होरी भी उस अतीत की कल्पना में डूब गया। धनिया के स्नेह ने होरी के अंधेरे जीवन में आशा का संचार कर दिया। उसकी मृदुमयी सलाह ने दीपक के समान होरी को न्याय का रास्ता दिखाया। दोनों अपने अतीत की यादों में खो गए। होरी को धनिया आज वही पच्चीस वर्ष पूर्व की बालिका नजर आ रही थी, जिसने उसके जीवन में प्रवेश किया था। उस पूर्व आलिंगन में अथाह वात्सल्य का सागर उमड़ रहा था, जिसके सामने समाज के सभी कलंक, सरी बाधाएं तिरोहित होती नजर आ रही थी।

विशेष

- ❒ धनिया की नारी सुलभ जिज्ञासाओं का वर्णन है।
- ❒ धनिया की प्रेरणा ने होरी की मन:स्थिति को बदल दिया।
- ❒ धनिया का झुनिया की दशा को देखकर द्रवित होना स्वाभाविक है।
- ❒ वैवाहिक जीवन के क्षण मनुष्य को कभी न विस्मृत होने वाले क्षण होते हैं।
- ❒ यह यथार्थ है कि मनुष्य अतीत की मधुर स्मृतियों के सहोर वर्तमान को सुखद बनाता है।
- ❒ गोबर की उत्तरदायित्वहीनता का वर्णन है।
- ❒ दीपक के समान- उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना। हम तो मिट जाएंगे, कौन जाने इस गांव में रहें या न रहें, लेकिन मेरा श्राप तुमको भी जरुर से जरुर लगेगा। मुझसे इतना

बड़ा जरीबाना इसलिए किया जा रहा है, कि मैंने अपनी बहू को **क्यों** अपने घर में रखा। **क्यों** उसे घर से निकालकर सड़क की भिखारिन नही बना दिया। यही न्याय है-ऐं ?

संन्दर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

धनिया द्वारा झुनिया को घर में आश्रय देने पर सारे गांव में तरह-तरह की चर्चा होने लगी। शोषकों को अपनी मनमानी करने का सुनहरा अवसर प्राप्त हो गया। दातादीन ने धनिया से बदला लेना चाहा। पटेश्वरी होरी के व्यवहार से नाखुश थे। स्वयं दो पत्नी रखने वाले झिंगुरी सिंह भी धनिया की सदाशयता से दुःखथी थे। पंचायत में होरी पर दो सौ रुपये का जुर्माना तीस मन अनाज दंड लगाना तय हुआ। धनिया पंचायत के फैसले से सहमत नहीं थी। वह अपनी असहमति व्य**क्त** करती है।

व्याख्या

पंचायत का दंड सुनकर धनिया अपना प्रतिकार करती हुई कहती है, कि पंच को परमेश्वर माना जाता है। उसका फैसला सर्वोपरि एवं सर्वमान्य होता है। लेकिन इन पंचों का रवैया शोषण से यु**क्त** है। अपनी व्यथा को व्य**क्त** करती हुई कहती है कि गरीब को सताकर कोई सुखी नहीं रह सकता। गरीब की हाय इन पंचों पर अवश्य पड़ेगी। हमरे मिटने पर भी हमारी हाय इनको भस्म कर देगी, **क्यों**कि गरीब का दिल दखाना अच्छा नहीं होता। अपनी बहू को घर में रख लेना पाप नहीं है, समाज विरुद्ध भी नहीं है। उसे अपनाकर मैंने कोई अनुचित कार्य नहू किया है। न्याय व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए धनिया कहती है कि न्याय करना विवेक का परिचायक है। किसी को दाने-दाने के लिए मोहताज करना न्यय का कार्य नही है।

विशेष

- धनिया का आक्रोश व्य**क्त** हुआ है।
- यह अवतरण शोषण की प्रक्रिया पर प्रकाश डालता है।
- धनिया का युगीन न्याय व्यवस्था के प्रति क्षोभ व्य**क्त** हुआ है।
- मेहरिया रख लेना पाप नहीं, रखकर छोड़ देना पाप है।

- ❒ धनिया की नारी सुलभ जिज्ञासाओं का वर्णन है।
- ❒ श्राप-तद्भव शब्द, जरीबना का प्रयोग हुआ है।
- धनिया दांत कटकटाकर बोली- मैं एक दाना न अनाज दूंगी न कौड़ी दूंगी जिसमें बूता हो चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है, सोचा दंड के बहाने उसकी सब जैजत ले लो, और नजराना देकर दूसरों को दे दो। बाग-बगीचा बेचकर मजे से तरमाल उड़ाओ। धनिया के जीते ही यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकतन हो जाएगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खाएंगे।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

धनिया को झुनिया को घर में आश्रय देने के दंड स्वरूप पंचायत का कोप सहना पड़ा। जातिगत विषमता के कारण होरी पर जुर्माना लगाया गया। गांव के दातादीन, नोखेराम, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह को यह सब असहनीय लगा। होरी पर झुनिया को घर से निकालने का दबाव बनाया गया। होरी ने इंसानियत के नाते इंकार कर दिया। रात्रि को गोबर को पुत्ररत्न की प्राप्ति होने पर दो रुपये और तीस मन अनाज देने को कहा, धनिया पंचों का प्रतिकार करती हुई यह कहती है।

व्याख्या

धनिया पंचों पर अपना क्रोध व्यक्त करती है कि पंचों का कार्य न्या करना है। न्याय की आड़ में शोषण करनी नहीं। मैं देखती हूं, कौन है जो अनाज और रकम वसूल करेगा? जिसमें शक्ति हो मुझसे आकर ले ले। दंड की आड़ में जमीन हड़पने की चाल मैं पूरी नहीं होने दूंगी। मेरा बाग बगीचा बेचकर मौजमस्ती करना चाहते हो। धनिाय के होते यह संभव न हीं हैं। पंचों तुम्हारा इरादा कभी पूरी नहीं होगा, यह अभिलाषा तुम्हारे दिल में ही रह जाएगी। जाति-बिरादरी की धमकी देकर अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हो। इस जाति से हमारा उद्धार होना संभव न हीं है। हमें कर्म पर विश्वास है। कर्म करते हैं तो खाते हैं। परिश्रम के द्वारा कहीं भी जीवित रह सकते हैं। बिरादरी हमारी पेट की भूख नहीं मिटा सकती।

विशेष

- ❒ धनिया का ओजस्वी स्वरूप व्यक्त है।
- ❒ अन्याय को सहन कर लेना शोषण की सहमति को व्यक्त करता है।

- ❒ जाति-बिरादरी से धनिया का मोह भंग दिखाया है।
- ❒ कृषकों का शोषण अनेक रूपों में होता है। पंचायत का दंड सर्वोपरि माना जाता है।
- ❒ होरी अनुभवी है। पंचायत की नीयत से परिचित होने पर भी बिरादरी के सामने प्रतिकार न करना असमर्थता को दर्शाता है।
- ❒ भाषा सरल सहज प्रवाहपूर्ण हिंदी।
- ❒ आत्माभिव्यक्ति शैली।
- ❒ मुहावरों का प्रयोग।
- ❒ परिश्रम करना प्राणिमात्र का धर्म है।
- ❒ कर्म प्रधान सर्वोपरि है।
- ❒ नारी चेतना का दिगदर्शन किया गया है।

- मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, हां रख केर छोड़ देना पाप है। आदमी का बहुत सीधा होना भी बुरा है। उसके सीधेपन का फल यही होता है कि कुत्ते भी मुंह चाटने लगते हैं।

  आज उधर तुम्हारी वाह-वह हो रही होगी, कि बिरादरी की कैसी मरजाद रख ली। मेरे भाग्य फूट गए थे कि तुम जैसे मर्द से पाला पड़ा था। कभी सुख की रोटी न मिली।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी को घर आने में देर हो गई तो धनिया देरी का कारण पूछती है। होरी इस विपत्ति का उत्तरदायी गोबर को मानता है। पंचायत ने दंड देकर मेरा हुक्का पानी बंद कर दिया है तो धनिया कहती है कि हुक्का पानी न पीते तो क्या दुबले हो जाते? होरी धनिया को बिरादरी के दुष्परिणामों से अवगत कराता है कि बिरादरी के आगे किसी की नहीं चलती।

व्याख्या

धनिया (पति) होरी की सदाशयता एवं भोलेपन से दु:खी है। उसका मानना है कि जब कोई चोरी नहीं की तो कैसा डरना? किसी का माल नहीं उड़ाया। मेहरिया को रख लेना पुण्य का कार्य है। उसे छोड़कर मैं पाप की भागीदार नहीं बनना चाहती। लेकिन यह पंचों की नीचता है कि मेहरिया को घर में रखने पर दंड लगाने पर अमादा हैं। तुम सीधे हो, आदमी का सीधापन उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता है इसीलिए हमें भी तुम्हारे सीधेपन का दुष्परिणाम झेलना पड़ रहा है। अधिक सीधा होने पर कुत्ता भी मुंह चाटता है। तुम्हें कर्ज में डुबोकर प्रशंसा कर रहे हैं, कि होरी

ईमानदार है वफादार है, मेरे भाग्य में ही ऐसा लिखा था कि मेरा तुम्हारे साथ विवाह लिखा था, आज तक कभी सुख की एक रोटी भी न मिली।

विशेष

- ❒ धनिया के उद्‌गार होरी की आर्थिक स्थिति का चित्रण करते हैं।
- ❒ धनिया का स्वाभिमान अभिव्यक्त किया गया है।
- ❒ होरी की निर्मल आत्मा एवं स्वभाव का वर्णन है।
  मेहरिया से आशय (पत्नी) से है।
- ❒ यह अवतरण शोषण को सचित्र उपस्थित करता है।
- ❒ मुहावरेदार भाषा का प्रयोग हुआ है, जैसे- मुंह चाटना, भाग फूटना आदि।
- ❒ मर्द, मरजाद, आदमी आदि उर्दू शब्द प्रयुक्त हुए हैं।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।

- झुनिया किसी वियोगी पक्षी की भांति अपने छोटे से घोंसले में एकांत जीवन काट रही थी। वहां नर का मस्त आग्रह न था, न उद्दीप्त उल्लास, न शावकों की मीठी आवाजें मगर बेहलिया का जाल और छल भी तो वहां न था। गोबर ने उसके एकांत घोंसले में जाकर उसे कुछ आनंद पहुंचाया या नहीं कौ जाने; पर उसे विपत्ति में तो डाल हीदिया। वह संभल गया। भागता हुआ सिपाही मानो अपने साथी का बढ़ावा सुनकर पीछे लौट पड़ा।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्‌धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर झुनिया के गर्भवती हेने पर उसे अपने घर ले जाकर छोड़ दिया। मां-बाप के डर से छिपकर देखा कि झुनिया को घर प्रवेश मिल गया है तो स्वयं शहर भाग गया। झुनिया के साथ बिताया समय उसकी आंखों के सामने आने लगा। उपन्यासकार ने गोबर की इसी मन:स्थिति का वर्णन करते हुए कहा।

व्याख्या

गोबर को झुनियाके साथ बिताए क्षण रह-रहकर आंखों के सामने आने लगे। उसने झुनिया से प्रेम और विवाह की जो कसमें खाई थीं, सब याद आने लगीं। वह उस मिलन की घड़ी में अपने प्राणों का उत्सर्ग करने को भी तैयार रहता था अर्थात पूर्ण समर्पण व्यक्त करता था। इधर झुनिया ने वैधव्य जीवन में बिताए पल वियोगी पक्षी की भांति व्यतीत किये थे। उसके जीवन में मनुष्य का आग्रहपूर्ण व्यवहार न था। चारों ओर विरानी दिखाई देती थी। प्रसन्नता के नाम पर पक्षियों का

चहचहाहट भी न थी, न कोई उल्लास व उमंग थी। यहां तक बहेलिया का वह कपटपूर्ण व्यवहार भी न था। ऐसे वियोगी जीवन में कुछ समय के लिए आनंदमय वातावरण की सृष्टि की, वह भी क्षणिक थी पर उस क्षणिक आनंद ने विपत्ति के अथाह सागर में अवश्य गिरा दिया था जहां से निकलना दुष्कर था। गोबर को अपने किये पर पश्चाताप था वह उसे विपत्ति की घड़ी से निकालने को उत्सुक था। वह उसे भोला के भाइयों के दुर्व्यवहार से बचाकर ले आया था। वह सिपाही की भांति वापस आकर छिपकर झुनिया की स्थिति को देखना चाहता था। पूर्ण आश्वस्त होने पर ही वह शहर गया था।

विशेष

- ❒ गोबर के अंर्तद्वंद्व का चित्रण है।
- ❒ गोबर का पश्चाताप दृष्टव्य है।
- ❒ गोबर आधुनिक वर्ग का प्रतीक है इसीलिए उसने विधवा झुनिया को आश्रय प्रदान कर परोपकार के साथ सुधारवादी दृष्टिकोण भी व्यक्त किया है।
- ❒ श्रृंगार रस का सफल चित्रण किया गया है।
- ❒ वियोगी पक्षी की भांति- उपमा अलंकार का प्रयोग हुआ है।
- ❒ भागता हुआ सिपाही मानो- उत्प्रेक्ष अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- ❒ शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- ❒ विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।

- मेरे जहन में औरत बफा और त्याग की मूर्ति है, जो अपने बेजबानी से, अपनी कुर्बानी से अपनो को बिल्कुल मिटाकर पति की आत्मा का एक अंश बन जाती है। देह पुरुष की रहती है, पर आत्मा स्त्री की होती है। आप कहेंगे, मर्द अपने को **क्यों** नहीं मिटाता? औरत से ही **क्यों** इसकी आशा करता है? मर्द में वह सामर्थ्य ही नहीं है। वह अपने को मिटाएगा, तो शून्य हो जाएगा। वह किसी खो में जा बैठेगा, और सर्वात्मा में मिल जाने का स्वपन देखेगा। वह तेज प्रधान जीव है और अहंकार में यह समझकर कि ज्ञान का पुतला है, सीधा ईश्वर में लीन होने की कल्पना किया करता है। स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति संपन्न है, सहिष्णु है, पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाएं तो वह कुलटा हो जाती है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मिर्जा खुर्शीद द्वारा आयोजित कबड्डी आयोजन में प्रो. मेहता और मिस मालती भी आते हैं। दोनों की निकटता को देखकर मिर्जा खुर्शीद बोले कि मेहता जी मालती से विवाह कब करने वाले हैं। प्रो. मेहता ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा कि मैंने नारी के लिए जिन गुणों की कल्पना की है उनमें से मालती में एक भी गुण नहीं है। मुझे मेरी कल्पनानुसार स्त्री मिलेगी तभी विवाह करूंगा। अपनी इसी मनोवृत्ति का परिचय देते हुए प्रो. मेहता ने कहा।

व्या□या

प्रो. मेहता अपने मनोनुकूल नारी की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहते हैं कि औरत के व्यक्तित्व में वफादारी, त्याग का होना आवश्यक है। वही उसका सौंदर्य है। उसके जीवन की सार्थकता त्याग, सेवा द्वारा ही सिद्ध होती है। स्वयं को मिटाकर पुरुष को पूर्ण बनाना ही उसके जीवन का उद्देश्य है। पति पत्नी का संबंध इतना घनिष्ठ है कि एक के बिना दूसरे का जीवन निरर्थक ही रहता है। शरीर भले ही पुरुष का है लेकिन आत्मा स्त्री की होती है, अर्थात पत्नी त्याग सेवाभाव से ही पति पर पूर्ण अधिकार पाने में सफल होती है। पुरुष से इन विशेषताओं की अकांक्षा करना व्यर्थ ही है क्योंकि पुरुष अगर ऐसा करता है तो वह शून्यता का वरण करता है। अर्थात पुरुष से त्याग, सेवा की उम्मीद करना ही अनुचित है। उसमें तेज का गुण विद्यमान होता है जो उसे क्रियाशीलता प्रदान करता है। ज्ञान के आधार पर किसी खोह में तप कर ईश्वर को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अर्थात अपनी आत्मा का परमात्मा मे विलय कर देता है। स्त्री पुरुष के विपरीत स्वभाव वाली होती है उसमें तेज की अपेक्षा धैर्य का गुण पाया जाता है। शांतिप्रियता भी स्त्री की विशेषता होती है। पुरुष इन गुणों को धारण करेन पर महात्मा बन जाता है जबकि स्त्री पुरुष के गुणों से सुसज्जित होने पर कुलटा कहलाने लगती है। पुरुष स्त्रीत्व गुणों से प्रभावित होकर ही आकृष्ट होता है।

विशेष

- ❒ प्रो. मेहता का मालकी के प्रति अनाकर्षण का कारण उसका पुरुष स्वभाव है।
- ❒ स्त्री के गुणों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है।
- ❒ स्त्री जीवन की सार्थकता स्वयं को मिटाकर पति (पुरुष) को पूर्ण बनाने में निहित है।
- ❒ वैवाहिक जीवन के लिए स्त्री पुरुष का पारस्परिक आकर्षण अपेक्षित है।
- ❒ प्रो. मेहता के द्वारा प्रेमचंद के विचार व्यक्त हुए हैं।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।
- ❒ संन्यासी जीवन पर प्रकाश डाला गया है।
- ❒ तत्सम शब्द युक्त साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- ❒ नारी गूणों से युक्त मनुष्य को स्त्रैण भी करा जाता है।

- स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकश अंधेरे से। मनुष्य के लिए छाया और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्च आदर्श है। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म, आध्यात्म और ऋषियो का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका है। मैं कहता हूं, उसका सारा आध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

वीमेंस लीग में भाषण देते हुए प्रो. मेहता ने कहा कि स्त्री और पुरुष को समान नहीं माना जा सकता। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है क्योंकि उसमें त्याग, सेवा, क्षमा अहिंसा आदि गुणों का समावेश है, जबकि पुरुष इन गुणों को सदियों से प्राप्त करने कार प्रयत्न कर रहा है लेकिन सफल नहीं हुआ है।

व्याख्या

प्रो. मेहता के विचार उन लोगों से नहीं मिलते जो स्त्री और पुरुष की समानता के पक्षपाती हैं। स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष है जितना कि प्रकाश अंधेरे से। स्त्री प्रकाश है तो पुरुष अंधकार। प्रत्येक मानव का मानवीय गुणों से युक्त होना आवश्यक है। मानव इसी प्रयास में लिप्त है लेकिन सफलता अभी कोसों दूर है। क्षमा, त्याग अहिंसा आदि गुणों से ही मनुष्य मानव कहलाने का अधिकारी है जबकि स्त्री को यह गुण उसे मां की छत्रछाया से प्राप्त होते हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है यै जन्मजात गुण हैं जो नारी में स्वत: पल्लवित होते हैं। पुरुष स्त्री की अेपक्षा क्रोधी, अहंकारी, स्वार्थी और अहिंसक है। वह कभी धर्म के सान्निध्य में तो कभी आध्यात्म की आड़ में इन तत्वों को खोजने का प्रयत्न करता है। उसकी वर्षो की तपस्या भी इसमें कारगर सिद्ध न हुई। प्रो. मेहता का मानना है कि नारी का त्याग ही उसकी महानता का सूचक है। पुरुषो का धर्म एवं आध्यात्म इसके सामने तुच्छ ही रहते हैं। इन्हीं गुणों के कारण नारी पुरुषों से श्रेष्ठ हैं। मैं दोनों को समान मानने का विरोध करता हूं।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद ने प्रो. मेहता के माध्यम से अपने विचारों को अभिव्यक्ति दी है।

- ❒ त्याग, क्षमा एवं अहिंसा नारियों के स्त्रियोचित गुण हैं।
- ❒ प्रेमचंद का आदर्शवादी पक्ष व्यक्त हुआ है।
- ❒ मानवतावादी भावना का दिग्दर्शन किया गया है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली की छा दृष्टव्य है।
- ❒ सहज एवं प्रवाहपूर्णा भाषा का प्रयोग किया गया है।
- ❒ उपमा अलंकार प्रयुक्त हुआ है।
- ❒ आदर्शवाद को धर्म एवं आध्यात्म के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।
- ❒ प्रेमचंद ने नारी के पुरुषों से श्रेष्ठ बताकर नारी के प्रति सम्मान व्यक्त किया है।
- ❒ प्रो. मेहता की बहुज्ञता एवं स्पष्टता का वर्णन है।

- मैं आपसे पूछता हूं, क्या बाज को चिड़ियों का शिकार करते देखकर हंस को यह शोभा देगा, कि वह मानसरोवर की आनंदमयी शांति को छोड़कर चिड़ियों का शिकार करने लगे? और अगर वह शिकार करने लगे.तो क्या आप उसे बधाई देंगी? हंस के पास उतनी तेज चोंच नहीं है, उतनीतेज आंखें नहीं हैं, उतने तेज पंख नहीं हैं, उतनी तेज रक्त की प्यास नहीं है। उन अस्त्रों का संचय करने में उसे सदियां लग जाएंगी, फिर भी वह बाज बन सकेहा या नहीं इसमें संदेह है, मगर बाज बने या न बने, वह हंस न रहेगा वह हंस जो मोटी चुगता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

वीमेंस लीग में प्रो. मेहता का भाषण चल रहा है। उन्होंने नारी को पुरुषों से उतना ही श्रेष्ठ माना, जितना कि प्रकाश अंधेरे से। उनकी दृष्टि में स्त्री पुरुष से हमेशा श्रेष्ठ है क्योंकि वह गुण उसे स्वतः प्राप्त होते हैं जबकि पुरुष को धर्म एवं आध्यात्म का भी सहारा लेना पड़ता है। रायसाहब, संपादक जी और मिस्टर खन्ना को प्रो. मेहता का कोरा सिद्धांतहीन लगता है।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि वर्तमान संस्कृति में पुरुष प्रधानता का वर्सस्व है। वैज्ञानिकों, आविष्कारकों, प्रवर्ततकों एवं महात्माओं ने ध्वंसात्मक मूल्यों को जन्म दिया है। उन्होंने नारी को हंस और पुरुष को बाज माना। हंस नारी के समान सात्विक प्रवृत्ति का है, जबकि बाज हिंसक

प्रवृत्ति का। हंस कभी भी चिड़ियों का शिकार करने की इच्छा प्रकट नहीं करता क्योंकि वह मानसरोवर की शांतिप्रिय आनंददायिनी जीवन शैली को छोड़कर जाना पसंद नहीं करता। अगर वह ऐसा करता है, तो उसे बाज के समान गुणों से युक्त होना पड़ेगा। तेज पंजे, नुकीली चोंच, बंकिम दृष्टि एवं हिंसक प्रवृत्ति को धारण करना आवश्यक है। जबकि उसके अंग प्रत्यंग निस्तेज हैं। इन का संचय करने में उसे लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, साथ ही न तो वह हंस रहेगा, और न बाज।

ईश्वर ने स्त्री को पुरुष से गुणों के आधार पर अलग बनाया है। यदि वह पुरुष का अनुसरण करेगी तो उसे अपनी शांति को खोना पड़ेगा। उसे समाज में वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होगी। पुरुष की तामसिक वृत्ति स्त्री में नहीं समा सकती, इसीलिए स्त्रियों को पुरुषों की नकल न करके अपने मार्ग का अनुसरण करना ही श्रयस्कर होगा।

विशेष

- प्रेमचंद के नारी विषयक उद्‌गारों की अभिव्यक्ति की गई है।
- भारतीय नारी का आदर्श उसके स्त्रियोचित गुण ही हैं।
- प्रो. मेहता की नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट हुई है।
- पाश्चात्य संस्कृति के दुष्प्रभावों की ओर संकेत किया है।
- लोकोक्ति- कौवा चेल हस की चाल, भूल गया अपनी भी चाल का सुंदर प्रयोग हुआ है।
- प्रतीकात्मक शैली अपनाई गई है।
- प्रसादगुण युक्त सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- वोटनये युग का माया जाल है, मरीचिका है, कलंक है, धोखा है; उसके चक्कर में पड़कर आप न इधर की होंगी न उधर की। कौन कहता है आपका क्षेत्र संकुचित है और उसमें आपको अभिव्यक्ति अवकाश नहीं मिलता। हम सभी पहले मनुष्य हैं पीछे और कुछ। हमरा जीवन हमारा घर है, वहीं हमारा पालन होता है, वहीं जीवन के सारे व्यापार होते हैं। अगर वह क्षेत्र परिमित है, तो अपरिमित कौन-सा क्षेत्र है? जिस कारखाने में मनुष्य और उसका भाग्य बनता है, उसे छोड़कर आप उन कारखानों में जाना चाहती हैं, जहां मनुष्ट पीसा जाता है, जहां उसका रक्त निकाला जाता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता वीमेंस लीग में भाषण दे रहे हैं, वहीं मालती की बहन सरोज तथा अन्य युवतियां अपने अधिकारों की वकालत करती है, वोट देने का अधिकार प्राप्त करना चाहती हैं। मालती उनको शांत करती हैं, तो मेहता साहब वोट की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि वोट नये युग का प्रतीक है। यह ऐसा माया जाल है, जिसमें फंसकर निकलना दुष्कर है। वोट का अधिकार प्राप्त होने से समस्याओं को हल नहीं किया जा सकता। समस्याओं का जाल और अधिक सुदृढ़ होता जा रहा है। वोट को नये युग का कलंक कहा जाए तो तर्क संगत होगा, वह लालायित मरीचिका है जिसके होते समस्याओं को नहीं सुलझाया जा सकता। अधिकार को प्राप्त करने के सभी रास्ते बंद होते जा रहे हैं। अगर नारियां भी इस दल–दल में फंस गईं तो वह कहीं की नहीं रहेंगी। वह घर और बाहर की दुनिया से वंचित हो जाएंगी। मताधिकार को प्राप्त करके गृहिणी का पद भी खतरे में पड़ जाएगा। परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई है। हमारे सभी संस्कार क्रियाकलाप, घर की चारदीवारी में ही संपन्न होते हैं। घर को सीमित मानना संकुचित मनोवृतित का परिचायक है। अर्थात परिवार का दायरा विस्तृत है। संघर्षरत जीवन की झलक, संगठन श**क्ति** का श्रेष्ठ उदाहरण परिवार ही है। जिस परिवार में व्य**क्ति** अपनी रोजी–रोटी कमाता है अपने भाग्य को सुनिश्चित सा कर लेता है, उसको त्याग कर अन्यत्र जाना खतरे से खाली नहीं हैं **क्यों**कि लोकतंत्र में सीधे, ईमानदार व्य**क्ति**यों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तिल–तिलकर जीने को बाध्य होना पड़ता है।

विशेष

- ❒ प्रो. मेहता की भविष्योन्मुखी विचारधारा की अभिव्य**क्ति** है।
- ❒ अप्रत्यक्ष रूप से इस अवतरण में लोकतंत्र का उपहास किया गया है।
- ❒ यह उपहास ही नहीं यथार्थ स्थिति का आकलन भी है।
- ❒ नारी की अधिकारों के प्रति जागरूकता का वर्णन है।
- ❒ प्रेमचंद के अनुसार नारी के लिए उपयु**क्त** स्थान घर ही है। वही परिवार संचालिका है।
- ❒ राजनीतिक बिड़ंबनाओं का सजीव चित्रण किया गया है।
- ❒ मानवतावादी भावना को अभिव्य**क्ति** प्रदान की गई है।

- ❒ वर्तमान व्यवस्था का दुष्परिणाम पुरुष को अपना र**क्त** बहाने पर, तिल-तिलकर जीने को बाध्य होने के रूप में देखने को मिलता है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ सरल प्रवाहित हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं, और वह आपको मिले हुए हैं। उन अधिकारों के सामने वोट कोई चीज नहीं। मुझे खेद है कि हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही हैं, जहां नारी ने पना पद खो दिया है और स्वामिनी से बढ़कर विलास की वस्तु बन गई हैं। पश्चिम की स्त्री स्वतंत्र होना चाहती है, इसीलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नहीं रहा। उन्होंने केवल सेवा के अधिकार से सदैव गृहस्थी का संचालन किया है। पश्चिम में जो चीजें हैं वह उनसे लीजिए। संस्कृति में सदैव आदान-प्रदान होता आया है- लेकिन अंधी नकल तो मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है। पश्चिम की स्त्री आज गृह-स्वामिनी रहना नहीं चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृंखल बना दिया है। वह अपनी लज्जा और गरिमा को, जो उसकी सबसे बड़ी विभूति थी, चंचलता और आमोद-प्रमोद पर होम कर रही है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती स्त्रियों को अधिकार दिलाने के लिए प्रयत्नशील है। **क्यों**कि पुरुषों के शोषण से नारी को तभी मु**क्त** किया जा सकता है, जबकि उसे अधिकार प्राप्त हों। इसके लिए वह 'वोट' का अधिकार सर्वोपरि मानती है, **क्यों**कि अपनी सहमति वह संघर्ष, प्रतिकार से नहीं दे सकती इसीलिए 'वोट' उसकी मन:स्थिति के अनुकूल ही है। प्रो. मेहता वोट के अधिकार के स्वच्छंदता का प्रतीक मानते हैं **क्यों**कि नारी का स्थान घर हैं, त्याग, सेवा के भाव ही उसको सुशोभित कर सकते हैं। पश्चिम का अंधानुकरण उसे अपने रास्ते से विचलित कर देगा।

व्याख्या

प्रो. मेहता का मानना है कि संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग द्वारा ही प्राप्त किये जा सकते हैं, जो नारी को परिवार की शिक्षा से प्राप्त हैं। त्याग और सेवा के सामने संसार की सभी

चेष्टाएं व्यर्थ ही हैं। यही नारी के आभूषण तो हैं ही, चारित्रिक विशेषताएं भी यही हैं। वोट का अधिकार उसके सामने छोटा अधिकार है। फिर क्यों बहुमूल्य को त्यागकर व्यर्थ की माथा-पच्ची कर रही हैं। हमारी बहने पश्चिमीकरण के प्रभाव से ग्रसित हैं उन्हें वह आदर्श मानकर ग्रहण करना चाहती हैं, वह केवल स्वच्छंद होने क माध्यम मात्र ही है। पश्चिम में नारियों ने अपने आदर्श को खो दिया है। उनका स्थान गृहिणी से गिरकर प्रेमका तक सीमित हो गया है, इसीलिए मां की उपयोगिता समाप्त होती जा रही है जबकि हमारे यहा मां का स्थान सर्वोपरि है। स्त्रियों की प्रसन्नता से देवता भी गद्‌गद् रहते हैं। बिना गृहिणी के घर, घर न होकर भूतों का डेरा होता है। पश्चिम की नारी भोग विलास का प्रतीक बन गई हैं, उसके जीवन का चरम लक्ष्य विसालमय जीवन जीना ही है। हमारी माताओं का आदर्श विलास की अपेक्षा सेवा और त्याग ही रहा है। उन्होंने परिवार की कल्पना को साकार किया है। संयुक्त परिवार का वर्सस्व स्थापित किया है।

प्रो. मेहता संस्कृति की विशेषता का वर्णन करते हुए कहते हैं, कि संस्कृति हस्तांतरित होती है। एक देश की संस्कृति का दूसरे देश की संस्कृति से आदान-प्रदान अवश्य हो, लेकिन अपने आदर्शों को खोकर नहीं। जो समाज और पारिवारिक दृष्टि से उपयुक्त हो वही ग्रहण किया जाए। अनर्गल तथ्यों का ग्रहण हमारे मार्ग में अवरोध उत्पन्न करेगा। मां की गरिमा का वर्णन पश्चिम संस्कृति में विलुप्त हो गया है। वह इतनी स्वतंत्र हो गई है कि उसे लज्जा और गरिमा का पालन करना व्यर्थ प्रतीत होता है। चंचलता और आमोद-प्रमोद से ग्रसित नारी को लज्जा का भय नहीं लगता। उसके जीवन का लक्ष्य मौज-मस्ती करना ही है।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद ने प्रो. मेहता द्वारा पाश्चात्य संस्कृति के दुर्गुणों पर प्रकाश डाला है।
- ❒ समाज की क्रमबद्धता सुनिश्चित करने के लिए संस्कृति का आदान-प्रदान आवश्यक है।
- ❒ प्रेमचंद ने भारतीयों में पनप रही कुप्रवृत्तियों का पर्दाफाश किया है।
- ❒ नारियोचित गुणों का महत्ता प्रतिपादित की गई हैं।
- ❒ प्रो. मेहता अप्रत्यक्ष रूप से नारियों की बढ़ती शक्ति से भयभीत हैं।
- ❒ प्रेमचंद ने वोट के प्रति नारियों की जागरूकता को आधुनिकता कापरिचायक माना है।
- ❒ मालती द्वारा वोट के अधिकार के प्रति सचेत करना नारी जागृति का मार्ग प्रशस्त करता है।
- ❒ पाश्चात्य समाज में परिवार की संरचना कल्पना मात्र ही है।
- ❒ नारी को परिवारकी संचालिका मानकर नारी की महिमा का गुणमान किया है।
- ❒ संस्कृति से ही संस्कारों का सफल निर्वाह संभव होता है जिससे जीवन में क्रमबद्धता आती है।

- ❒ नारी को भोग की वस्तु समझना पुरुष की संकीर्ण मानसिकता का सूचक है।
- ❒ प्रेमचंद भारतीय नारियों की बदलती मन:स्थिति से व्यथित दिखाई दे रहे हैं।
- ❒ तत्सम शब्दावली युक्त सरल हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- जिसे तुम प्रेम कहती हो, वह धोखा है, उद्दीप्त लालसा का विकृत रूप, उसी तरह जैसे संन्यासी केवल भीख मांगने का संस्कृत रूप है। वह प्रेम अगर वैवाहिक जीवन में, कम है, तो मुक्त विलास में बिल्कुल नहीं है। सच्चा आनंद सच्ची शांति केवल सेवाव्रत में है। वही अधिकार का स्रोत है। शक्ति का उद्गम है। सेा ही वह सीमेंट है जो दंपत्ति को जीवनपर्यन्त स्नेह आर साहचर्य में जोड़े रख सकता है, जिस पर बड़े-बड़े आघातों का भी कोई असर नहीं होता। जहां सेवा का अभाव है, वहीं विवाह विच्छेद है, परित्याग है, अविश्वास है, और आपके ऊपर पुरुष जीवन की नौका का कर्णधार होने का कारण जिम्मेदारी ज्यादा हैं। आप चाहें तो नौका को आंधी और तुफानों में पार लगा सकती हैं और आपने असावधानी की तो नौका डूब जाएगी, और उसके साथ आप भी जूब जाएंगी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता का मानना है कि पश्चिम में नारी को बराबरी का अधिकार प्रदान कर अप्रत्यक्ष रूप से नारी-शोषण का मार्ग प्रशस्त किया है। तितलियां बनकर वे पुरुषो को आकर्षित करें। सरोज का मानना है कि हम विवाह में बंधना नहीं चाहतीं। हम अगर विवाह करेंगी तो उसका आधार प्रेम ही होगा क्योंकि जब पुरुष स्वतंत्र है तो नारी भी स्वतंत्र है।

व्याख्या

उपस्थित जन समूह जब सरोज के विचारों का स्वागत करता हैतो प्रो. मेहता अपना विरोध प्रकट करना नहीं चूकते। मेहता के अनुसार जिसे तुम प्रेम कहती हो, स्वप्निल धोखा है, अतृप्त अकांक्षा का प्रतीक है। विकृत मानसिकता का सूचक है। उसी तरह जिस प्रकार संन्यासी भीख मांगने का संस्कृत रूप है। नारी को आत्मिक शांति तभी मिलेगी जब वह वौवाहिक बंधन में बंधेगी अन्यथा अतृप्ति की शिकार ही रहेगी। उसे वैवाहिक बेला में ही सच्चा प्रेम प्राप्त हो सकेगा। अगर तुम्हे सच्चा आनंद प्राप्त करना है, सच्ची शांति की इच्छुक हैं, तो सेवा का क्षेत्र ही चुनना पड़ेगा,

क्योंकि हमारी संस्कृति सेवाभाव को प्रमुखता प्रदान करती है। सेवा द्वारा ही नारी सभी अधिकारों को प्राप्त कर सकती है। इसी के द्वारा सामर्थ्य युक्त हो सकती है।

प्रो. मेहता सेवा की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि सेवा सीमेंट के समान अटूट होती है जिसके आधार पर दंपत्ति रूपी महल का निर्माण होता है। जीवन पर्यन्त तक स्नेह और साहचर्य की रक्षा सेवा द्वारा ही फलीभूत होती है। जीवन की अन्य आपदाएं इस का कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं। वैवाहिक जीवन की सफलता का आधार सेवा भाव ही है। वैवाहिक विघटन की नीड़ में सेवाभाव की रिक्तता ही देखी जाती है। नरी जीवन पर पुरुष जीवन की नौका का दायित्व टिका है। वह चाहे तो उसका सफल निर्वाह भी कर सकती है और उसको बीच मझधार में डूबो भी सकती है।

विशेष

- ❒ लेखकीय वक्तयव्य से नारियों की प्रेम के नाम पर वासना में डुबने की इच्छा प्रतिबिंबित होती है।
- ❒ सुखद परिवार की नींव सेवाभाव पर टिकी होती है।
- ❒ यह यथार्थ है कि प्रेम के बिना वैवाहिक जीवन का पालन करना दुष्कर ही है।
- ❒ विवाह विच्छेद के मूल में सेवा की भावना का अभाव रेखांकित किया है।
- ❒ प्रो. मेहता द्वारा नारी महिमा का गुणगान किया गया है।
- ❒ सेवा का प्रतिफल सदैव सुखद ही होता है।
- ❒ प्रो. मेहता का मानना है कि पारिवारिक जीवन में अगर सेवाभाव है, तो युगीन संघात, विवाह-विच्छेद, अविश्वास जैसे भावों का जन्म नहीं होता।
- ❒ प्रेम का क्षेत्र विस्तृत है, जिसकी सीमा में परिवार समाज, तथा राष्ट्र का स्वरूप समाहित हो जाता है।
- ❒ सेवाभाव की तुलना सीमेंट से की गई है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ सरल साहित्यिक हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।

- सात पुश्तों से जिस वातावरण में पला हूं, उससे अब निकल नहीं सकता। घास शीलना मेरे लिए असंभव है। आपके पास जमीन नहीं जायदाद नहीं, मर्यादा का झमेला नहीं, आप निर्भीक हो सकते हैं; लेकिन आप भी दुम दबाए बैठे रहते हैं। आपको कुछ खबर है, अदालतों में कितनी रिश्वतें चल रही हैं, कितने गरीबों का खून हो रहा है, कितनी देवियां भ्रष्ट हो रही हैं। है बूता लिखने का? सामग्री मैं देता हूं प्रमाण सहित।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

संपादक ओंकारनाथ की दृष्टि में न्याय का पालन, सत्य की रक्षा एवं रिश्वतखोरी का विरोध करना मानव का कर्तव्य है। रायसाहब स्वयं पर किये कटाक्ष का प्रतिकार करते हुए कहते हैं-

व्याख्या

रायसाहब ओंकारनाथ के विचारों से असहमति व्यक्त करते हुए कहते हैं कि मैंने विपत्ति की घड़ी में तुहारी सहायता की है। प्रत्येक पर्व, उत्सव के अवसर पर उपहार भेजता हूं, वर्ष में अनेक बार दावत करता हूं रिश्वत और कर्तव्य का पालन करना एक साथ संभव नहीं हो सकता। जब तुहे स्वदेशी आंदोलन की स्थिति में विदेशी दवाओं व वस्तुओं का विज्ञापन करने में कर्तव्य का बोध नहीं होता। अपनी व्यस्त दिनचर्या का वर्णन करते हुए कहते हैं कि- मनुष्यके व्यक्तित्व में युगीन परिस्थितियों की महती भूमिका होती है। वंशानुगत लक्षणों का होना स्वाभाविक ही है। मेरी कथनी और करनी पर वंश का प्रभाव है उसको त्यागना असंभव है। मनुष्य एक बार जिस दल-दल में फंस जाए तो उसका निकलना कठिन होता है। हाथ पर हाथ रखकर बैठना मेरा स्वभाव नहीं है, मैं समाज का तुच्छ कार्य भी नहीं कर सकता। मेरे पास जमीन है, संपत्ति है। इसकी रक्षा स्वत: नहीं होती, हाथ पैर चलाने पड़ते हैं। मर्यादा का भय हमें भयभीत करता है इसीलिए युगानुरूप कार्य करना हमारी विवशता है।

रायसाहब उत्तरदायित्व का बोध कराते हुए ओंकारनाथ से कहते है कि तुमने भी अपने कर्तव्य का सफल निर्वाह नहीं दिया। प्रत्येक दफ्तर, विभाग में रिश्वत का बोलबाला है। जो गरीब हैं उनका कोई हितैषी नहीं है उनका शोषण किया जा रहा है। समाज में आए दिन देवियों (कन्याओं) का अपमान किया जा रहा है, उनकी अस्मिता से खेला जा रहा है। इनका प्रतिकार करने की शक्ति आप में न हीं है। आपकी दृषि से यह सब कैसे ओझल हो रहे हैं। अपने कर्तव्य का निर्वाह करने का साहस पैदा कीजिए। प्रमाण सहित तथ्यों की उपलब्धि मेरी जिम्मेदारी है।

विशेष

- रायसाहब अमरपालसिंह का आक्रोश व्यक्त हुआ है।
- रायसाहब युगीन वातावरण एवं परिस्थितियों से भलीभांति परिचित है।
- रायसाहब के उद्गारों में वंशानुगत शोषण की झलक दिखाई देती है।
- व्यक्तित्व निर्माण में वंश परंपरा का प्रभाव देखने को मिलता है।
- यह अवतरण समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करता है।

- ❒ रायसाहब अमरपाल सिंह की मन:स्थिति का चित्रण है।
- ❒ घास छीलना- मुहावरा प्रयुक्त हुआ है।
- ❒ अरबीफारसी शब्दों का प्रयोग- पुश्तों, जमीन, जायदाद, गरीबों, खबर आदि द्वारा हुआ है।
- ❒ बूता से आशय सामर्थ्य से है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान न क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गई। भगवान मौत भी नहीं देते कि जंजालसे जान छूटे। उठाकर सारे रुपये बहनोइयों को दे दिए। अब और कौन आमदानी गहै, जसिसे गोई आयेगी? हल में क्या मुझको जोतोगे? मैं कहती हूं तुम बूढ़े हुए, तुम्हे इतनी अक्ल भी नहीं आई कि गोई भर के लिए रुपये तो निकाल लेते। कोई तुम्हारे हाथ से छीन थोड़े लेता। पूस की यह ठण्ड, और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओ सब को नदी में डुबो दो। सिसक-सिसक कर मरने से तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेगे, और पुआल में घुस भी लें, तो पुआल खाकर रहा तो नहीं जाएगा। तुम्हारी इच्छा हो, घास ही खाओ, हमसे तो घास न खायी जाएगी-

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

लाला पटेश्वरी अपना पैसा बसूल करने के लिए शोषण करना भी उचित समझते थे। पटेश्वरी बाल बच्चों के लिए जमा की गई राशि को देने को कहता है। झिंगुरी सिंह होरी से पैसे हड़पकर उसे विवशता की कगार पर पहुंचा देता है। हताश होरी जब घर आया तो उसका मन चाहता था कि ऐसे लज्जित जीवन से आत्म हत्या करना बेहतर है। होरी को उदास देखकर धनिया पूछती है। होरी की खामोशी किसी विपत्ति से कम न थी।

व्याख्या

होरी द्वारा दिए गए उत्तर को सुनकर धनिया के बदन में आग लग गई। एक बार उसे विचार आया कि अपना मुंह नोच ले। अपनी प्रतिक्रिया को व्यक्त करती हुई कहती है कि उस विधाता ने तुम

जैसे किंकर्तव्यविमूढ़ व्यक्ति को क्यों पैदा किया। यही प्रश्न मुझे बार-बार व्यथित कर रहा है। जब से मेरा तु□हारे साथ संबंध जुड़ा है आज तक कभी सुख चैन नहीं मिला। सारी जिंदगी समाप्त होने को है। जी चाहता है किजीवन से छुटकारा मिले लेकिन भगवान की मर्जी नहीं है। जो पैसे कमाये उन्हें अपने बहनोइयों को दे दिए। आगे आमदनी का कोई सहारा भी नहीं है।गाय की उम्मीद भी धूमिल हो गई हैं। खेत जुतने को पड़े हैं। बैलों का प्रबंध कहां से करोगे। अगर बैल न मिले तो मुझे ही जोत लेना। सामान्यतया उम्र के साथ बुद्धि भी बढ़ती जाती है लेकिन तुम्हारी उम्र के सथ बुद्धि घट रही हैं। किसी तरह गाय के लिए रुपये बचा लेते तो वहतुमसे छीन नहीं लेता। पूस माहमें भी किसी के तन पर कपड़ा नहीं है, अगर प्रबंध नहीं कर सकते तो हमें लेकर जाकर किसी नदी में डुबो दो। तिल-तिल कर मरने से एकदम मरना अधिक श्रयस्कर है। अब तक तो पुआल से ठण्ड काट ली लेकिन पूस की ठण्डी रातें नहीं कटेंगी। पेट को भरने के लिए पुआल की बजाय भोजन की आवश्यकता है। घास से पेट की भूख शांत नहीं होगी। तुम्हें खानी हे तो खाओ।

विशेष

- ❒ धनिया का ओजस्वी स्वरूप मुखरित हुआ है।
- ❒ यह अवतरण कृषक जीवन की यथार्थ झांकी प्रस्तुत करता है।
- ❒ नारी चेतना का वर्णन है।
- ❒ होरी की असहाय स्थिति का चित्रण हैं।
- ❒ अकिंचन स्थिति में मनुष्य की बुद्धि का क्षय होने लगता हैं।
- ❒ पूस माह की शीतल रातें ठण्ड की पराकाष्ठा की सूचक हैं।
- ❒ यह अवतरण होरी की दयनीय स्थितिका चित्र प्रस्तुत करता है।
- ❒ मुहावरेदार सरल भाषा प्रयुक्त हुई है, जैसे- जिंदकी तल्ख होना, घास खाना।
- ❒ घामड़ शब्द से आशय बुद्धि हीनता से है।
- ❒ असहाय स्थिति ही मनुष्य को आत्महत्या के लिए प्रेरित करती हैं।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ उम्र बढ़ने के साथ बुद्धि भी बढ़ने लगती है, जिससे विचारों में प्रौढ़ता आने लगती है।
- जिसे संसार दु:ख कहता है, वही कवि के लिए सुख है। धन और ऐश्वर्य, रूप और बल विद्या और बुद्धि, ये विभूतियां संसार को मोहित कर लें, कबि के लिए यहां जरा भी आकर्षण नहीं है, उसके मोह और आकर्षण की वस्तु तो बुझी हुई आशाएं और मिटी हुई स्मृतियां और टूटे हुए हृदय के आंसू हैं। जिस दिन इन विभूतियों में उसका प्रेम न रहेगा,

उस दिन वह कवि न रहेगा। दर्शन-जीवन के इन रहस्यों से केवल विनोद करता है, कवि उनमें लय हो जाता हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

खन्ना और गोविंदी में नहीं पटती। खन्ना मालती की ओर आकर्षित है जबकि मालती मेहता की ओर। मेहता मालती को नारियोचित गुणों से रिक्त मानते हैं। उनका झुकाव गोविंदी की ओर है। उनकी दृष्टि में गोविंदी एक आदर्श गृहिणी के गुणों से युक्त हैं। गोविंदी अपनी प्रशंसा सुनकर गद्गद् हो जाती है। उसे मेहता में रवि की झलक दिखाई पड़ती है। साथ ही रवि के वैयक्तिक जीवन के दुखों को सोचकर विचलित होने लगती है। मेहता समझाते हैं कि कवि का दृष्टिकोँ संसार से भिन्न होता है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को कवि की दुनिया का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सामान्य मनुष्यों के विपरीत कवि का हृदय विलक्षणता से युक्त होता है। सामान्यता मनुष्य धन दौलत, रूप, विद्या ऐश्वर्य वृद्धि तथा बल के पीछे दौड़ता है, किंतु कवि का मन इनसे आसक्त नहीं होता। वह द्रवित हृदय की आह सुनता है, निराश मनुष्य की व्यथा सुनता है। अविस्मृत यादें उसे प्रिय लगती है। आंखों से गिरने वाले आंसुओं में उसे तृप्ति मिलती है। उसका जीवन करुणा एवं संवेदना से युक्त होता हैं इसलिए उसका झुकाव, पीड़ित, उपेक्षित, निराश, खुशी लोगों के हृदय में निवास करता है। इन्हीं को अपनी कविता में अभिव्यक्त भी करता है। अगर उसका यह आकर्षण समाप्त हो जाएगा तो वह कवित्व बोध से रिक्त हो जाएगा। एक दार्शनिक के लिए सुख, दुख, राग-विराग बहस बातें हो सकती है, लेकिन कवि का जीवन इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमता रहता है।

विशेष

- ❒ कवि का संसार सामान्य जनों से पृथक होता है।
- ❒ दार्शनिक वैचारिक दृष्टिकोण तथा कवि भावात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

- ❒ साहित्य-सृजन के मूल में वेदना महती भूमिका निभाती है। पंत जी के विचारभी वियोग को प्रमुखता प्रदान करते हैं-

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
निकलकर नयनों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।।''

- ❒ कवि में दार्शनिक प्रवृत्ति का होना भी आवश्यक है।
- ❒ इलियट के अनुसार बिना गंभीर दर्शन के बड़ा कबि नहीं बन सकता है।
- ❒ लाक्षणिकता से युक्त भाषा प्रयोग में लाई गई है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- मैं प्रकृति का पूजारी हूं और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूं। जो प्रसन्न होकर हंसता है, दु:खी होकर रोता है, और क्रोध में आकर मार डालता है। जो दु:ख और सुख दोनों का दमन करते हैं जो रोने की कमजोरी और हंसने को हलकपन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिए आनंदमय क्रीड़ा है, सरल, स्वच्छंद, जहां ईर्ष्या, कुत्सा और जलन के लिए कोई स्थान नहीं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता और गोविंदी में वार्तालाप चल रहा है। गोविंदी मेहता के द्वारा मालती से मुक्ति की कामना करती है। मेहता आश्वासन देकर शांत करते हैं। गोविंदी को लगता है कि खन्ना मालती की ओर आकृष्ट हो रहे हैं, इसलिए गोविंदी कीउपेक्षा हो रही है। प्रो. मेहता अपना वक्तव्य देते हुए कहते हैं, कि मैं किसी के बीच में हस्तक्षेप नहीं करता, कृत्रिमता से दूर स्वाभाविकता में मेरा विश्वस है। अपने विचारों से तुमने अपने हृदय का बोझ हल्का किया है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को सांत्वना प्रदान करते हुए कहते हैं कि मेरा व्यक्तित्व यथार्थ से निर्मित है। मैं प्रकृति का पुजारी हूं जिस प्रकार प्रकृति अपने आगोश में स्वाभाविकता समेटे होती है ठीक उसी प्रकार मेरा भी यही मानना है। कृत्रिमता में मेरा विश्वास नहीं है। मैं चाहता हूं कि मनुष्य अपने स्वाभाविक रूप में सामने आए, अपनी भावनाओं को छिपाने का प्रयत्न न करे। इसी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य सुख में सुखी होता है और दु:ख में दुखी। क्रोध आने पर प्रहार भी कर सकता है। यही जीवन की वास्तविकता है। इन्ही, में जीवन की झलक देखने को मिलती है। इसके विपरीत अगर मनुष्य कृत्रिमता युक्त जीवन जीता है तो उसमें वास्तविकता विलुप्त हो जाती है।

मिस गोविंदी तुमने मेरे समक्ष अपनी भावना को व्यक्त करके कोई गलती नहीं की है। यथार्थ स्थिति को सामने रखा है। जीवन एक खेल है जिसमे व्यक्ति आनंद को ढूंढता है, उसे परिणाम की चिंता नहीं रहती। सुखी जीवन के लिए स्वच्छंदता, सरलता, शुचिता आवश्यक मानी जाती है। ईर्ष्या, जलन, कुत्सा युक्त व्यक्ति दूसरों के साथ अपनी भी हानि करता है। मेरा वर्तमान ही सबकुछ है। भूत हमें आलसी बनाता है तो भविष्य की चिंता हमारी खुशहाल जिंगगी में बेचैनी घोल देती है।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद ने गोविंदी को आदर्श स्त्री के रूप में स्थान दिया है।
- ❒ प्रो. मेहता गोविंदी के स्वाभाविक व्यक्तित्वसे प्रभावित है।
- ❒ प्रो. मेहता द्वारा प्रेमचंद की वाणी व्यक्त हुई है।
- ❒ वर्तमान की उपयोगिता सिद्ध की गई है।
- ❒ गोविंदी का भविष्य के प्रति चिंतित होना स्वाभाविक है।
- ❒ गोविंदी खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण जानकर अपने वैवाहिक जीवन को बचाना चाहती है।
- ❒ प्रकृति और मानव का अटूट संबंध रहा है। वह प्राकृतिक योगदान की अवहेलना नहीं कर सकता।
- ❒ छायावादी कवि सुमित्रा नंदन पंत के लिए प्रकृति साहित्य सृजन का प्रेरक रही है।
- ❒ मनुष्य संकुचित मनोवृत्ति के फलस्वरूप ही दु:ख प्राप्त करता है।
- ❒ सरल प्रवाह पूर्ण हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है। भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है, कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रुढ़ियों और विश्वासों और इतिहासों के मलवे के नीचे दबे हैं, उठने का नाम नहीं लेते, वह समर्थ्य ही नहीं जो शक्ति, जो स्फूर्ति मानव धर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी। सहयोग में, भाई चारे में वह पुरानीअदावतों का बदला लेने और बाप-दादा का कर्ज चुकाने में भेंट चढ़ जाती है। और ये जो ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हंसी आती है। वह मोक्ष एवं उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है, जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालते है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोविंदी अपने वैवाहिक बंधन को बचाने के लिए प्रो. मेहता से पति खन्ना का मालती से संबंध समाप्त करने का निवेदन करती है। मेहता ने सहमति प्रदान कर गोविंदी के पतिव्रत धर्म को सुदृढ़ करने की सांत्वना प्रदान की। गोविंदी स्वयं के प्रयत्न को हेय मानती है तो मेहता ने उसे वर्तमान पर दृष्टिपात करने का सुझाव देता है।

व्याख्या

प्रो. मेहता कते हैं कि गोविंदी, भविष्य की चिंता करना व्यर्थ है **क्यों**कि मनुष्य अनेक योजनाओं की काल्पनिक व्यूहरचना में ही अपना वर्तमान नष्कर देता है इससे उसको दोनों रूपों में चिंता यु**क्त** जीवन जीने को बाध्य होना पड़ता है। जब हम अतीत की की चिंता करते हैं तो निष्क्रिय होने लगते हैं। हमारी जीवन शैली में शिथिलता आने लगती है। हम अतीत का रोना रोकर कुछ समय के लिए भले ही संतुष्टि प्राप्त कर लें लेकिन वर्तमान की हानि से मुंह नहीं मोड़ सकते। हम वर्तमान में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों, से दबे हुए है उनसे निकल पाना दूभर हो रहा है।

प्रो.मेहता मनुष्य की निष्क्रियता से व्यथित होकर कहते हैं कि हमने अपनी श**क्ति** को पारस्परिक कटुता और विद्वेष की भावना को पल्लवित करने में क्षीण कर दिया है, जबकि इसको प्रयोग मानव कल्याण के लिए होना चाहिए था। देश प्रेम, विश्व बंधुत्व की भावना में लगाना चाहिए था। लेकिन हमारा दुर्भाग्य ही है कि समने बहुमूल्य समय और श**क्ति** को पैतृक ऋण से मु**क्ति** पाने में लगा दिया। हमने अतीत के सामने वर्तमान में मानवता की उपेक्षा की है। ईश्वर प्राप्ति या मोक्ष की अवधरणा में मेरा बिल्कुल विश्वास नहीं है। इससे वर्तमान उपेक्षित हो जाता है और भविष्य की वेदना हमारी हरी-भरी दुनिया को उजाड़ने लगती है। भविष्य की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक महत्व देना चाहिए, **क्यों**कि हम वर्तमान में जीते हैं।

विशेष

- ❒ प्रो. मेहता के द्वारा प्रेमचंद ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान की है।
- ❒ वर्तमान, भूत और अतीत की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।

- ❒ प्रो. मेहता में मार्क्सवादी भावना को देखा जा सकता है।
- ❒ महाकवि जयशंकर प्रसाद ने भी चंद्रगुप्त नाटक में वर्तमान को महत्व प्रदान किया है।
- ❒ संसार के सभी धर्म मानवतावादी भावना को पल्लवित करते हैं।
- ❒ प्रो. मेहता की बौद्धिक क्षमता का दिग्दर्शन है।
- ❒ लाक्षणिकता की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है।
- ❒ मुहावरेदार भाषा, जैसे- कमर तोड़ देना आदि का प्रयोग हुआ है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

- जहां जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम हैवहीं ईश्वर है। और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है होठों पर मुस्कराहट न आये, आंखों में आसूं न आयें। मैं कहता हूं कि अगर तुम हंस नहीं सकते और रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं, कोल्हू है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

पति खन्ना के व्यवहार से दु:खी गोविंदी अपने बच्चे के साथ प्रो. मेहता से मिलती है। मालती के कारण उसके वैवाहिक जीवन में कटुता आ जाती है जिसे दूर करने के लिए वह मेहता से कहती है। मेहता आश्वासन देकर साहस बढ़ाते हैं। गोविंदी को लगात है कि उसने अपने पति (खन्ना) की शिकायत कर ठीक नहीं किया। इस पर मेहता कहते हैं कि मैं मनुष्य के आचरण से प्रभावित होता हूं। कृत्रिमता से मुझे क्रोध आता है। क्योंकि मनुष्य की स्वाभाविकता सबसे उपयोगी है। विशुद्ध आचरण की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहते हैं-

व्याख्या

प्रो. मेहता कहते हैं कि मनुष्य मानवीय गुणों के कारण ही श्रेष्ठता का द्योतक है। स्वाभाविक जीवन से सहानुभूति, त्याग, सेवा जैसे गुणों का विकास होता है। वास्तविक जीवन से पलायन करके मोक्ष, उपासना को प्राप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि गतिविधियों से युक्त जीवन ही स्वाभाविक होता है। प्रेम तभी पल्लवित होता है जब वास्तविकता हो। प्रसन्नता और क्रीड़ा को विकसित करने का अवसर जहां मिले वही श्रेष्ठ जीवव है। ईश्वर भी वास्तविकता के प्रंगण में प्रकट होकर अपनी लीला को दिखाता है। मानव अपने जीवन को सुखी बनाने के लिए जो प्रयास करता है, वही सबसे बड़ी उपासना है और मुक्ति का माध्यम भी वही है। ज्ञानी, मनुष्य को

समभाव रखने का उपदेश देता है जो व्यर्थ ही है क्योंकि पीड़ित व्यक्त को देखकर जो द्रवित नहीं होगा वह पात्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। प्रसन्नता को व्यक्त न करना मानवता के विपरीत है। मानव चेतनाशील प्राणी है उसकी उपेक्षा करना मानवता को कलंकित करना हैं। हां पत्थरों से यहआशा नहीं की जा सकती। हम ज्ञानी का उपदेश भले ही शिरोधार्य करें लेकिन अपने मनोनुकूल व्यवहार करे। ज्ञानीकी बातों में आकर स्वयं को कोल्हू के बैल स्वरूप न बनाएं।

विशेष

- ❒ संवेदनशील मनुष्य जड़वत शून्यता का प्रतीक है।
- ❒ प्रेमचंद का अनुभवी जीवन मेहता द्वारा अभिव्यक्त हुआ है।
- ❒ ज्ञान का अर्थ विवेक को प्राप्त करना है, जिससे परिस्थिति अनुकूल व्यवहार किया जा सके।
- ❒ मानवता की भावना का चित्रण किया गया है।
- ❒ मुहावरा कोल्हू का बैल प्रयुक्त किया गया है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई हैं।
- मैं समझता हूं कि नारी केवल माता है और उसके उपरांत कुछ भी नहीं, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है। एक शब्द में उसे लय कहूंगा- जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्वका भी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

पति खन्ना का मालती के प्रति आकर्षण को जानकर गोविंदी व्यथित रहने लगती है। प्रो. मेहता से मालती को समझाने का आग्रह करती है। मेहता आग्रह स्वीकार कर प्रयत्न भी करते हैं। गोविंदी को समझाते हुए कहते हैं कि मनुष्य को वर्तमान पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। कृत्रिमता से दूर स्वाभाविक जीवन जीना चाहिए, क्योंकि सच्ची मानवता, ईश्वरीय दर्शन, प्रेम को भी प्राप्त किया जा सकता है। गोविंदी को अधिकार के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं, वह घर तुम्हारा है तुम्हीं ने उसे पल्लवित किया है।

व्याख्या

प्रो. मेहता गोविंदी को समझाते हुए कहते हैं कि घर की कल्पना माता के बिना संभव नहीं है। मां ही वह शक्ति है जो समस्त सदस्यों को एकता के सूत्र में पिरोकर रख सकती है। अपनी मातृत्व भावना से सिंचित करती है। उसको अपमानित करने का अधिकार किसी को नहीं है। नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व के बिना पूर्ण नहीं होती। मातृत्व सुख से वंचित नारी को हेय दृष्टि से देखा जाता है। पत्नी, बहन, बेटी, बहू के विभिन्न रूप मिलकर भी मां की गरिमा की बराबरी नहीं कर सकते। प्रो. मेहता कहते हैं कि संसार में अगर सबसे बड़ी तपस्या है तो वह मातृत्व भावनी है। गौरव और गर्व के गुण इसी मातृत्व को रुपांकित करते हैं। नारी अगर मां बनती है, तो उसके जीवन की सार्थकता पूर्ण हो जाती है। मातृत्वको संसार का सबसे बड़ा त्याग माना गया है। विजय का गौरव भी कहा जाता है। इसी पद को प्राप्त करने के लिए वह वैवाहिक बंधन में बंदती है, तत्पश्चात ही पत्नी, भावी, बहू का सम्मान प्राप्त करती है। इसके लिए वह जीवन, व्यक्तित्व और नारीत्व को भी अर्पित कर देती है। आपने सुंदर पुत्र को जन्म दिया है, उसकी सुरक्षा करना व पल्लवित करना आपका दायित्व है। आपको खन्ना द्वारा तिरस्कार तथा उपेक्षा को अनदेखा करके अपने घर को ही टूटने से बचाना है। गृह त्याग का विचार इस बच्चे के भविष्य को भी दांव पर लगा सकता है।

विशेष

- ❒ नारी जीवन की पूर्णता मातृत्व के बिना संभव नही।
- ❒ गोविंदी की दु:खी मन:स्थिति का वर्णन किया गया है।
- ❒ प्रो. मेहता ने गोविंदी के घर को टूटने से बचाकर मानवतावादी भावना को व्यक्त किया है।
- ❒ राष्ट्र कवि दिनकर ने मातृत्व की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा– 'मां बनते ही त्रिया कहां से कहां पहुंच जाती है।'
- ❒ गोविंदी के माध्यम से भारतीय नारी के आदर्श को चित्रित किया गया है।
- ❒ मातृत्व के सामने त्याग, तपस्या और विजय का आनंद भी श्रीहीन लगता है।
- ❒ भाषा में लाक्षणिकता की प्रधानता है।
- ❒ सहजता, सरलता और प्रवाहमयता का गुण विद्यमान है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है।
- ❒ यह अवतरण अप्रत्यक्ष रूप से गोविंदी के साथ खन्ना की स्वार्थलिप्सा, भोगवादी प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है।

- उसकी वाणी में सत्य का बल था। डरपोक प्राणियों में सत्य भी गूंगा हो जाता है। वही सीमेंट, जो ईंट पर चढ़कर पत्थर हो जाता है, मिट्टी पर चढ़ दिया जाए तो मिट्टी हो जाएगा। गोबर की निर्भीक स्पष्टवादिता ने उस अनीति के बख्तर को भेद डाला जिससे सज्जित होकर नोखेराम की दुर्बल आत्मा अपने को शक्तिमान समझ रही थी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

शहर से वापस आकर गोबर को जब मां-बाप के शोषित होने का पता चला तो वह प्रतिकार करने लगा। होरी चाहता था कि गोबर किसी से कुछ न कहे क्योंकि समाज और बिरादरी के आगे किसी की नहीं चलती। गोबर (पिता) होरी की इच्छा के विरुद्ध था। वह जाति-पाति को दिखावा मात्र समझत है। शोषण करने का नया तरीका मानता है। नोखेराम की धूर्तता का पर्दाफाश करता है। शिक्षित गोबर से भयभीत होकर वह बातचीत करना मना कर देता है। गोबर नोखेराम को अदालत में घसीटने की धमकी देता है, साथ ही रायसाहब अमरपाल सिंह से भयभीत भी नहीं होता। प्रेमचंद ने गोबर के इसी तेजस्वी स्वाभिमान का वर्णन करते हुए कहा-

व्याख्या

नोखेराम की मक्कारी और चालाकी को देखकर गोबर अदालत जाने की धमकी देता है। गंगा की हौगंध खिलाकर भयभीत भी करता है। लेखक कहता है कि आज उसकी वाणी में सत्य के दर्शन हो रहे थे। यथार्थ सामने उपस्थित था। सत्य भी साहसी व्यक्ति का साथ देता है। डरपोक और कायर के साथ सत्य भी गूंगा हो जाता है। जिस प्रकार सीमेंट ईंट के साथ प्रयुक्त होने पर पत्थर का रूप धारण करता है, ठीक उसी प्रकार सत्य भी शक्ति व धैर्य के साथ मुखरित होने को उत्सुक रहता है। मिट्टी बन जाता है। गोबर की निर्भीकता में सत्यता, स्पष्टता के दर्शन हैं। उसने अपने सत्य से नोखेराम की उस अभेद शोषण की दीवार को भेद डला जिसके आधार पर नोखेराम स्वयं को सर्वोपरि मान रहा था उसकी दुर्बल आत्म शोषण का आधार पाकर बलवती हो रही थी। आज गोबर के सत्य के सामने नग्न रूप में सामने आ गई।

विशेष

- ❒ प्रेमचंद ने गोबर के द्वारा युवा पीढ़ी की आक्रोश को व्यक्त किया है।
- ❒ नोखेराम जो शोषण करता था गोबर के सामने यथार्थ से भागने का प्रयत्न करने पर विवश हुआ।

- ❒ सत्य में अटूट शक्ति होती है जिसके सामने असत्य नहीं टिक पाता।
- ❒ सत्य की तुलना सीमेंट से की गई है।
- ❒ शोषकों का प्रतिकार करने से गोबर में आधुनकता के दर्शन होते है।
- ❒ प्रेमचंद ने यह स्पष्ट किया है कि जमींदारी प्रथा का खात्मा होने वाला है।
- ❒ गोबर के साहसी एवं निर्भीक व्यक्तित्व का चित्रण है।
- ❒ जमींदारी के वर्चस्व की दीवार इतनी सुदृढ़ थी जिसको तोड़ना स्वयं को विपत्ति में डालना था।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई हैष
- ❒ शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- मां-बाप का धर्म है, लड़के को पाल पोस कर बड़ा क र देना। वह हम कर चुके। उनके हाथ-पांव हो गए। अब तू क्या चाहती है, वे दाना-चारा लाकर खिलायें। मां-बाप का धर्म सोलहों आना लड़कों के साथ है। लड़को का मां-बाप के साथ एक आना भी धरम नहीं है। जो जाता है उसे असीस देकर विदा कर दे। हमारा भगवान मालिक है। जो कुछ भोगना बदा है, भोगेंगे। चालीस सात सैंतालीस साल इसी तरह रोते-धोते कट गए। दस-पांच साल है, वह भी यों ही कट जाऐंगे।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

गोबर जब शहर से वापस घर आया तो घर में उत्सव का माहौल था। होरी के साथ नोखेराम से कर्जा चुकाने गोबर भी जाता है। नोखेराम की धूर्तता, मक्कारी का विरोध करता है। होरी गोबर के व्यवहार से दु:खी है। वह पंचायत का दंड सह सकता है। समाज की मर्यादा का पालन करना कर्तव्य समझता है। नोखेराम द्वारा उपेक्षा सहकर उसका मन उचटने लगता है। वह अपने साथ झुनिया को भी ले जाने का इरादा व्यक्त करता है। धनिया गोबर को इस बदलती मन:स्थिति के लिए झुनिया को दोषी ठहराती है। सास-बहूमें पारस्परिक प्रतिकार भी होता है। होरी घर के वातावरण को देखकर दु:खी होता है, झुनिया को शांत रहने को कहता है। गोबर की इच्छा को देखकर होरी दु:खी मन से जाने की अनुमति प्रदान करने की सलाह धनिया को देता है।

व्याख्या

आज होरी घर की फजीहत को देखकर दु:खी था। वह धनिया को समझाता हुआ कहता है कि जो व्यक्त स्वेच्छा से रुकना नहीं चाहता, उसे बंधन में बांधकर रखना संभव नहीं है। मां-बाप का नैतिक दायित्व है कि वह संतान को पाल-पोस कर बड़ा करे। यह हमने कर दिया, अब हमारा उसपर कोई अधिकार नहीं है। जब संतान आत्मनिर्भर हो जाए तो उसे इच्छानुसार चलाना आसान नहीं होता। जो संतान मां-बाप के लिए कमाकर लाए उनका सम्मान करें, दु:ख दर्द का ध्यान रखे वह उस मां का सौभाग्य है। तू भी यही इचछा रखती है, जो संभव नहीं है। मां-बाप का धर्म का पालन करना अनिवार्यता है, संतान इससे मुक्त है। अगर गोबर नहीं रुकना चाहता तो उसे प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद देकर विदा कर दे। कलह ठीक नहीं है। हमार भी भगवान मालिक है। भाग्य में जो लिखा है उसे कौन टाल सकता है? उसे भोगने को तैयार रह। उम्र के 47 साल तो कट गए हैं, शेष भी इसी तरह कट जाएंगे। संतान के लिए चिंतित होना व्यर्थ ही है।

विशेष

- ❒ होरी की व्यथा का चित्रण है।
- ❒ मां-बाप का दायित्वहै संतान को पालना।
- ❒ होरी की असहाय स्थिति का चित्रण है।
- ❒ होरी की भाग्यवादिजता का दिग्दर्शन है।
- ❒ शुभ कार्य को प्रसन्न मन से करना चाहिए अन्यथा दु:खद परिणाम होते हैं।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ तद्भव शब्दों का प्रयोग- धरम, असीस आदि के रूप में हुआ है।
- ❒ शब्द युग्म की छटा- मां-बाप, पाल-पोसकर, दाना-चारा, रोते-धोते, दस-पांच का सुंदर प्रयोग हुआ है।
- उसे तो अपनी काजल मिस्सी, मांग चोटी से ही छुट्टी नहीं मिलती। बच्चे की देखभाल क्या करेगी? बेचारा जमीन पर पड़ा सोता होगा। बिचारा एक दिन भी सुख से नहीं रहने पात। कभी खांसी, कभी दस्त, कभी कुछ कभी कुछ। यह सोच-सोचकर उसे झुनिया पर क्रोध आता। गोबर के लिए अब भी उसके मन में वही ममता थी। इसी चुड़ैल ने उसे कुछ खिला-पिलाकर अपने वश में कर लिया। ऐसी मायाविवी न होती तो यह टोना ही क्यों करती। गोई बात न पूछता था। भौजाइयों की लातें खाती थी। यह झुग्गता मिल गया तो आज राणी हो गई।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

लखनऊ शहस रे घर वापस आया गोबर पिता होरी की जड़ता और मूर्खता को देखकर दु:खी होता है। मातादीन का विरोद्ध करने पर डांट पड़ती है इसलिए वह पुन: लखनऊ जाने की सोचता है लेकिन पत्नी झुनिया को साथ लेकर। धनिया नहीं चाहती थी किउसकी आंख का तारा पोता उसके सामने से ओझल हो जाए। पारस्परिक वैचारिक मतभेद स्वरूप गोबर झुनिया को भी साथ ले गया। अपने घर की खुशहाली को सूना होता देख धनिया टूट जाती है और अपनी व्यथा का वर्णन करती हुई कहती है-

व्याख्या

जब से गोबर झुनिया को लेकर शहर गया, धनिया को पोते का सूना खटोला देखकर बेचैनी होती। वह कवच, जो उसका एकमात्र सहारा था, वह भी दूर चला गया। उसे पुत्र गोबर से कोई शिकायत नहीं है। वह झुनिया को इस प्रसंग की जड़ मानती है जो शहर जाकर अब स्नतंत्र हो गई। शहरों की औरतों की तरह वह भी मिस्सी-काजल लगाती होगी अपने साज श्रृंगार में बच्चे की अनदेखी करती होगी। बेचरा पृथ्वी पर पड़ा रहता होगा। एक दिन भी सुख से न रहने पाया। आये दिन बीमार रहता कभी खांसी, तो कभी दस्त होते होंगे। झुनिया पर बार बार क्रोध आ रहा था। गोबर के लिए अब भी वही ममता थी। धनिया को लगता था कि उसने उसके पुत्र को कुछ खिला पिलाकर अपने वशमें कर लिया होगा। झुनिया मायाविनी है। उसने अपनी माय में बांध लिया होगा।

एक समय था कि झुनिया को घर में भी कोई नहीं पूछता था। भाइयों तथा भाभियों की तिरस्कृत दृष्टि का शिकर थी। मैंने उसे अपने घर में सहारा देकर अपने पैरों पर कुल्हारी मार ली। मेरा भोला-भाला बेटा मिल गया, इसीलिए आज खुद को रानी से कम नहीं समझती।

विशेष

- ❒ धनिया का अंर्तद्वद्व व्यक्त है।
- ❒ धयिा का मातृ-स्नेह एवं झुनिया से प्रतिकार की भावना व्यक्त है।
- ❒ धनिया के अनुभवी जीवन की अभिव्यक्ति हे।
- ❒ जादू-टोने का प्रसंग अंधविश्वास को रेखांकित करता है।
- ❒ विधवा जीवन की विवशता, लाचारी एवं यथार्थ का चित्रण है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ व्यवहार में भी देखा गया है कि मूलसे सूद अधिक प्रिय होता है।

❒ झुग्गा, लात, भौजाइयों आदि स्थानीय **शब्दों** का प्रयोग किया गया है।

- सिलिया जब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी, और कुछनहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से बचाता रहता था। सिलिया ने आंख उठाकर देख तो मातादीन वहां न था। बोली चिल्लाओ मत सहुआइन, यह ले लो, दो की जगह चार पैसे का अनाज। अब **क्य**ा जान लेगी ? मै मरी थोड़े ही जाती ती।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मातादीन सिलिया को आश्रय प्रदान कर उसके अस्तित्व से खिलवाड़ करता रहा लेकिन कभी पत्नीत्व की गरिमा प्रदन नहीं की। इसीलिए सिलिया भी दुखी रहती थी। वह सामाजिकता की परवाह न करता। उसका मानना था कि सिलिया जितना परिश्रम करती है उससे अधिक ही पाती है। दुलारी सहुआइन अपना पैसा वसूलने के लिए सिलिया के पास आती है। मातादीन अलग हट जाता है। दुलारी सहुआइन को अनाज देने पर क्रोधित होकर डांटना है। मातादीन की मन:स्थिति एवं मनोवृत्ति का चित्रण करते हुए कहा है-

व्या□या

मातादीन स्वार्थी मनोवृत्ति से यु**क्त** था इसीलिए वह उसका शारीरिक शोषण करने से पीछे नहीं रहता। मातादीन के घर में सिलिया की स्थिति जड़वत मशीन की तरह थी जिससे केवल काम लिया जा सकता है, उस पर व्य करने की आवश्यकता नहीं। उसकी ममता को मनमाने ढंग से नचाता था। दुलारी सहुआइन को आता देख सामने से हट जाना उसकी स्वार्थी प्रवृत्ति को उजागर करता है। सिलिया को स्वयं पर विश्वास था इसीलिए अनाज देकर वह सहुआइन का मुंह बंद कर देती है।

विशेष

❒ मातादीन की स्वार्थी भावना का चित्रण है।

❒ सिलिया को मशीन मानने में मातादीन की यंत्रीकरण की भावना को रेखांकित करता है।

❒ आंख उठाकर देखना- मुहावरे का प्रयोग हुआ है।

❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।

❒ अनाज, सरक, मरी आदि तद्भव **शब्दों** का प्रयोग हुआ है।

- उस चि**त**वन में वेदना अधिक थी या भर्त्सना, यह कहना कठिन है। पर उसी पक्षी की भांति उसका मन फड़फड़ा रहा था जो ऊंची डाल पर उन्मु**क्त** वायुमण्डल में उड़ने की श**क्ति** न

पाकर उसी पिंजड़े में जा बैठना चाहता था, चाहे उसे बेदाना, बेपानी, पिंजड़े की तीलियों से सिर टकराकर मरना ही क्यों न पड़े। सिलिया सोच रही थी, अब उसके लिए दूसरा कौन सा ठौर है। वह ब्याहता न होकर भी संस्कार में और व्यवहार में और मनोभावना में ब्याहता थी और अब मातादीन चाहे उसे मारे या काटे, उसे दूसरा आश्रय नहीं हैं, दूसरा अवलंब नहीं है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

दुलारी साहुआइन को अनाज देकर मतादीन से क्रोध मोल ले लिया। सिलिया अपने अधिकार की बात करती है तो मातादीन उग्र हो जाता है और कहता है कि तुम काम करती हो तो खाती भी हो, पहनती भी हो। उसके अलावा तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। लेखक सिलिया की मन:स्थिति का वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं–

व्याख्या

मातादीन से उपेक्षा पाकर सिलिया हृदय से टूट चुकी थी। उसकी स्थिति उस पक्षी की भांति थी जो चाहकर भी दूर उन्मुक्त गगन में नहीं उड़ सकती थी। आज मातादीन की निगाह में परिवर्तन देखा तो उसकी निगाह में वेदना की अधिकता थी। वह पिंजड़े में बंद पक्षी की भांति पड़फड़ा तो सकती थी लेकिन उससे बाहर निकलना संभव नहीं था। वह जानती थी कि मातादीन के अलावा कोई सहारा भी नहीं है। वह बिना दाना पानी के उस घर की चारदीवारी से सिर मारकर मर जाना श्रोष्ठ समझती थी। भले ही विधिवत विवाह नहीं हुआ था लेकिन संस्कार, व्यवहार एवं मनोवृत्ति के अनुसार वह मातादीन की पत्नी ही थी। मातादीन चाहे तो उसे घर से निकाल दे, या मारकर जीवन नष्ट कर दे, उसे कोई प्रतिकार नहीं था, लेकिन समाज के सामने उपेक्षा करना असहनीय था।

विशेष

- सिलिया की दु:खी मन:स्थिति का वर्णन है।
- मातादीन की बदलती मनोवृत्ति का चित्रण है।
- सिलिया की तुलना पिंजसे में बंद पक्षीसे की गई है।
- भारतीय नारी का आदर्श व्यक्त है।
- हिंदू धर्मानुसार पति ही परमेश्वर होता है। इसीलिए वह मातादीन का गृह छोड़ने को तैया न थी।

- ❒ वैध वैवाहिक संबंध ही समाज द्वारा स्वीकार्य है।
- ❒ भारतीय नारी की इच्छा होती है कि पति के सान्निध्य में ही उसकी जीवन लीला समाप्त हो।
- ❒ संस्कार 16 होते हैं, उनमें विवाह संस्कार ही जीवन पूर्णता को सिद्ध करता है।
- ❒ आत्म कथात्मक शैली, विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ शुद्ध साहित्यिक हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- मार डालो दादा, सब जनें मिलकर मार डालो। हाय अम्मां, तुम इतनी निर्दयी हो, इसीलिए दूध पिलाकर पाला था? सौर में ही क्यों न गला घोंट दिया? हाय, मेरे पीछे पंडित को भी तुमने भ्रष्ट कर दिया। उसका धर्म लेकर तुम्हें क्या मिला? अब तो वह भी मुझे न पूछेगा। लेकिन पूचेन पूछे रहूंगी उसी के साथ। वह मुझे चाहे भूखों रखे, चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोडूंगी। उसकी सांसत कराके छोड़ दूं? मर जाऊंगी, पर हरजाई न बनूंगी एक बार जिसने बांह पकड़ ली उसकी रहूंगी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

सिलिया की दुर्दशा देखकर और मातादीन की उदासीनता से ग्रसित होकर उसके मां-बाप घर चलने का आग्रह करते हैं लेकिन सिलिया मना कर देती है। भाइयों द्वारा मार खाकर भी मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती। सिलिया ने दीन होकर विनती की, लेकिन मां-बाप के हृदय में दया नहीं आयी। सिलिया के दृढ़ स्वभाव का वर्णन करते हूए लेखक ने कहा-

व्याख्या

अपने परिवार में अपनी दुर्गति देखकर सिलिया अपनी व्यथा व्यक्त करती हुई कहती है कि सब मेरे खिलाफ हो गए हो। सब मिलकर मुझे मार डालो। हे मां तुमने तो मुझे दूध पिलाकर बड़ा किया, तुम्हारे हृदय में भी दया नहीं आयी। मुझे पैदा होते ही क्यों न मार दिया। मेरे पीछे मेरे पंडित (पति) की दुर्दशा करने में जरा भी शर्म नहीं आयी। उसके धर्म के साथ विद्रोह करके तुम्हें क्या मिला? तुम्हारे दुर्व्यवहार के कारण ही अब मेरा भी वहां रहना दूभर लग रहा है। अपनी दृढ़ता व्यक्त करती हुई कहती है कि वह चाहे मुझे मारे या पीटे, मेरा वहीं रहना सार्थक है। मेरे जीवन की सार्थकता भी उन्हीं के घर सिद्ध होगी। उनके साथ रहकर मुझे अपने धर्म का निर्वाह करने में आसानी होगी। उनकी अंतिम क्रिया कर्म के बाद ही उस घर को त्याग सकती हूं।

उनके घर पर मरना मुझे अधिक श्रेष्ठ है। पति के जीते जी दूसरे का हाथ थामना मुझे अच्छा नहीं लगता। जिसने एक बार मेरे साथ रहने की निश्चय किया है, उसका साथ छोड़ना दूभर ही है। जब तक जीवित हूं उन्हीं के साथ रहने में मेरी भलाई है।

विशेष

- ❒ परिवार की उपेक्षा से दु:खी सिलिया की मन:स्थिति का वर्णन है।
- ❒ अभिभावको के लिए सामाजिक मर्यादा का पालन करना अनिवार्य होता है, इसीलिए सिलिया से घर चलने का आग्रह किया जाता है।
- ❒ पति के प्रति समर्पण की भावना का वर्णन है।
- ❒ सिलिया द्वारा भरतीय नारी की महिमा का वर्णन किया गया है।
- ❒ हिंदू धर्मानुसार पति ही परमेश्वर होता है।
- ❒ आदर्श पत्नी का धर्म है कि वह पति के साथ रहे। उसमें ही उसकी सार्थकता है।
- ❒ मुहावरे का प्रयोग- बंह पकड़ना, भ्रष्ट करना के रूप में हुआ है।
- ❒ तद्भव शब्द- भ्रष्ट, धरम, सांसत आदि प्रयुक्त हुए हैं।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ सरल प्रवाहित हिंदी का प्रयोग हुआ है।
- नेकी न करना बदनामी की बात नहीं। अपनी इच्छा नहीं, या सामर्थ्य नहीं है। इसके लिए कोई हमें बुरा नहीं कह सकता। मगर जब हम नेकी करके अहसान जताने लगते हैं, तो वही जिसके साथ हमने नेकी की थी हमारा शत्रु हो जाता है। और हमारे अहसान को मिटा देना चाहता है। वही नेकी अगर करने वालों के दिल में रहै, तो नेकी है, बाहर निकल जाए तो बदी है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

भोला की दूसरी पत्नी नोहरी के संबंध नोखेराम से हैं। होरी और धनिया को अपना समधी समधिन मानती है। सोना के विवाह पर रुपये देने को तैयार हो जाती है। उसकी इच्छा है कि सभी उसका अहसान माने, उसकी चर्चा करें। तो पूर्ण बदनामी से बचा जा सकता है। सोना के विवाह पश्चात नोहरी अपनो व्यवहार की प्रशंसा करती है। होरी तो परिस्थितिवश सुन लेता है, लेकिन धनिया को यह व्यवहार अच्छा नहीं लगता।

व्याख्या

धनिया नोहरी की आत्म प्रशंसा को सुनकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती है कि नेकी करके उसका बखान करना उचित नहीं है। नोहरी ने होरी पर जो उपकार किया था उसका बखान करके स्वयं की उपयोगिता सिद्ध करना सार्थक नहीं है। नोहरी का ऐसा करना उनकी बदनामी का कारण बना। नेकी करके उसका बखान न करना ही महानता का लक्षण है। अगर नेकी न होगी तो बदी का अंत कैसे होगा? नेकी ही प्रतिकार को जन्म देती है। स्वाभिमान पर किया गया आघात ही बदले की भावना को जन्म देता है। नेकी करके उसको अपने तक सीमित रखने का विचार मित्रता का सूचक है। तभी नेकी यथावत रहेगी अन्यथा अपयश का कारण बनेगी।

विशेष

- ❒ नोहरी की महत्वाकांक्षा का वर्णन है।
- ❒ उपकार का अर्थ बखान करना नहीं होत अपितु अपने तक सीमित रखना होता है।
- ❒ धनिया की कुशाग्र बुद्धि का चित्रण है।
- ❒ परोपकार का भावार्थ भी यही है कि उसका वर्णन न किया जाए।
- ❒ उर्दू शब्दों की प्रधानता है, जैसे- बदनामी, अहसान, नेकी, मगर आदि।
- ❒ धनिया की व्यवहारकुशला का वर्णन है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ सरल हिंदी भाषा का प्रयोग किया गया है।
- सेवा और त्याग की देवी, जबान की तेज, पर मोम हृदय, पैसे-पैसे के लिए प्राण देने वाली पर मर्यादा रक्षा केर लिए अपना सर्वस्व होम कर देने का तैयार। जवानी में वह कम रूपवती नहीं थी। नोहरी उसके लिए अपना सर्वस्व होम कर देने को तैयार था। नोहरी उसके सामने क्या है? चलती थी तो रानी लगती थी। जो देखता था देखता ही रह जाता था।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी हल लेकर खेत पर जाता है। उसे भोला की दयनीय स्थिति को देखकर तरस आ रहा है। नोहरी ने भोला को सभी के सामने पीटा लेकिन लाचार भोला शांत रहा। उसकी आंखों के सामने नोहरी और सिलिया का चरित्र घूमने लगता है। सिलिया के पतिव्रत धर्म पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि वह मातादीन के यहां ही रहेगी चहे वह उसे मारे या काटे। होरी धनिया की विशेषताओं से प्रभावित होकर कहता है।

व्याख्या

नोहरी और सिलिया के वृत्तांत के बीच धनिया की उपस्थिति ने होरी का ध्यान आकृष्ट कर लिया। होरी धनिया के गुणों से प्रभावित था। उसने सेवा द्वारा सभी को आकृष्ट कर लिया था। परिवार के लिए धनिया का त्याग बहुमूल्य था जिसके फलस्वरूप परिवार सुचारु रूप से संचालित ता। वह जबान की तो तेज थी, साथ ही मोम के समान कोमल हृदय भी रखती थी। एक-एक पैसा बचाने के लिए अपनी जान तक छिड़कती थी किंतु मर्यादा का पालन करने से पीछे न थी। स्वयं को स्वाह करके भी मर्यादा पर आंच नहीं आने देती थी।

धनिया के सौंदर्य की प्रशंसा करता हुआ होरी कहता है कि वह जबानी में अधिक रूपवती थी। नोहरी उसके सामने उन्नीस लगती थी। जब वह चलती थी, तो रानियों की पीछे छोड़ दीती थी। जो एकबार धनिया को देख लेता, कभी नहीं भुला पाता था।

विशेष

- ❒ होरी का तुलनात्मक दृष्टिकोण व्यक्त है।
- ❒ धनिया के गुणों की विवेचना की गई।
- ❒ होरी की निगाह में धनिया नोहरी व सिलिया से अधिक गुण सम्पन्न थी।
- ❒ धनिया के द्वारा प्रेमचंद ने आदर्श गृहिणी का स्वरूप स्पष्टकिया है।
- ❒ यह मनुष्य का स्वभाव है कि अतीत को स्मरण कर वर्तमान को सुखद बनाने की चेष्टा करता है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ शुद्ध साहित्यिक सरल हिंदी का प्रयोग किया गया है।
- प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्म योग ही कहो, वही जडीवन को सार्थक कर सकता है। वही जीवन को ऊंचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को अपने लिए असंभव समझते थे; इसीलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने असंभव समझते थे; पर यह धारणा उवके मन में दृढ़ हो गई थी प्राणियो के जन्म-मरण, सुख-दुख, पाप-पूण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता को अपने ज्ञान पर घमंड था। उनकी दृष्टि में नारी केवल परिवार तक सीमित थी। मालती के सेवा भाव के सामने मेहता का घमंड काफूर हो गया। काफी विचार विमर्श के पश्चात

इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि आध्याात्म और अनात्मवाद से भी श्रेष्ठ सेवा का मार्ग है। इसी मनोवृत्ति की विवेचना है।

व्याख्या

प्रो. मेहता यह सोचने पर विवश हुए कि संसार में सभी बातों से बढ़कर सेवा का भाव है, जो मनुष्य में मानवता को पल्लवित करता है। सेवा की प्रवृत्ति के मूल में चाहे कर्मप्रधानता की भावना ही क्यों न हो? सेवा द्वारा ही जीवन में विनम्रता का संचार होता हैं। मनुष्य का अहं समाप्त हो जाता है। जीवन की सार्थकता सेवा द्वारा ही पूर्ण मानी जाती हैं। सेवा द्वारा ही जीवन में ऊंचे आदर्शों का पलन करना संभव होता है। जीवन में पवित्रता की गंध आती है। मेहता का मानना था कि संसार में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है। अपनी इस विचारधारा को दूसरों तक हस्तांतरित नहीं करते थे क्योंकि यह उनकी मौलिकता की उपज थी। उनका कहना था कि संसार में प्राणियों के पैदा होने और नष्ट होने में कार्य कारण का संबंध ही है। सुख-दु:ख, पाप-पूण्य मनुष्य के वैयक्तिक जीवन के अंग है।

विशेष

- ❒ प्रो. मेहता द्वारा मार्क्सवादी भावना क व्यक्त किया गया है।
- ❒ मालती की सेवा भावना के प्रभाव स्वरूप मेहता का बा□द्धिक चिंतन परास्त होता है।
- ❒ सामान्य जीवन में भी सेवा का भाव देखा जाता है जिससे जीवन में क्रमबद्धता बनी रहती है।
- ❒ कर्मप्रधान संसार में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए जागरूक होना आवश्यक है।
- ❒ कर्म करना प्राणीमात्र का धर्म है।

- ❒ प्रो. मेहता की बदलती मन:स्थिति का चित्रण है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ साहित्यिक सरल हिंदी प्रयोग में लाई गई है।

- अज्ञान की भांति भी निष्कपट और सुनहरे स्वप्न देखने वाला होता है। मानवता में उसका विश्वास इतना दृढ़, इतना सजीव होता है कि वह उसके विरुद्ध व्यवहार को अमानुषीय समझने लगता है। वह यह भूल जाता है कि भेड़ियों ने भेड़ों की निरीहता का जवाब सदैव पंजों और दांतों से दिया है। वह अपना एक आदर्श संसार बनाकर उसको आदर्श मानवता से आबाद करता है और उसी में मग्न रहता हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता की प्रेरणता से माल ती की जीवन शैली में परिवर्तन आ गया। वह गांव-गांव जाकर स्त्रियों को, बच्चों के स्वास्थ्य की बतें बताया करती। एकबार मेहता के साथ गांव में जाकर बच्चों के स्वास्थ्य का परीक्षण करने लगी। मेहता जी गांव में कुश्ती को देखने लगे और सोचने लगे कि लोग भोले निरीह मनुष्यो के साथ निर्दयता का व्यवहार **क्यों** करते हैं ?

व्याख्या

मेहता गांव में कुश्ती का आयोजन देख रहे थे, उनकी दृष्टि गांव के भोले-भाले, सीधे और सच्चे मनुष्यों पर पड़ी। उनका मन व्यथित होकर कहने लगा कि मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन **क्यों** होता है ? दूसरे को त्रस्त करने में **क्या** मिलता है ? एक विवेचक तथा दार्शनिक की भांति सोचते हुए कहते हैं कि ज्ञानी और अज्ञानी व्य**क्ति**यों की प्रकृतियों में अंतर **क्यों** होत है ? दोनों के दृष्टिकोण में अंतर **क्यों** पाया जाता है ? अज्ञानी व्य**क्ति** की दृष्टि यथार्थ पर टिकी होती है जबकि ज्ञानी आदर्शवाद की आड़ में अपने कुत्सित विचारों से त्रस्त रहता है। आदर्श की रोशनी में यथार्थ धरातल भी उसके सामने ओझल हो जाता है। अरपनी मनोवांचित प्रकृतियों के विपरीत आचरण करने वाले से रुष्ट हो जाता है। मानवता के शुभ पक्ष को देख पाता है तथा वह प्रकृति के यथार्थ स्वरूप की अवहेलना करने लगता है। वह अपनी श**क्ति** सामर्थ्य के सामने किसी को महत्व प्रदान नहीन करता।

ज्ञानी और अज्ञनी के अंतक को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि ज्ञानी मनुष्य भेड़िये के समान होता है और अज्ञानी भेड़। भेड़ का स्वभाव किसी के प्रति दुर्भावना यु**क्त** नहीं होता फिर भी भेड़िया उसको अवसर आने पर अपने भोजन का शिकार बनाता है। उसके तेज पंजे और नुकीले दांत बेचारी भेड़ की जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। ज्ञानी का जीवन यथार्थ से दूर कल्पना लोक में होता है जबकि अज्ञानी यथार्थ धरातल पर सरलता यु**क्त** जीवन जीता है।

विशेष

- ❒ जीवन की कठोर वास्तविकता कल्पनालोक को खंडित कर यथार्थ धरातल पर लाकर खड़ा कर देती है।
- ❒ प्रो. मेहता की विद्वता का वर्णन है।

- ❒ ज्ञान का मानवीकरण किया गया है।
- ❒ भेड़िया शोषक और भेड़ शोषित वर्ग का प्रतीक है।
- ❒ आदर्श और यथार्थ की विवेचना की गई है।
- ❒ विवेतनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ प्रो. मेहता का चिंतनशील पक्ष व्यक्त हुआ है।

- नारी परीक्षा नहीं चाहती प्रेम चाहती है। परीक्षा गुणों को अनगुण, सुंदर को असुंदर बनाने वाली चीज है। प्रेम अवगुण को गुण बनाता है, असुंदर को सुंदर। मैंने तुमसे प्रेम किया है, मैं कल्पना ही नहीं कर सकती, कि तुम में कोई बुराई भी है। मगर तुमने मेरी परीक्षा की, और तुम मुझे अस्थिर, चंचल और जाने क्या-क्या समझकर मुझसे दूर भागते रहे। मैं जो कुछ चाहती हूं, वह मुझे कह लेने दो। मैं क्यों अस्थिर और चंचल हूं, इसीलिए कि मुझे वह प्रेम नहीं मिला जो मुझे स्थिर और अचंचल बनाता।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

प्रो. मेहता मालती के गुणों से प्रभावित होकर विवाह करने की इच्छा व्यक्त करते हैं। मालती मेहता की परीक्षणात्मक विचारधारा से व्यथित है। उसका मानना है कि तुमने सदैव परीक्षा की दृष्टि से उसे परखना चाहा। नारी प्रेम की भूखी है। प्रेम और परीक्षा में अंतर होता है।

व्याख्या

मालती मेहता के व्यवहार से तंग आकर कहती है कि तुमने मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखा है। कोई स्त्री परीक्षा को पसंद नहीं करती क्योंकि परीक्षा में अवगुणों का समावेश हो जाता है। नारी प्रेम की भूखी होती है उसको पल्लवित करने के लिए वह ललायित रहती है। प्रेमी की दृष्टि परीक्षक की दृष्टि से व्यापक होती है। उसकी सीमा में परिवार, समाज और राष्ट्र समाहित हो जाता है। प्रेमी का विचार असुंदर को सुंदर बना देता हैं उसे अपनी प्रेकिा में अवगुण भी गुणों के रूप में नजर आते हैं। मैंने आपसे प्रेम किया है, आपके अवगुण भी गुणों के रूप में नजर आते हैं। जबकि आपने मुझे परीक्षक की दृष्टि से देखकर गुणों को अनदेखा कर दिया है। इसीलिए मुजे अस्थिर, चंचल मानकर मुझसे दूर भागने का प्रयत्न कर रहे हैं। जबकि मैं अस्थिर हूं, चंचल हूं, इसलिए कि मुझे प्रेम नहीं मिला जो मेरे अवगुणों को गुणों में परिवर्तित कर देता।

विशेष

- ❒ प्रेमी एवं परीक्षक के दृष्टिकोण का अंतर बताया गया है।
- ❒ प्रेम शब्द व्यापकता की ओर संकेत करता है।
- ❒ प्रेमी को अवगुण भी गुणों के रूप में दिखाई देते है।
- ❒ मालती की बुद्धि कुशलता का चित्रण है।
- ❒ मालकी की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन किया गया है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ सरल प्रवाह युक्त हिंदी का प्रयोग हुआ है।

- हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो। यद्यपि इस हित को हम इतना अपना लेते हैं, कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता हैं। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यदा होती है, वह शासन भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और वह त्यग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

राय साहब अमरपाल सिंह का पुत्र रुद्रपाल, मालती की बहन सरोज से विवाह करने को इच्छुक है। बेटे की जिद् के सामने अमरपाल सिंह व्यथित हैं। उन्हें अपना विधुर जीवन व्यथित करने लगता है कि इन बच्चों की परवरिश के लिए दूसरा विवाह नहीं किया, लेकिन बच्चे भावनाओं को अनदेखा कर देते हैं। राय साहब का बेटे के लिए दु:खी होना स्वाभाविक है।

व्याख्या

बेटे की जिद् के सामने लाचार अमरपाल अपनी मनोदशा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि हम जिनके लिए त्याग करते हैं, वह भले ही उसका अहसान न माने, किंतु हम अप्रत्यक्ष रूप से उस पर शासन करने के आकांक्षी होते हैं। वह विचार भले ही उसे व्यथित करता हो, उनके हित को ध्यान में रखकर ही हम ऐसी प्रवृत्ति का समर्थन करते हैं, ऐसी स्थिति में हमारा अपना प्रिय भी शत्रु हो जाता है।

रायसाहब की भी यही स्थिति है। परिवार का पालन करने व परवरिश करने के लिए निजी सुखों की तिलांजलि के दी। विधुर जीवन जीना श्रेष समझा। वह चाहते तो विवाह करके अपने विधुर जीवन को विलास में डुबो सकते थे। लेकिन बच्चे उनके त्याग की कोई परवाह नहीं करते।

रुद्रपाल ने अपने विवाह को लेकर उनका जो अपमान किया वह असहनीय था। रुद्रपाल का कहना है कि मेरा विवाह तो सरोज से ही होगा, भले ही आपके बाद हो। यह वास्तव में राय साहब का अपमान ही था।

प्रेमचंद का मानना है कि जो व्यक्ति अपने बच्चों से जितना प्यार करता है उसकी आड़ में शासन करने की मनोवृत्ति भी स्वत: झलकने लगती है। बच्चे इसे प्रतिकार करके अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चों का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही है। प्रतिहिंसा के मूल में भी यही मनोवृत्ति उत्तरदायी होती है।

विशेष

- ❒ रुद्रपाल में आधुनिक पीढ़ी के युवकों की झलक दिखाई देती है।
- ❒ राय साहब की दु:खी मन:स्थिति का चित्रण किया गया है।
- ❒ राय साहब द्वारा युगीन समाज की यथार्थता को रेखांकित किया गया है।
- ❒ प्रेमचंद ने राय साहब के मनोविज्ञान का वर्णन किया है।
- ❒ उपकार के बदले प्रत्युपकार की भावना विलुप्त होती जा रही है।
- ❒ रायसाहब के त्याग का वर्णन है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ शुद्ध साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- प्रेम का कुछ मान भी होता है कुछ महत्व भी। श्रद्धा तो अपने को मिटा डालती है और अपने मिट जाने को ही अपना इष्ट बना लेती है। प्रेम अधिकार करना चाहता है, जो कुछ देता है, उसके बदले में कुछ चाहता भी है। श्रद्धा का चरम आनंद अपना समर्पण है, जिसमें अहंकार का ध्वंस हो जाता है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती की सेवा भावना से आकृष्ट होकर प्रो. मेहता अनायास आकर्षण में बंध जाते हैं। राय साहब की लड़की की बीमारी का समाचार सुनकर वह शीघ्र इलाज करने पहुंच जाती है। मेहता सोचने लगते हैं कि मालती ने सिद्धि प्राप्त कर ली है। यह उसकी तपस्या एवं मानवता का वरदान ही है वह आकाश में चमकने वाले नक्षत्र के समान है।

व्या◆या

प्रो. मेहता मालती की सेवा भावना की प्रशंसा करने पर विवश हैं। उन्हें परोक्ष रूप में निराशा ही मिली। प्रेमी के रूप में नारी के उच्च आदर्श को देखा। वह प्रेम के लिए निर्मित है। उसके प्रति

आदरभाव रखना स्वाभाविक ही है। मलाती की स्नेहमयी दृष्टि का दायरा सिकुड़ गया है। वह दुर्लभ प्रतीत होने लगी है। जिस मानयु**क्त** प्रेम की आकांक्षी थी वह उसे सेवाभाव में प्राप्त हो गया। उसके प्रति श्रद्धा व्य**क्त** करना उसके अस्तित्व को दुर्लभ बनाना है। उसने स्वयं को मिटाकर सेवाभाव द्वारा मानवात के दर्शन किये हैं। प्रेम में बदले की भावना भी पायी जाती है। इसमें आदान-प्रदान का होना स्वाभाविक ही है। श्रद्धा द्वारा समर्पण को प्राप्त किया जा सकता है जिससे व्य**क्त** का अहंकार स्वत: ही तिरोहित हो जाता है।

विशेष

- ❒ मालती की महत्ता प्रतिपादित की गई है।
- ❒ अप्रत्यक्ष रूप में प्रो. मेहता ने मालती से हार मानी है।
- ❒ प्रेम आदान-प्रदान द्वारा ही पल्लवित होता है।
- ❒ प्रेम और श्रद्धा एक दूसरे के विरोधी है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ शुद्ध साहित्यिक हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- तुम मेरे पथप्रदर्शक हो, मेरे देवता हो, मेरे गुरु हो। तु**म्हे** मुझसे कुछ याचना करने की जरुरत नहीं, मुझे केवल संकेत कर देने की जरूरत है। जब मुझे तु**म्ह**ारे दर्शन न हुए थे, और मैंने तु**म्हें** पहचाना न था योग और आत्म सेवा ही मेरे जीवन का इष्ट था। तुमने आकर उसे प्रेरणा दी, स्थिरता दी। मैं तु**म्ह**ारे अहसान कभी नहीं भूल सकती।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मालती के सेवाभाव से प्रभावित होकर प्रो. मेहता के जीवन की दिशा बदल गई। मेहता के प्रति समर्पण की भावना को व्य**क्त** करती हुई मालती कहती है।

व्याख्या

प्रो. मेहता के प्रति अपनी आत्मीयता व्य**क्त** करती हुई कहती है कि मैंने आपसे प्रेरणा ग्रहण की है, मेरे जीवन के प्रेरणास्पद स्तंभ आप ही है। मैंने स्वयं को आपके लिए समर्पित कर दिया है। मेरे जीवन में आपका देवता के समान स्थान है। मुझे सही रास्ता बतलाने वाले गुरु हो। मैं आपसे हमेशा ग्रहण करना चाहती हूं। मैं आपके संकेत मात्र से अपना जीवन समर्पित कर सकती हूं। जब

मैं आपको नहीं देख पाती तो मेरा अधीर हृदय व्यथित होने लगता है। मैंने आपको न पहचान कर बड़ी भूल की है। योग और आत्म-सेवा ही मेरे जीवन का उत्स है। मेरे जीवन को आपने ही गतिशीलता प्रदान की है। जीवन में स्थिरता का समावेश किया है। आपके मेरे ऊपर जो उपकार हैं, उनकों भूलना मेरे जीवन की सबसे बड़ी भूल होगी।

विशेष

- ❒ मालती की मेहता के प्रति समर्पण की भावना का वर्णन है।
- ❒ मालकी की सेवा भावना और समर्पण के मूल में मेहता की महती भूमिका रही है।
- ❒ मेहता की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख है।
- ❒ मालती द्वारा प्रेमचंद ने नारी जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया है।
- ❒ आत्म कथात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ सरल प्रवाहित हिंदी भाषा का प्रयोग हुआ है।
- संसार में तुम जैसे साधकों की जरूरत है जो अपनेपन को इतना फैला दे कि सारा संसार अपना हो जाए। संसार में अन्याय की, आतंक की, भय की दुहाई मची हुई है। अंधविश्वास का, कपट धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त पुकार सुनी है? तुम भी न सुनोगे, तो सुनने वाले कहां से आएंगै? और असत्य प्राणियों की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान नहीं बंद कर सकते। तुम्हें वह भोजन मार हो जाएगा। अपनी विद्या और बुद्धि को अपनी जागी हुई मानवता को और भी उत्साह और जोर के साथ उसी रास्ते पर ले जाओ।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मलकी की सेवा भावना एवं समर्पण के फलस्वरूप मेहता का हृदय परिवर्तन होने लगा। उनके हृदय में मालती के प्रति जो विचार थे अव निराधार प्रतीत होने लगे हैं। उन्हें अपना निजी व्यक्तित्व समाप्त होता प्रतीत होने लगा है। मालती मेहता को समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का बोध कराती हुई कहती है।

व्याख्या

मालती मेहता से कहती है कि तुम्हारा स्वभाव सुधारक का है, उसी का पालन करना आवश्यक है। समाज से कुरीतियों का निवारण होना आवश्यक है। संसार में चारों ओर अन्याय की मारा-मारी

लगी है, अत्याचार का बोल-बाला है। छलकपट अंधविश्वास का बोल-बाला हैं। स्वार्थ ने अपने पंजें में जकड़ लिए हैं। जनता में त्राही-त्रही मची हुई है। उनकी पुकार को सुनने वाला कोई नहीं है। अगर तुम वह आर्तपुकार नहीं सुनोगे तो कौं सुनेगा? अगर मैं तुम्हें विवाह के बंधन में बांध लूं, तो समाज के प्रति अन्याय ही होगा। हमारे निजी स्वार्थ के सामने समाज गौण हो जाएगा जो उचित नहीं है। मुझे यह स्वीकार्य नहीं है। तुम इसको अनदेखा कर दोगे तो कौन अपने कर्तव्य का पालन कर पाएगा? तुम्हें अपना जीवन भी भार स्वरूप लगेगा और पश्चाताप के अलावा कुछ हाथ नहीं लगेगा। अपनी विद्या, बुद्धि और उत्साह को पहले से भी अधिक प्रबलता से लोकसेवा में लगा दो।

विशेष

- ❒ मालती की समाज सेवा का भाव दृष्टव्य है।
- ❒ मालती की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन है।
- ❒ मालती के रूप में गांधीवादी प्रभाव की व्यंजना हुई है।
- ❒ विवेचनात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ मानवतावादी भावना को पुष्ट करने के लिए बौद्धिक चिंतन आवश्यक है।
- ❒ विवाह एक बंधन है जो पति-पत्नी के पारस्परिक समर्पण पर टिका होता है।
- ❒ लोकसेवा सर्वोपरि है।
- ❒ धाराप्रवाह सरल हिंदी प्रयोग में लाई गई है।
- अपना भाग्य खुद बनाना होगा, अपनी बुद्धि और साहस से इन आफतों पर विजय पाना होग। कोई देवता, कोई गुणशक्ति, उसकी मदद करने न आयेगी। और उसमें गहरी संवेदना सजग हो उठी। अब उसमें पहले जैसी उद्दण्डता और गुरूर नहीं है। वह नम्र और उद्योगशील हो गया है। जिस दशा में पड़े हो उसे स्वार्थ और लोभ के वश होकर और क्यों बिगाड़ते है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

शहर से वापस आने पर गोबर ने जब गांव की स्थिति देथी तो उसका हृदय दु:खी होने लगा। उसके स्वभाव में परिवर्तन आ गया था। पूर्व की स्थिति और वर्तमान की स्थिति में अंतर नजर आने लगा था एवं राजनैतिक जीवन में अस्थिरता नजर आने लगी थी।

व्याख्या

गोबर युगीन परिदृश्य पर प्रकाश डालते हुए कहता है कि भाग्य के सहारे रहना अकर्मण्यता का सूचक है। हमें क्रियाशील होकर अपना भाग्य स्वयं बनाना है। हमें शक्ति सम्पन्न होकर अत्याचारों का विरोध करना है। बुद्धि के आधार पर प्रत्येक समस्या का समाधान करना है। हमें आत्मनिर्भर होकर जीवन जीने की आदत डालनी हैं, न तो देवत साथ दो सकता है और न कोई अदृश्य शक्ति। गोबर के व्यक्तित्व में परिवर्तन आ गया है। पहले जैसी उद्दण्डता और आक्रोश तिरोहित हो गए हैं। उसके जीवन में विनम्रता एवं संवेदना का समावेश हो गया है। अपनी इस दयनीय स्थिति को दूर करने के लिए हमें निष्क्रिय होकर अपना भविष्य अंधकारमय नहीं बनाना है।

विशेष

- ❒ शोषकों से प्रतिकार करने के लिए एकता का होना आवश्यक है।
- ❒ गोबर का हृदय परिवर्तन दिखाया गया है।
- ❒ कर्म की महत्त प्रतिपादित की गई है।
- ❒ गोबर की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन है।
- ❒ आत्मकथात्मक शेली का प्रयोग किया गया है।
- ❒ वातावरण की व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है यह दिखाया गया है।
- ❒ सरल प्रवाहयुक्त साहित्यिक भाषा का प्रयोग हुआ है।

- जैसे अपमान के अथाह गढ़े में गिर पड़ा है और गिरता चला जा रहा है। आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हु है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है। और जो आता है, उसके मुख पर थूक देता है वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है भाइयों, मैं दया का पात्र हूं। मैंने नहीं जाना जेठ की लू कैसी होती है? और माघ की वर्षा कैसे होती है? उस देह को चीरकर देखो, इसमें कितना प्राण रह गया है- कितना जन्मों से चूर-कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछो कि तूने कभी विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छांह में बैठा? उस पर यह अपमान! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी अधम। उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अंधा हो गया था, मानों टूट-टूटकर उड़ गया है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

सोना के विवाह के लिए जब होरी दातादीन के यहां उधार मांगने या, तो उसका मन आत्मग्लानि से भर गया। रुपये लेते समय उसका हाथ कांप रहा था, मुंह से एक शब्द न निकला। प्रेमचंद ने होरी की इस लाचारी का वर्णन करते हुए कहा–

व्याख्या

होरी के व्यक्तित्व में स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा हुआ था। उसने किसी के आगे हाथ नहीं फैलाये। स्वयं यातनासही, लेकिन आत्म सम्मान पर आंच नहीं आने दी। मातादीन से रुपये लेते समय होरी को अपमान लग रहा था। ऐसा लगता था मानों अपमान के गड्ढे में गिर गया हो। तीस वर्ष तक उसने जीवन में संघर्ष किया, लेकिन कभी हार स्वीकार नहीं की। आज मातादीन के सामने द्वार पर खड़े होकर आत्मग्लानि का अनुभव हो रहा था। वह बार-बार कह रहा था कि मैं दया का पात्र हूं मुझे उपेक्षा से मत देखो। मैंने कभी गर्मी और बरसात की परवाह नहीं की। शारीरिक एवं मानसिक आघात भी सहे लेकिन कभी शांति से नहीं बैठा। क्रियाशील होने पर भी उसे अपमान का सामना करना पड़ा। वह स्वयं को कायर लोभी और अधम तक कहकर मन की वेदना शांत करना चाहता है। आज जीवनभर संचय किया गया विश्वास व्यर्थ हो गया है। खंड-खंड होकर आज समाप्त हो रहा है।

विशेष

- ❒ होरी के स्वाभिमान का चित्रण है।
- ❒ होरी की कर्मठता का वर्णन है।
- ❒ होरी की निष्पक्षता व ईमानदारी का चित्रण है।
- ❒ मनोविश्लेषक शैली का प्रयोग किया गया है।
- ❒ मुहावरा मुंह पर थूकना।
- ❒ आत्मकथात्मक शैली।

- होरी प्रसन्न था। जीवन के सारे संकट, सारी निराशाएं मानों उसके चरणों पर लोट रही थी कौन कहता है जीवन संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह फलक क्या हारके लक्षण है? उन्हीं हारों में उसकी विजय हैं उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं है। उसकी छाती फूल उठी है, मुख पर तेज आ गया है।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मृत्यु शय्या पर लेटा होरी प्रसन्न था तभी शहर से गोबर आ जाता है औररुसके पैरों पर लोट जाता है। घर से भागा हुं हीरा भी आ जाता है। होरी को यह मिलन देखकर खुशी हो रही है।

व्याख्या

जीवन संघर्ष में कभी न परास्त होने वाला होरी मृत्यु शय्या पर लेटा हुआ भी आनंद का अनुभव कर रहा है। उसके अतीत की सारी घटनाएं, संकट समाप्त हो गए है। ऐसा होरी आज स्वाभिमान को कैसे भूल सकता है ? जीवन संग्रम में वह टूट भले ही गया हो लेकिन हारा कभी नहीं। उसके पास सब कुछ है। घर त्याग कर गया हुआ हीरा आकर होरी से गले मिलता है। आज उसके पास सब कुछ है। बससों के बिछड़े पुन: मिल गए हैं आज सारे संकट उसके चरणों में परास्त हो गए हैं। उसके चेहरे को देखकर गर्व का अनुभव हो रहा है। उल्लास का वातावरम है। इसी हार में उसकी विजय की पताकाएं फहरा हैं उसके फटेहाल वस्त्र उसकी विजय गाथा की पताकाएं हैं। उसका सीना चौड़ा हो गया है। मुखपर गर्व का भाव झलक रहा है।

विशेष

- ❒ सामान्यतया मनुष्य मृत्यु के सन्निकट पहुंचकर भयभीत हो जाता है। किंतु होरी प्रसन्न है।
- ❒ मृत्यु के निकट संयुक्त परिवार का ढांचा व्यवस्थित होता दिखाया है जो प्रेमचंद के आदर्शवादी विचारों को व्यंजित करता है।
- ❒ होरी द्वारा प्रेमचंद ने मानवीय यातना को व्यक्त किया है।
- ❒ भावात्मक शैली का प्रयोग है।
- उसकी आंखों में बहते हुए आंसू बतला रहे थे कि मोह का बंधन तोड़ना कितना कठिन हो रहा है। जो कुछ अपने से नहीं बन पड़ा, उसी के दुख का नाम तो मोह है। पाले हुए कर्तव्य और निपटाए हुए कामों का क्या मोह! मोह तो उन अनाथों को छोड़ जाने में है जिनके साथ हम कर्तव्य न निभा सके, उन अधूरे मंसूबों में है, जिन्हें हम न पूरा कर सके।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

मृत्यु शय्यापर होरी लेटा है। धनिया समझ गई कि अब तक जिसके आधार पर टिका था वह अब खिसक रहा है। फिर भी धैर्य रखे हुए है। होरी कार्य करते-करते बेहोस होकर गिरा, जिसे सारा गांव देखने आया। होरी की जबान बंद है, आंखों से आंसू टपक रहे हैं। प्रेमचंद ने इसी क्षण का वर्णन किया है।

व्याख्या

अचेतावस्था में होरी का बोलना बंद हो गया। लेकिन आंखों से आंसू गिर रहै हैं, जिनको देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सांसारिक मोह कितना प्रबल होता है, उसे तोड़ना अच्छा नहीं लगता। अपने प्रियजनों से बिछुड़ने का दु:ख अवश्य होता है। जिस स्वार्थ का पालन कर चुके उनसे मोह नहों होता। मोह वहां होता है जहां हम अपने कर्तव्य का पालन करने में असमर्थ होते हैं। हमारे जाने से जो बेसहारा हो जाते हैं उनका मोह अधिक प्रबल होता है। उसको त्यागना दुष्कर होता है। होरी का इच्छा थी गाय पालने की। वह मेहनत-मजदूरी करके गाय का जुगाड़ करना चाहता था। धनिया के प्रति अपने कर्तव्य को पूरा न करने का मलाल उसे व्यथित कर रहा है। इसीलिए आंसू आना स्वाभाविक है।

विशेष

- ❒ मनुष्य भावी योजनाओं में जीता है उनको पूर्ण करने का प्रयत्न भी करता है किंतु कुछ योजनाओं को पूरा न कर पाने के कारण दुखी होता है।
- ❒ धनिया की कुशाग्र बुद्धि का दिग्दर्शन है।
- ❒ होरी द्वारा कृषक जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है।
- ❒ करुण रस कार निष्पादन किया गया है।
- ❒ भावात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ भावानुकूल भाषा प्रयोग में लाई गई है।
- धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लाई और पति के ठंडे हाथ पर रखकर सामने खड़े मातादीन से बोली- महाराज, घर में गाय है न बछिया, न पैसा, यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यावतरण अमर कथाकार उपन्यासकार मुंशी प्रेमचंद की प्रसिद्ध कृति 'गोदान' से उद्धृत किया गया है।

प्रसंग

होरी सड़क मजदूर बनकर खुदाई करके आठ आने रोज पर खुदाई करने लगा। तीव्र गर्मी के कारण होरी अचेत होकर गिर पड़ा। धनियो हीरी को घर ले गयी। मृत्यु शय्या पर पड़ा होरी धनिया को बीच मझधार में छोड़कर जाने को तैयर है। गोबर आकर क्षमा मांगता है। हीरा भी होरी से गले मिलकर माफी मांगता है। हीरा धनिया से गोदान कराने को कहता है तथा उपस्थित जनसमूह की भी यही इच्छा थी।

व्याख्या

मृत्यु शय्य पर होरी लेटा है। परलोक को सुधारने के लिए तथा वैतरणी पारकरने के लिए 'गोदान' की परंपरा है। इसी परंपरा का निर्वाह करने के लिए मरते हुए व्यक्ति को गाय या बछिया की पूंछ पकड़वाकर ब्राह्मण को दी जाती है। होरी की अधूरी आस को पूर्ण करने के लिए गोदन कराने की मांग पूर्ण की जा रही है। धनिया एक यंत्र की भांति उठी और आज बेची गई सुतली के पैसे लेकर पंडित दातादीन से कहने लगी कि महाराज घर में गाय तो है नहीं, बछिया भी नहीं है जिससे गोदान करा सकूं। हां यह बीस आने है, इन्हें लेकर ही गौ का दान समझ लें। तत्पश्चात दनिया भी अचेत होकर गिर पड़ी।

विशेष

- ❒ गोदान कराने की परंपरा के प्रति क्षोभ किया गया है।
- ❒ होरी और धनिया के प्रति संवेदना का भाव पैदा हो जाता है।
- ❒ धार्मिक विकृत्तियों की ओर संकेत किया गया है।
- ❒ दान प्राप्त वस्तु का दिया जाता है अप्राप्त का नहीं।
- ❒ गोदान शीर्षक की सार्थकता व्यंजित है।
- ❒ भावात्मक शैली अपनाई गई है।
- ❒ धनिया की लाचारी का वर्णन है।

1.3 गोदान एवं भारतीय किसान

गोदान उपन्यास की रचना के मूल में मानवतावादी भावना देखने को मिलती है। कृषक जीवन के प्रति संवेदना ही गोदान उपन्यास के अस्तित्व का मूल कारण है। संपूर्ण उपन्यास में 80 प्रतिशत ग्रामीण किसान का परिवेश ही चित्रित है। अनुभूति, संवेदना एवं शोषण के पक्ष मानवतावादी भावना को स्पष्ट करते हैं। होरी का झुनिया को घर में पनाह देना, नोहरी, दुलारी सहुआइन की सहृदयशीलता, मानवतावाद का पक्ष प्रस्तुत करती हैं। गोबर का पिता की दीनता को देखकर द्रवित होना मानवतावादी भावना का उदाहरण है।

विभिन्न स्थितियों और पात्रं के द्वारा गोदान में चित्रित भारतीय कियान की स्थिति को इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है–

1. अनुभूति एवं संवेदनात्मक पक्ष की प्रस्तुति– 'गोदान' में हृदय के आंतरिक पक्ष की प्रस्तुति भी यत्र-तत्र देखने को मिलती है। गोबर द्वारा झुनिया को गर्भवती बनाकर शहर भाग जाने पर संवेदना का स्रोत फूटने लगता है। जो पूर्व में पुत्र के कुकृत्यों से नाखुश था वही पत्नी धनिया की सलाह पर झुनिया को घर में पनाह देने पर सहमत हो जाता है। होरी के विचारों में संवेदना के तत्व देखे जा सकते हैं– ''डर मत बेटी, डर मत। तेरा घर है तेरा द्वार है, तेरे हम हैं। आराम से रह। जैसे तू भोला की बेटी है, वैसे ही मेरी बेटी है।'' भोला को संकट में देखकर धर्मभूरू, होरी कहता है– ''भूसे के लिए तुम गाय बेचोगे और मैं लूंगा। मेरे हाथ न कट जाएंगे।'' इसे होरी की व्यवहारिता के साथ संवेदनात्मक पक्ष कह सकते हैं। गोबर पिता की दयनीय स्थिति एवं युगीन परिस्थितियों से द्रवित होकर स्वयं को धिक्कारता है। गोबर की पश्चाताप की भावना संवेदना एवं अनुभूति का द्वार खोलती है।

2. अवसरवादिता– रायसाहब अमरपाल सिंह के व्यक्तित्व में अवसरवादिता को देखा जा सकता है। एक ओर वे जमींदारी प्रथा के प्रति चिंतित दिखाई देते है। वहीं दूसरी ओर वे शोषण की कड़ी के रूप में भी जाने जाते हैं। इन सभी समस्याओं से भारतीय किसान आज भी जूझ रहा है।

3. होरी : ठेठ भारती किसान के रूप में चित्रित– गोदान में होरी के माध्यम से भारतीय किसान जीवन की जीवंत झांकी प्रस्तुत की गई है। होरी गोदान उपन्यास का मु□य पात्र ही नहीं, नायक भी है, जो मूलत: किसान है। उपन्यास का प्रारंभ और अंत होरी के इर्द-गिर्द घूमता है। उपन्यास में प्रयुक्त अन्य पात्रों का चारित्रिक विकास भी होरी के बिना अपूर्ण ही माना जाएगा। पात्र चयन में प्रेमचंद ने जन-जीवन की वास्तविकता, निकटता तथा सूक्ष्मता को प्रमुखता प्रदान की। होरी की चारित्रिक विशषताओं का वर्णन निम्नवत् है–

(क) कृषक जीवन का प्रतिनिधि पात्र– होरी पहले किसान है बाद में कुछ और। किसान की सभी विशेषताएं होरी के चरित्र में देखने को मिलती है। ऋण ग्रस्त, परिश्रमी, सहृदयशील, शोषित, संघर्षरत, निर्मल, मर्यादा प्रिय, धर्मशील भाग्यवादी आदि विशेषताएं कृषक जीवन का प्रतिबिंब प्रस्तुत कर देती हैं। पारिवारिक दायित्व का निर्वाह करते हुए होरी अपने प्राण त्यागता है लेकिन कर्तव्य से विमुख नहीं होता।

(ख) परिश्रमी– होरी के जीवन का लक्ष्य परिश्रम करना है। स्वयं निर्धन होकर भी वह परिवार का कुशल संचालन करता है। आर्थिक विषमता के सागर में धनिया के साथ गृहस्थी की नैया पार लगाता है। किसी के आगे निष्कर्म रहकर हाथ फैलाना अच्छा नहीं समझता। खेती करता है, गाय पालता है और परिश्रम करके पेट पालना चाहता है।

(ग) व्यवहारिक– होरी ने व्यवहारपूर्वक जीवन जीना सीखा है। वह मानता है कि जमींदारी से मिल कर रहने का ही फल है कि बड़े-बड़े महतों उसकी इज्जत करते हैं। अपनी मृदुल वाणी

एवं व्यवहारशीलता से वह भोला अहीर को सोचने पर विवश कर देता है। रुपये तो मेरे पास है नहीं। हां भूसा है। भूसे के लिए गाय बेचोगे। होरी भोला अहीर की कमजोरी भांपकर गाय का प्रबंध कर लेता है।

(घ) भाग्यवादी– निरंतर मिलती असफलता एवं लाचारी भाग्यवादिता को दर्शाती है। किसान भाग्यवादी होता है। होरी भी किसान है, उसमें भी भाग्यवादिता के दर्शन स्वाभाविक हैं। उसकी निराशा, 'छोटे-बड़े भगवान के यहां से आते हैं, उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये थे उसका आनंद भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संजोया तो भोगे क्या,' जैसे वाक्यों से प्रकट होती है।

(ङ) मर्यादाशील– होरी मर्यादाप्रिय है। परिवार की मर्यादा को बचाए रखने के लिए पंचायत का दंड सहता है, दरोगा की फटकार सहता है। पंचों के आगे विवश होता है। वह नहीं चाहता कि कोई उसके परिवार पर उंगली उठाए, उस पर कीचड़ उछाले। दमड़ी बसोर द्वारा दुर्व्यवहार किये जाने पर कहता है-''तुम्हारी इतनी मजाल कि मेरी बहू पर हाथ उठाओ...। अलग है तो क्या, है तो एक ही खून।''

(च) संवेदनशील– होरी किसान है। किसान का दिल संवेदनशील होता है। पारस्परिक आदान-प्रदान कर अपना काम निकालने में सौकस रहता है। भाई हीर और शोभा द्वारा उपेक्षित किये जाने पर भी प्रतिकार नहीं करता अपुित मर्यादा का पालन करने के लिए उनके प्रति सहृदयशील रहता है। गोबर द्वारा झुनिया को घर लाने पर समाज के विरोध का सामना भी करता है। साहस का परिचय देकर झुनियाको अपने घर में शरण प्रदान करता है। झुनिया को समझाता हुआ कहता है- ''डर मत बोती, डर मत। तेरा घर तेरा द्वार है, तेरे हम हैं आराम से रह। जैसे तू भोला की बेटी वैसे ही मेरी बेटी है।''

4. जागरूक होता किसान एवं समाज– गोदान में रायसाहब अमरपाल सिंह का चिंतित होना सजग मनुष्य का बोध कराता है। वे भविष्य में होने वाले परिवर्तनों में स्वयं को ढालने के लिए प्रतिबद्ध हो जाते हैं। सामाजिक जन जागृति से प्रभावित होकर जमींदारी प्रथा की समाप्ति की भविष्यवाणी करते हैं- ''बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है।''

(क) स्वस्थ समाज की कल्पना– प्रेमचंद ने गोदान में स्वस्थ समाज की संरचना का स्वप्न देखा, उसे पूर्ण करने का प्रयत्न भी किया। उन्होंने संगठन की शक्ति पर बल दिया क्योंकि एकता द्वारा ही व्यक्ति एवं समाज की सोच बदल सकती है। भोला अहीर होरी से इसी संगठन की बात कहता है-''हमारा शोषण इसलिए होता है, क्योंकि हममें एका नहीं है, हम एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। प्रेम और भाई चारे की भावना समाप्त हो गई है।''

(ख) आक्रोश की अभिव्यक्ति– प्रेमचंद ने गोबर एवं धनिया के माध्यम से शोषित वर्ग के आक्रोश को मुखरित किया है। इसी आक्रोश में आधुनिकता के चिह्न समाहित हैं क्योंकि पहले

वैचारिक मतभेद ही भविष्य के लिए पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। धनिया अपने परिवार के प्रति लगाए गए आरोपों को निराधार बताती है। पंचायत, दरोगा के सामने भी स्वाभिमान के साथ अपना विरोध दर्शाती है। गोबर गांव के सूदखोरों, मपाजनों की सार्वजनिक तौर पर भर्त्सना करता है।

(ग) पलायन की प्रवृत्ति– गोदान उपन्यास कृषकों की दीनता का वर्णन तो करता ही है साथ ही गांवों का शहरों की ओर पलायन करना इस बात का प्रमाण है कि सुख सुविधाओं का अभाव इस प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। गोबर पिता होरी की जी हुजूरी से तंग आकर और महाजनों की निर्मम जीववशैली से त्रस्त होकर ही लखनऊ भागना चाहता है।

(घ) लोकतंत्र के प्रति अनास्था– प्रेमचंद युग दृष्टा थे। युगीन परिस्थितियों से भलीभांति परिचित थे। उनका मानना था कि लोकतंत्र की स्थापना का उद्देश्य जनता एव किसानों की सेवा करना था लेकिन स्वार्थी मनुष्यों ने लोकतंत्र को भी कलंकित कर दिया। इनके कारण जमींदारी, पूंजीपतियों, व्यापारियों का वर्चस्व रहता है जनता का पक्ष उपेक्षित रहता है। इसीलिए उन्होंने लोकतंत्र को जनता की आंखों में धूल झोंकने का माध्यम स्वीकार किया।

कुल मिलाकर गोदान का यथार्थ उसका किसाान जीवन ही है, जिसकी विस्तृत चर्चा हम इस इकाई के 'गोदान' में आदर्श और यथार्थ के अंतर्गत भी करेंगे।

1.4 गोदान में दलित और स्त्री प्रश्न

गोदान में नारी के विविध दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया गया है। एक ओर नारी के परंपरागत रूप का चित्रण हो तो दूसरी ओर आधुनिक स्वाभिमानी नारी का सजीव चित्रण है। प्रेमचंद की दूरदृष्टि से जीवन क कोई पक्ष अछूता न रहा। परतंत्र भारत में नारी द्वारा पुरुषों के समान अधिकार की वकालत करना उनके आधुनिक चिंतन को दर्शाता है। उनके नारी पात्रों में जहां एक ओर त्याग, सेवा, सहानुभूति, कर्तव्य परायणता जैसे गुण विद्यमान थे वहीं दूसरी ओर वे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए कृत संकल्प भी रहती हैं। मानसिक यंत्रणा सहकर भी अपने अधिकार की वकालत करती हैं। धनिया इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। होरी का भाई हीरा की पत्नी की प्रशंसा करता है तो धनिय का प्रतिकार करना नारी जागृति का द्वार खोलता है। दरोगा को अपनी प्रतिक्रिया से अवगत कराती है। पंचों की धूर्तता को उजागर करती है। सिलिया का मातादीन के प्रति समर्पण की भावना में पत्नीत्व का भाव तो है ही साथ ही नारी अस्मिता के लक्षण भी दिखाई देते हैं। गोदान में चित्रित दलित एवं स्त्री समस्याओं को इस प्रकार से देखा जा सकता है–

1.4.1 दलित चेतना

'गोदान' की धनिया एक विद्रोही नारी के रूप में उभरती है जिसका विद्रोह रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के प्रति है। गर्भवती झुनिया को आश्रय देने के कारण गांव में हुक्का-पानी बंद होने की स्थिति आ जाती है किंतु वह विचलित नहीं होती। होरी के दंड भरकर समाज में वापस आने की बात का वह पुरजोर विरोध करती है। वह कहती है, ''हमको कुल प्रतिष्ठा इतनी प्याही

नहीं है महाराज! कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालो। ब्याहता न सही, पर उसकी बांह तो पकड़ी है मरे बेटे ने ही। किस मुंह से निकाल देती।'' इसी तरह 'गोदान' का ब्राह्मण पुत्र मातादीन और हरिजन की बेटी सिलिया एक दूसरे को प्रेम करने लगते हैं और अंत में मातादीन सिलिया को पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता है। तत्कालीन समाज में दलित चेतना का इससे अधिक जीवंत उदाहरण और क्या हो सकता है। दलित चेतना में प्रेमचंद के अन्य उपन्यासं का उल्लेख करना बहुत जरूरी है। उन्होंने जो मुद्दे उठाये वे आज भी प्रासंगिक हैं। प्रेमचंद के समय भारतीय समाज में अंग्रेजी सत्ता की गुलामी और पूंजिवादी शोषण दोनों का बाहुल्य था। अपने साहित्य में उन्होंने इन दोनों को वाणी दी। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद ने दलितों के मंदिर प्रवेश की समस्या को तो उठाया ही, साथ ही दलितों के संगठित होकर संघर्ष करने का व्यापक चित्रण किया है। 'रंगभूमि' की सोफिया धर्मग्रंथों के आधार पर किसी सिद्धांत को मानने को पक्ष में नही है। उसे बाह्याडंबर से घृणा है। वह अपने मत को स्थापित करने के लिए घर से बाहर निकल जाती है। 'प्रेमाश्रम' में अछूतों से बेगार लिए जाने व किसानों द्वारा भी उनसे बुरा व्यवहार किये जाने का चित्रण किया गया है। 'गबन' के दलित पात्र स्वयं को निम्न जाति का न समझ कर जाति गौरव का परिचय देते हैं।

1.4.2 स्त्री चेतना

नारी के सामाजिक जीवन और स्त्री पात्रों के करुण चित्रण ने समाज के बुद्धिजीवियों का इस विषय में पुनर्विचार के लिए प्रेरित किया है।

1. पारंपरिक नारी– समाज का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण वही ही जो पुरुष–प्रधान समाज का रहा है। वे नारी को अपना जरखरीद गुलाम समझते हैं, उसे उस गाय की तरह मानते हैं जिसे किसी भी खूंटे से उसकी इच्छा के विरुद्ध बांधा जा सकता है। होरी, धनिया जैसी उग्र स्वभाव तथा निर्भय स्त्री को भी दबाकर रखना चाहता है। भोला अधेड़ होकर भी दूसरा विवाह कर नवयुवती को दासी की तरह रखना चाहता है। बड़ी जाति का मातादीन चमार जाति की स्त्री सिलिया से यौन–संबंध तो स्थापित कर सकता है पर उसे पत्नी नहीं बनाना चाहता, केवल रखैल के रूप में रखना चाहता है। सोना का पति मथुरा विवाहित और घर में सुंदर पत्नी होते हुए भी सिलिया पर डोरे डालता है। उधर, नगर में खन्ना, पत्नी हुोते हुए भी मालती से प्रेम करता है और गोविंदी के साथ उसका व्यवहार उपेक्षा, उदासीनता तथा क्रूरता का है। मीनाक्षी का पति शराबी, वैश्यागामी तथा विलासी है। अत: वह भी मीनाक्षी के साथ पति का धर्म नहीं निभाता।

इस प्रकार प्रेमचंद ने नारी कीदयनीय स्थिति का चित्रण कर नारी–जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रेमचंद की विशेषता यह है कि उन्होंने धनिया, मीनाक्षी जैसी उग्र स्वभाव वाली स्त्रियों का चित्रण कर तथा 'वीमेन्स लीग' जैसी संस्था की स्थापना और वहां होने वाले कार्यक्रमों

का परिचय देकर स्पष्ट संकेत दिया है कि महिलाओं में भी अधिकारों के प्रति बोध जाग्रत हो रहा था, वे पुरुष के अत्याचारों को मौन रहकर चुपचाप सहने की बजाये विद्रोह करने लगी थी।

2. आधुनिक नारी– गोदान में आधुनिक नारी विचारों से संपन्न नारी का रूप भी देखा गया है। आज भी अधिकांश विवाह माता-पिता के द्वारा तय किये जाते हैं और स्वच्छंद प्रेम को अच्छा नहीं समझा जाता। गोदान में स्वच्छंद प्रेम की परिणति दो प्रकारसे दिखाई गई है- स्वच्छंद प्रेम की परिणति विवाह में। झुनिया विधवा है, दूसरी जाति की है पर गोबर प्रथम दृष्टि में ही उसे प्रेम करने लगता है। दोनों के बीच यौन-संबंध भी हो जाता है। गोबर गांव वालों, गांव की पंचायत और माता-पिता सबसे डरता है। उसे आशंका है कि उनके विवाह को कोई स्वीकार न करेगा, फिर भी वह साहसपूर्वक झुनिया को घर ले आता है। धनिया की उदारता के कारण दोनों का विवाह हो जाता है, परंतु गांव वाले, गांव की पंचायत उसे स्वीकार नहीं करते और होरी को दंड स्वरूप सारा अनाज तथा नकद तीस रुपए देने पड़ते हैं, उन रुपयों के लिए घर गिरवी रखना पड़ता है।

गांव में स्वच्छंद प्रेम का दूसरा उदाहरण मातादीन-सिलिया प्रसंग है। मातादीन ब्राह्मण है, सिलिया चमारिन। दोनों के बीच आकर्षण के बाद यौन-संबंध स्थापित हो जाता है। यहां भी जाति का भय है। मातादीन उतना साहसी नहीं के जितना गोबर। अत: वह सिसिया से विवाह करने को तैयार नहीं होता। गांव के नवयुवको द्वारा विवश किये जाने पर, उसके मुंह में हड्डी डालकर चमार बनाने के दुस्साहस के बाद ही वह सिलिया को पत्नी रूप में अपनाता है।

नगर में स्वच्छंद प्रेम के उदाहरण हैं- सरोज तथा रायसाहब के बेटे रुद्रपाल का प्रणय-संबंध, मालती-मेहता का परस्पर प्रेम। रुद्रपाल पिता के तर्क-वितर्क, लाभ-हानि की बातों पर ध्यान न देकर सरोज से विवाह करने के दृढ़ संकल्प पर डटा रहता है। मालती-मेहता के मार्ग में कोई बाधा नहीं, फिर भी प्रेमचंद की आदर्शवादिता उन्हें विवाह-बंधन में नहीं बंधने देती। मेहता के आलिंगन-पाश का सुख भोग कर, उनकी गृहस्थी का सार बोझ संभालने के बाद भी मातली उनसे विवाह नहीं करती।

3. विभिन्न पात्रों के माध्यम से नारी समस्याओं का चित्रण– धनिया गोदान उपन्यास की मु□य नायिका है। नायक के साथ नायिका के रूप में धनिया ही उपयु**क्त** ठहराती है। उपन्यास के प्रारंभ से लेकर अंत तक धनिया अपनी चारित्रिक विशेषताओं से आकर्षित करती है। धनिया होरी की पत्नी के साथ भारतीय कृषक की स्त्री भी है। भारतीय नारी का आदर्श रूप हमें धनिया के रूप में देखने को मिलता है। तिल-तिलकर जीवन जीने को मजबूर है लेकिन पति (होरी) को बीच मझदार में छोड़कर चले जाना उसके जीवन का स्वभाव नहीं है। धनिया की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन नि**म्न**वत् हैं-

(क) मु*ख्य* पात्र–गोदान उपन्यास में मालती, गोविंदी, धनिया, झुनिया आदि स्त्री पात्रों में सर्वाधिक प्रभावित करने वाला स्त्री पात्र धनिया ही है। अन्य नारी पात्र धनिया के चरित्र को सुदृढ़

आधार प्रदान करते हैं। वह अंदर से त्रस्त और विवश होने पर भी बाह्य रूप में तेजस्वी, अधिकारों के प्रति सजग नारी के रूप में सामने आती है।

(ख) आदर्श पत्नी– धनिया होरी की आदर्श पत्नी है। पतिव्रत धर्म का सफल निर्वाह करती है। सुखद स्थिति के साथ विषम परिस्थिति में भी साथ नहीं छोड़ती। अवसरानुकूल प्रतिकार को व्यक्त कर अपने दायित्व का परिचय देती है। पंचायत का दंड सहती है। परिवार से उपेक्षा सहती है। लेकिन कर्तव्य से विमुख नहीं होती। होरी की मृत्यु उपरांत धनिया का अचेत होकर गिरना आदर्श पत्नी के रूप को प्रतिबिंबित करता है।

(ग) संवेदनायुक्त– धनिया ने नारी सुलभ हृदय भी पाया। किसी की कातर पुकार को सुनकर उसके हृदय में संवेदना झलकने लगती है। झुनिया को असहाय स्थिति में देखकर पति (होरी) से विनम्र रहने को कहती है, साथ ही घर में आश्रय प्रदान कर सहृदयशीलता का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

(घ) ममतामयी– धयिा ममतामयी भावना से ओत-प्रोत है। अपने परिवार के प्रति ममता से पूर्ण व्यवहार का परिचय देती है। उसे गोबर के किये पर पछतावा है लेकिन (होरी) को पाकर गद्‌गद् हो जाती है। उसकी मधुर स्मृतियां उसे रह-रहकर सताती है। उसका सूना खटोला देखकर व्यथित होती है।

(ङ) ओजस्वी व्यक्तित्व– धनिया के चरित्र में जहां एक ओर संवेदना एवं सहृदयशीलता का सागर उमड़ता है, वहीं समय-समय पर अपने ओजस्वी विचारों से प्रतिकार करती है। होरी की सदासयता को देखकर कभी-कभी विरोध व्यक्त करती है। झुनिया को घर में पनाह देने के प्रसंग पर उसके ओजस्वी विचार देखने योग्य हैं-''पंचों गरीब को सताकर सुख न पाओगे।'' दातादीनकोो फटकारती हुई कहती है- ''बिगड़ेंगे तो एक रोटी-बेसी खा लेंगे और क्याा करेंगे। कोई उनकी दबैल हूं।'' दातादीन द्वारा भिखारी कहे जाने पर अपना आक्रोश व्यक्त करती है- ''भीख मांगो तुम, जो भिखमंगो की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे। वही काम करेंगे, चार पैसे पाएंगे।''

1.5 महाकाव्यात्मक उपन्यास के परिप्रेक्ष में गोदान

गोदान उपन्यास को महाकाव्य के लक्षणों पर परखने से पूर्व महाकाव्य की विशेषताओं को जानना आवश्यक है। सामान्यतया महाकाव्य के लिए महान कथानक, श्रेष्ठ पात्रों का चयन, श्रृंगार वीर और शांत रस में से किसी एक की समग्रता तथा विशिष्ट उद्देश्य का होना आवश्यक है।

उपन्यास कला के तत्वों में कथानक, पात्र एवं चरित्रचित्रण, संवाद, कथोपकथन, देशकाल, वातावरण, उद्देश्य को गिना जाता है। उपन्यास कला एवं महाकाव्य की विशेषताओं में वर्ग भेद की उपेक्षा साम्य अधिक दिखाई देता है। इन्हीं तत्वों के आधार पर गोदान को परखना आवश्यक है।

(क) व्यापक कथानक– गोदान उपन्यास का कथानक विस्तार की गरिमा से पूर्ण है। गोदान की कथा में लगभग 80 प्रतिशत अंश ग्रामीण परिवेश से संबंधित हैं। होोरी, धनिया, भोला अहीर, हीरा, दुलारी, सहुआइन, मातादीन, दातादीन, झुनिया, पटेश्वरी, झिंगुरी सिंह, नोहरी, नोखेराम आदि के कथानक का भाग ग्रामीण परिवेश से संबंधित है। मालती, मेहता, खन्ना तन्खा, खुर्शीद से संबंधित कथा नारी जीवन को चरितार्थ करती है। इनके द्वारा प्रेम के स्वरूप का विवेचन, चुनाव तथा पड़ताल आदि नारी जीवन से संबंधित हैं। रायसाहब अमरपाल सिंह ग्रामीण व शहरी जीवन की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। गोदान उपन्यास का कथानक व्यापक परिवेश को अपने कलेवर में समेटे है। होरी समस्त कृषकों का प्रतिनिधि पात्र है। उसकी समस्याएं केवल उसी की नहीं अपितु समस्त किसानों की समस्याएं हैं।

(ख) पात्र और चरित्र चित्रण– पात्रों की अधिकता को देखकर गोदान उपन्यास की तुलना लियो टॉल्सटॉय के 'वार एंड पीस' से की जाती है। जिस प्रकार पाच सौ पात्रों की संरचना के लिए 'वार एंड पीस' महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है ठीक उसी प्रकार लगभग सौ पात्रों के विमोचं के फलस्वरूप गोदान को भी महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा जाता है। गोदान में प्रयुक्त पात्र ग्रामीण, शहरी, शोषक-शोषित जमींदार, किसान, साहूकार, कारकुन, दारोगा, पटवारी, मिल मालिक, संपादक आधुनिक शिक्षित, लड़कियां, प्रोफेसर आदि वर्ग अपनी-अपनी विशिष्टताओं के लिए विख्यात है। पात्रों में गतिशील व स्थिर दोनों वर्गों का प्रतिनिधित्व किया गया है। मुख्य पात्र और गौण पात्रों द्वारा कथानक को क्रमबद्धता प्रदान की गई है। होरी उपन्यास का मुख्य नायक और धनिया मुख्य नायिका के रूप में चित्रित हैं। होरी कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। धनिया भारतीय नारी का आदर्श रूप प्रस्तुत करती है। मालती आधुनिक नारी का प्रतीक है जो अविवाहित रहकर सेवाभाव द्वारा जीवनयापन करती है। दुलारी सहुआइन, नोहरी, रायसाहब अमरपाल सिंह, दरोगा, पटवारी आदि सभी शोषक के रूप में सामने आते हैं। प्रेमचंद ने अमरपाल सिंह द्वारा मनुष्य की कथनी और करनी का अंतर स्पष्ट किया है। गोदान में केवल किसान ही नहीं हैं। गांधीवादी दर्शन भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। गोदान में प्रयुक्त पात्र जीवंतता के प्रतीक हैं। वर्ग पात्रों की बहुलता दिखाई देती है।

प्रेमचंद ने उपन्यस को मानव-चरित्र का चित्र कहकर पात्र योजना एवं चरित्र-चित्रण की भावना को प्रमुखता प्रदान की है। उनके पात्र अपनी वैयक्तिक विशेषताओं से ओत-प्रोत हैं।

गोदान उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों पर दृष्टिपात करें तो उनमें वर्गीय, गतिशील पात्रों का स्वरूप सामने आता है। प्रेमचंद की अवधारण चरित्र-चित्रण की भावना को स्पष्ट कर देती है। श्रेष्ठ चरित्र के लिए वे पत्र का निर्दोष होना आवश्यक मानते हैं, साथ ही चारित्रिक त्रुतियों की उपेक्षा करना बड़ी भूल मानते हैं। प्रेमचंद का मानना है कि मनुष्य परिस्थितिवश त्रुटियां करता है लेकिन उसका पश्चाताप करना उससे भी अधिक श्रेष्ठता का परिचायक होता है। गोदान उपन्यास में स्वाभाविक व सजीव स्थिति उत्पन्न करने के लिए पात्र योजना को विशिष्टता से युक्त रखा गया है। उपन्यास में प्रयुक्त पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर युगीन परिस्थिति से अवगत कराता है। उन्होंने युगीन व्यवस्था, परंपरा, रूढ़ि को खलनायक के रूप में चित्रित कर चरित्र-चित्रण को उपेक्षा का शिकार नहीं होने दिया। गोदान उपन्यास में शहरी, ग्रामीण, स्थिर, गतिशील पात्रों का प्रयोग कर चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन किया गया है।

गोदान उपन्यास में चरित्र-चित्रण द्वारा प्रेमचंद ने वैयक्तिक दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है। चरित्र-चित्रण ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण, युगीन परिस्थितियों, चारित्रिक विशेषताओं, आदर्श की प्रतिष्ठा, यथार्थ की व्यंजना, सहानुभूति, संवेदना की व्यंजना, वर्गीय विशेषताओं, ग्रामीण परिवेश की प्रस्तुति, मानवतावादी दृष्टिकोण की प्रस्तुति, स्वस्थ समाज की संरचना द्वारा पात्र-योजना को महत्व प्रदान किया है।

गोदान उपन्यास में प्रयुक्त पात्रों में होरी, धनिया, गोबर, झुनिया, नोहरी नोखेराम, मातादीन, सिलिया, मेहता, मालती, खन्ना, गोविंदी, ओंकारनाथ आदि पात्र अग्रामीण परिवेश को मुखरित करते हैं। उनके चरित्र में अवसरवादिता, चाटुकारिता, शोषण का समर्थन, भविष्योन्मुखी जीवन दृष्टि, संतान के प्रति चिंता, सामंती व्यवस्था के पोषक आदि विशेषताएं देखने को मिलती हैं। गोबर युवा वर्ग का प्रतिनिधि पात्र हैं। उसका आक्रोशयुगीन परिवेश एवं वातावरण को चरितार्थ करता है। उस का स्पष्ट कथन पंचों की झूठी कलई खोलकर रख देता है। उसके द्वारा गांव छोड़कर शहर भाग जाने में शोषण की झलक मिलती हैं। उसमें आत्मनिर्भर प्रवृत्ति के गुण विद्यमान है। वह अधिकारों के प्रति जागरूक, संवेदनशील है। पिता को मरणासन्न अवस्था में पाकर पश्चाताप की भावना व्यक्त करता है। अपनी गलती को स्वीकार करना गोबर केव्यक्तित्व की महानता का सूचक है। मालती का चरित्र आधुनिक नारी का प्रतीक है। वह विवाह को बंधन मानकर स्वच्छंद रहना श्रेष्ठ समझती है। उसका ऐसा करना नारी स्वतंत्रता का परिचायक है। वह शिक्षित वर्ग का प्रतीक है। अपनी बौद्धिक क्षमता से युगीन परिप्रेक्ष में अपने विचारों को अवगत कराती है। संपादक ओंकारनाथ को उनकी कथनी और करनी में अंतर का आभास कराकर चिंतन के लिए विवश करती है। अपनी सेवा भाव द्वारा पाठक के गले का हार बनती है। अपने परिवार का पालन-पोषण कर उत्तरदायित्व का बोध कराती है। वह पाश्चत्य गुणों से युक्त होने पर तितली

नजर आती है। शराब पीना, रसिक पुरुषों के साथ रहना इसका प्रमाण है। मेहता का संपर्क उसके तितली स्वरूप को दर्शाता है। पनी विलक्षण प्रतिभाओं के कारण पाठक के मनमस्तिख, पर अमिट प्रभाव छोड़ने में सक्षम हैं। इससे नगरी तथा ग्रामीण परिवेश मुखरित हो उठा है। होही, धनिया के अतिरिक्त रायसाहब अमरपाल सिंह, मालती, प्रो. मेहता तथा गोबर गोदान उपन्यास में सहायक तथा गौण पात्रों की भूमिका निभाते हैं। रायसाहब अमरपाल सिंह शहरी व

(ग) रस की व्यंजना– रचना की प्रसिद्धि का मूल कारण प्रयुक्त रसों की व्यंजना है। गोदान में सभी रसों का चित्रण देखने को मिलता है। महाकाव्यात्मक अभिव्यक्ति के लिए श्रृंगार, वीर और शांत में से किसी एक रस की व्यंजना आवश्यक है। गोदान में भी होरी–धनिय, गोबर–झुनिया, मातादीन–सिलिया, मालती–मेहता, नोहरी–नोखेराम के संबंधों में श्रृंगार रस कार चित्रण देखने को मिलता है। धनिया, गोबर द्वारा रौद्र रस कार प्रतिपाद किया गया है। होरी की मृत्यु करुण रस का वातावरण प्रस्तुत कर देती है। विभिन्न रसों द्वारा लेखक ने कथानक को क्रमबद्धता तथा घटना–विस्तार को जीवंतता प्रदान की है। धनिया द्वारा झुनिया के पुत्र के प्रति लगाव में वात्सल्य रस देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए हास्य रस का चित्रण देखा जा सकता है।

'तुम्हारे बाप का क्या नाम है?'
'मातादीन'

'और तुम्हारी मां का?'
'छिलिया'
'और दातादीन कौन है?'
'वह अमाला छाला है।'

(घ) युगबोध की अभिव्यक्ति– रचना की जीवंतता युगबोध पर आश्रित होती है। गोदान उपन्यास का रचना काल 1936 का है। यह समय परतंत्र भारत का था। राजनैतिक क्षितिज पर अस्थिरता का वातावरण था। स्वदेश प्रेम की भावना का दौर था। जनसामान्य में शोषकों के प्रति आक्रोश का वातावरण था। युवा वर्ग युगीन परिप्रेक्ष में विश्व घटनाक्रम से लाभान्वित हो रहाथा। गोदान उपन्यास में वन, नगर और ग्राम की झांकी के दर्शन होते हैं। वन कन्या द्वारा आदिवासियों की सादगी का वर्णन किया गया है। समेरी और बेलारी गांव से ग्रामीण परिवेश की दरिद्रता, सादगी, शोषण व दयनीयता दृष्टव्य है। मालती, मेहता, खन्ना, मिर्जा, तन्खा आदि पात्रों द्वारा शहरी जीवन अभिव्यक्त हुआ है। उपन्यास में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक जीवन प्रतिबिंबित हुआ है। गोबर द्वारा युवा वर्ग के आक्रोश को व्यक्त कर आधुनिकता का बोध कराया गया है।

(ङ) महान उद्देश्य– गोदान उद्देश्य परक रचना है। प्रेमचंद ने गोदान द्वारा कृषक जीवन का बिंब प्रस्तुत किया है। गोबर द्वारा संयुक्त परिवार के विघटन एवं एकाकी परिवार को महत्व

प्रदानकर भविष्य बोध से युक्त किया है। गांधीवाद की अपेक्षा समाजवाद को महत्व प्रदान किया गया है। रूढ़ियो, अंधविश्वासों का चित्रण कर भोली जनता की निस्वार्थ भावना को दिखाया गया है। नारी जीवन की दयनीय स्थिति के साथ विद्रोह एवं क्रांति को प्रस्तुत किया गया है। हिंसा का विरोध कर अहिंसा का पालन करके मानवतावादी भावना को प्रोत्साहित किया गया है। साहित्यकार की दायित्व भावना का वर्णन किया गया है। गोदान में प्रेमचंद की व्यवहरिक भावना का चित्रण मिलता है। प्रेम, सेवा, परोपकार, त्याग, स्नेह,एवं सहानुभूति के साथ मंगल कामना का प्रतिपादन करना ही गोदान उपन्यास का मूल उद्देश्य है। गोदान का उद्देश्य भारत के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जिस पर भारत की 80 प्रतिशत जनता निर्भर करती है।

1.6 गोदान में आदर्श और यथार्थ

'गोदान' उपन्यास को पढ़कर प्रेमचंद की आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को जाना जा सकता है। इस संबंध में तीन दृष्टिकोण देखने को मिलते हैं- प्रथम, प्रेमचंद आदर्शवादी थे दूसरा प्रेमचंद यथार्थवाी थे और तीसरा, प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी थे। सत्य कहा जाए तो प्रेमचंद ने तीनों विचारधाराओं का सफल निर्वाह किया है। स्वयं प्रेमचंद का इस संबंध में विचार था कि- वही उपन्यास उचच कोटि के समझे जाते हैं जहां यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। आप उसे आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है। 'सेवासदन' भी उनकी आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को व्यंजित करता है। 'रंगभूमि' उपन्यास में राष्ट्रीय जागरण एवं राजनीतिक वातावरण का चित्रण किया गया है। 'गोदान' प्रेमचंद का वह महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसमें तीनों दृष्टिकोणों का यथासंभव निर्वाह किया गया है।

1.6.1 गोदान में चित्रित यथार्थ

'गोदान' उपन्यास में यथार्थ का मणिकंचन प्रयोग पात्रों की रंगशाला द्वारा चित्रित किया गया है। उनके पात्र आदर्श और यथार्थ का समन्वय बनाकर जीवन जीते हैं। उनकी यथार्थ योजना की पुष्टि के लिए होरी, धनिया, सिलिया तथा शोषक के रूप में दरोगा, अमरपाल सिंह, दातादीन, रामसेवक, गोबर, भोला आदि पात्र यथार्थ को मुखरित करते हैं।

(अ) कृषक जीव का यथार्थ- गोदान में होरी भारतीय कृषक का प्रतिनिधि पात्र है। वह किसानों की विशेषताओं से युक्त है। वह जहां एक ओर महाजन से ब्याज की एक कौड़ी छुटाने के लिए घंटों चिरौरी कर सकता है वहीं व्यवहार कुशल भी है। उसकी इच्छा है कि कभी उसके द्वारा किसी का अहित न हो, इसीलिए वह अंतत: मजदूर बनकर भी संतुष्ट है क्योंकि उसने किसी का गला नहीं काटा, किसी को धोखा नहीं दिया फिर भी उसकी खून पसीने की कमाई को शोषक

लूट-खसोट कर छीन लेना चाहते हैं। पुलिस के शोषण का चित्र देखकर शोषण की भयानकता का अनुमान लगाया जा सकता है- ''मैं पंद्रह मिनट का समय देता हूं। अगर इतनी देर में पूरे पचास रूपये न आए तो तुम चारों के घर तलाशी होगी और गंडा सिंह को जानते हो। उसका मारा पानी भी नहीं मांगता।'' किसानका जीवन किन-किन झमेलों से जूझता है उसका आभास हम होरी के द्वारा भलीभांति जान सकते हैं। हरी की भाग्यवादिता में लाचारी है, युगीन व्यवस्था एवं शोषण से त्रस्त दिल की पुकार सुनाई पड़ती है- ''छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। संपत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है, उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किये हैं उनका आनंद भोग रहे हैं हमने कुछ नहीं सोचा तो भोगें क्या।'' किसानों के शोषण का कारण उसकी रूढ़िवादी भावना, संस्कार एवं संगठन का अभाव है। पारस्परिक वैमनस्य है इसीलिए बैल बनकर जमींदारों के हल में जुतते हैं। भोला कहता है- ''कौन कहता है हम तुम आदमी हैं। हममें आदमियत कहां। आदमीवह है जिसके पास धन है, अख्तियार है, इल्म है। हम लोग तो बैल हैं और जुतने के लिए पैदा हुए हैं। उस पर एक दूसरे को देख नहीं सकते। एका का नाम नहीं।'' गोदान में शोषण का स्वरूप हमें स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। होरी का जीवन पर्यन्त संघर्ष, पारिवारिक विघन व द्वेष, गाय की लालसा, जमींदारों, साहूकारों, महाजना[की शोषक प्रवृत्ति, मारपीट, दरोगा की धमकियां, रिश्वत, पंचायत, बिरादरी का आतंक हुक्क। पानी बंद होना, गोबर झुनिया की प्रेम योजना, शहर पलायन, गांव के प्रपंच, अंध-विश्वास, बेटियां के विवाह की चिंता, दाने-दाने का अभाव, कर्ज लेने की विवशता आदि स्वरूप कृषक जीवन की दास्तां का बखान करते हैं। बेचारा अभागा किसान भाग्य की विवशता मानकर सब सह लेता है, मुंह से 'उफ' तक नहीं करता। महाजन द्वारा रुपये उधार दिए जाने पर पहले ही पेशगी स्वरूप ब्याज में काट लिया जाता है। नजराना, तहरीर,कागज, दस्तूरी आदि माध्यमों से शोषक को जिंदा रखा जाता है। जला भुना किसान शेष रुपये भी वापस कर देता है कि एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने क, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपकी क्रिया करम के लिए। होली के अवसर पर किया गया स्वांग शोषण का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत कर देता है।

(ब) नारी जीवन का यथार्थ- वैवाहिक जीवन की सफलता की सूत्रधार स्त्री है। इसीलिए नारी को पूजायोग्य मानकर गुणगान किया गया है। गोदान उपन्यास में स्त्री के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। वह पुत्री, प्रेमिका, पत्नी, सेविका व रखैल आदि रूपों में पाटक के सामने आती है। होरी के रूपा और सोना दो पुत्रियां हैं। परिस्थितिवश रूपा का विवाह अधेड़ रामसेवक से करा दिया जाता है। जो निर्धनता का दुष्परिणाम है। गोबर भोला अहीर की विधवा पुत्री झुनिया को अपनाता है जिसका परिणाम घर छोड़ने के रूप में सामने आता है। धनिया भी पुत्र को क्षमा कर देती है लेकिन झुनिया के प्रति ईर्ष्या रखकर नारी के प्रति विरोध को दर्शाती है जिससे वैधव्य

जीवन के यथार्थ का बोध होता हा। मालती सेवा भाव द्वारा समाज में सभी के आकर्षण का केंद्रबिंदु बनती है। उसका मानना है कि वैवाहिक बंधन सेवाभाव को अवरूद्ध कर देता है। प्रेमचंद ने सिलिया द्वारा नारी की स्थिति का आकलन किया है। मातादीन सिलिया को पत्नी का सम्मान न देकर मशीन समझता है। नोहरी द्वारा अनाज दिए जाने पर मातादीन का क्रोध सिलिया की स्थिति का बोधकरा देता है। प्रेमचंद ने इसी यथार्थ को इन शब्दों में व्यक्त किया है- ''सिलिया अब उसकी निगाह में केवल काम करने की मशीन थी और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बड़े कौशल से नचाचा रहता था।'' ब्राह्मण वर्ग की स्वार्थ भावना का चित्रण झुनिया और मातादीन के प्रसंग में देखने को मिलता है। झुनिया को अपनी हवस का शिकार बनाने के लिए मातादीन धर्म का सहारा लेता है। भगवान पूछेंगे, ''मैंने तुम्हें इतना रूपधन दिया था, तुमने उससे एक ब्राह्मण का उपकार भी नहीं किया।'' प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है कि नारी को केवल वासना का शिकार बनाना ब्राह्मण वर्ग की विकृति को दर्शाता है।

(स) नगर जीवन का यथार्थ- प्रेमचंद ने गोदान उपन्यास में ग्रामीण एवं नगर संस्कृति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। उपन्यास में समेरी और बेलारी गांव से समस्त ग्रामीण परिवेश साकार हो उठा है। गांव में जिस प्रकार पारस्परिक झगड़े हैं, उससेअधिक नगरों में स्वार्थपरता और संकीर्णता के दर्शन होते हैं। नगरों में प्रत्येक तथ्य को पैसे ले तोला जाता है। संबंधों का आधार भी पैसों की वास्तविकता पर टिका होता है। मित्रता का आधार भी पैसों पर टिका होता है। जब रायसाहब अमरपाल सिंह चुनाव के लिए मि. खन्ना से बैंक से पैसे निकालने को कहते हैं तो खन्ना अपने कमीशन का पहले वर्णन कर देता है- पहले आप कमीशन बतला दें क्योंकि बिजनेस इज बिजनेस। रायसाहब का मानना है कि अससी राजा तो हमारे बैंकर हैं। आज संसार का शासन सूत्र बैंकरों के हाथ में है। सरकार भी इनके हाथ का खिलौना है।

(द) दान धर्म का यथार्थ- नगरों में दान धर्म का कार्य भी स्वार्थवश किया जाता है। भिखारी भीख मांगते थक जाता है लेकिन फूटी कौड़ी नहीं पाता जबकि लोग धर्मशालाओं, पाठशालाओं व व्यायामशालाओं में दान देकर अपना नाम व स्वार्थ सिद्ध करना चाहतैहैं। प्रेमचंद व्यायामशालाओं को उचित नहीं मानते क्योंकि इनके माध्यम से अनाचार व व्यभिचार की प्रवृत्ति पनपती है। इनके द्वारा लड़के व लड़कियों में दुराचारी भावना बढ़ने की संभावना रहती है। प्रेमचंद के शब्दों में- ''यह व्यभिचारशाला है जो विश्वविद्यालय की लड़कियों को जमा करके विहार करने के लिए होगी।''

1.6.2 गोदान में चित्रित आदर्श

प्रेमचंद ने 'सेवासदन' द्वारा जिस आदर्शवाद को पल्लवित किया वह आगे परिस्थितिवश भले ही क्षीण हो गया हो लेकिन समाप्तनहीं हुआ था। 'गोदान' में प्रेमचंद का आदर्शवादी स्वरूप मुखरित हुआ है। उनका मानना है कि ज्ञान का उपयोग रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों को समाप्त करने में प्रयुक्त हो न कि कूपमंडूक बनकर ज्ञान को सीमित करने में। बाह्म आवरण आज भले ही पात्र को अपने परिवेश में विलय कर ले, लेकिन वे सत्य के आलोक से ओझल नहीं हो सकते। उन्होंने अपने आदर्शवाद को पल्लवित करने के लिए, मातृत्व, संवेदना, वैवाहिक जीवन, सेवाभाव तथा मृत्यु के क्षण को भी आदर्श के रंग में रंग डाला।

(अ) नारी का आदर्श– प्रेमचंद की दृष्टि में नारी का आदर्श त्याग, बलिदान सेवाभाव में समाहित है। नारी जीवन की सार्थकता मातृत्व के बिना पूर्ण नहीं होती। उसकी सूनी कोख समाज में अपशकुन का प्रतीक मानी जाती है। धनिया में मातृत्व की गरिमा का भंडार समाहित है। गोबर की त्रुटि को स्वीकार कर और झुनिया को घर में आश्रय प्रदान कर धनिया आदर्श मां के स्वरूप का बखान करती है। गर्भवती झुनिया को देखकर धनिया केवल अपना क्रोध ही नहीं त्यागती अपितु होरी से भी विनम्र रहने को कहती है। उसी झुनिया के लिए समाज का तिरस्कार सहती है। पंचायत का दंड भी भरने को तैयार हो जाती है। दरोगा जब घर की तलाशी लेना चाहता है तो दरोगा को दो टूक शब्दों में कह देती है– ''महरिया रख लेना पाप नहीं, रखकर छोड़ देना पाप है।'' स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में– ''मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और महान विजय है।''

(ब) वैवाहिक जीवन का आदर्श– वैवीहक जीवन भी आदर्शवाद का सान्निध्य पाकर फलीभूत होता है। मातादीन स्वयं विवाहित होकर भी सिलिया को अनुमति नहीं देता, सिलिया शारीरिक यातना सहती है,पति की उपेक्षा सहती है लेकिन मातादीन का साथ छोड़ना नहीं चाहती, क्योंकि उसने मातादीनका हाथ पकड़ा है तो जीवनभर निभाने की प्रण भी किया है। सिलिया के इन वचनों में वैवाहिक जीवन का आदर्श छिपा है– ''वह चाहे मुझे भूखों रखे चाहे मार डाले, पर उसका साथ न छोडूंगी। उसकी सांसत कराके छोड़ दूं? मर जाऊं पर हरजाई न बनूंगी। एक बार जिसने बांह पकड़ ली, उसी की रहूंगी।'' प्रेमचंद सिलिया द्वारा यह सिद्ध करना चाहते हैं कि नारी का समर्पण किसी एक के लिए होता है, चाहे उसे सुख मिले या दु:ख। इसमें वैवाहिक जीवन की पवित्रता एवं सुदृढ़ता का बोध होता है। साथ ही महिलाओं की स्वच्छंद प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। सिलिया अपनी इसी प्रतिज्ञा को परिपक्व करने के लिए मां की निर्दयता सहती हैं, भाइयों द्वारा प्रताड़ित होती है। प्रेमचंद सिलिया के रूप में समस्त नारियों के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं कि वैवाहिक जीवन का सफल निर्वाह करना ही नारी जीवन का मूल उत्स है।

दुलीरू सहुआइन, जो शोषक की प्रतीक है, प्रेमचंद ने उसे भी सहृदयता, संवेदना जैसे गुणों से पूर्ण कर आदर्शवाद को सुदृढ़ किया है। होरी की विवशता को देखकर वह द्रवित हो जाती है और सोना के विवाह के लिए रुपया देने को तैयार हो जाती है।

भोला अहीर की पत्नी नोहरी स्वयं नोखेराम की रखैल होकर भी संवेदनाहीन नहीं है। जो कभी होरी को अपना शत्रु समझती थी उसके साथ समधी-समधन के रिश्तों को सफलतापूर्वक निभाती है। रूपा के विवाह के लिए सहायता करने को तैयार हो जाती है। मालती द्वारा अविवाहित रहकर सेवाभाव की भावना का पालन करना आदर्शवाद का प्रतीक है। उसका मानना है कि विवाह का बंधन सेवाभाव की भावना को अवरुद्ध कर देता है।

प्रेमचंद ने होरी की मृत्यु को आदर्शवाद के रूप में प्रस्तुत कर दिखाया है कि पश्चाताप की भावना से मन का मैल समाप्त हो जाता है। मृत्यु के समय होरी को जो आत्मिक शांति प्राप्त हुई वह किंचित मनुष्यों को प्राप्त होती है। गोबर वापस आ जाता है। हीरा भाई के पैरों में पड़कर माफी मांग लेता है। होरी को मौत भी भयभीत नहीं कर पाती। उसके चेहरे की खुशी झलकती है। उसे जीते जी भले ही शांति न मिली, लेकिन मृत्यु के समय उसे संतोष व शांति प्राप्त हो गई। संघर्षों से भले ही वह टूट गया हो, लेकिन मृत्यु पर उसने विजय प्राप्त कर ली। उसकी आंखों के सामने ही परिवार की अस्मिता बच गई। जीवन की अधूरी साध पूर्ण हो गई। प्रो. मेहता द्वारा आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई है। वे नारी को परंपरागत रूप में देखने के समर्थक है। गोविंदी उनकी आदर्शवादी भावना को पुष्ट करती है। प्रो. मेहता के कहने पर पुनः अपने घरवापस आ जाती है। अपने उजड़ने घर को देखकर पति को सही रास्ते पर लाकर न केवल अपने पतिव्रत धर्म का पालन करती है अपितु भारतीय नारियों के लिए आदर्श का स्वरूप प्रस्तुत करती है।

(स) लोक कल्याण का आदर्श- 'गोदान' उपन्यास में लोक कल्याण की भावना देखने को मिलती है। मनुष्य की पहचान उसके चारित्रिक गुणों से की जाती है। सिलिया भले ही मातादीन की निगाह में मशी हो लेकिन सिलिा की दृढ़प्रतिज्ञा के सामने मातादीन भी पश्चाताप करने पर बाध्य होता है। मालती का अविवाहित रहकर सेवा के दायित्व का सफलतापूर्वक निर्वाह करना लोक कल्याण का श्रेष्ठ उदाहरण है। स्वयं प्रेमचंद का मानना था कि- सच्चा आनंद और सच्ची शांति केवल सेवा व्रत में है। दाम्पत्य जीवन की सफलता का स्रोत सेवाभाव ही होता है। सेवाभाव ही समाज में व्याप्त अन्याय, आतंक और भय को समाप्त करने की प्रेरणा प्रदान कर बुद्धिजीवी वर्ग को उत्तरदायित्वके प्रति प्रेरित करता है।

1.7 गोदानका भाषा शिल्प

प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा यथार्थपरक, पात्रों के अनुकूल तथा देशकाल की स्थिति के अनुरुप है। उनकी भाषा कथा के प्रवाह, पात्रों की योजना तथा वातावरण की सृष्टि- सभी में पूरा योग देती है। संवादों की भाषा में तो देशकाल का रंग है, और पात्रों की रूपरेखा प्रस्तुत करने में भी लेखक की भाषा देशकाल से प्रभावित और परिवेश के वर्णन के सर्वथा अनुरूप है।

प्रेमचंद की भाषा में सजीवता और रोचकता तो है ही,करारा व्यंग्य तथा तीखी चोट भी भाषा की विशेषता है। इनकी शैली विविधता लिए हुए है। कहीं तो विवरणात्मक है और कहीं विश्लेषणात्मक। जहां पर गहन चिंतन है, वहां पर तो भाषा गंभीर और तत्सम शब्द- प्रधान है, लेकिन अन्यत्र स्वाभाविक सरल और हिंदी-उर्दू मिश्रित है। 'गोदान' में भी प्रेमचंद जी की भाषागत विविधता दृष्टिगोचर होती है। इसमें गंभीर चिंतन के समयभाषा स्पष्टत: विचार प्रधान है, फिर भी वहां सरलता का गुण सहज ही विद्यमान है, यथा-

''उनका मानव-प्रेम इस आधार पर अवलंबित न था कि प्राणी-मात्र में एक आत्मा का निवास है। द्वेत और अद्वेत का व्यापारिक महत्व के सिवा वह और कोई उपयोग न समझते थे और यह व्यापारिक महत्व उनके लिए मानव-जाति को एक-दूसरे केसमीप लाना, आपस के भेद भाव को मिटाना और मातृ-भव को दृढ़ करना ही था। यह एकता, यह अभिन्नता उनकी आत्म में इस तरह जम गई थी कि उनके लिए किसी आध्यात्मिक आधार की सृष्टि उनकी दृष्टि में व्यर्थ थी। यश, लोभ या कर्तव्य पालन के भाव उनके मन में आते ही न थे। इसकी तुच्छता ही उन्हें इनसे बचाने के लिए काफी थी।''

उनके ग्रामीण पात्रों की भाषा में आंचलिकता का प्रभाव है तो मुसलमान पात्रों की भाषा में उर्दू की रवानगी है। पढ़े-लिखे पंडित की भाषा में तत्सम शब्दों की बहुलता है। वहीं अंग्रेजी शब्दों की बहुलता प्रो. मेहता की भाषा में देखने को मिलती है। ''मेहता- देवियों! मैं उन लोगों में नहीं हूं जो कहते हैं स्त्री व पुरुष में समान शक्तियां हैं, समान प्रवृत्तियां हैं और उनमें कोई विषमता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यह वह असत्य है जो युग-युगांतर से संचित अनुभव को उसी तरह ढक लेना चाहता है जैसे बादल का टुकड़ा सूर्य को ढक लेता है।''

धनिया की भाषाका उदाहरण देखिए- ''पंचों, गरीब को सताकर सुख न पाओगे, इतना समझ लेना कौन जाने इस गांव में रहें या न रहें लेकिन मेरा सराप तुमको जरूर लगेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीमाना इसलिए लिया जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को क्यों अपने घर में रखा।''

'गोदान' की शैली में विविधता है। प्रेमचंद की शैली की प्रमुख विशेषता मुहावरों का प्रयोग है। इससे भाषा में प्रवाह आ गया है। शैली को सशक्त और रोचक बनाने के लिए प्रेमचंद ने लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया है। गोदान में होरी विधुर भोला से कहता है- ''पुरानी मिसल झूठी थोड़े हैद 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' सूक्तियों का प्रयोग भाषा शैली को और अधिक सुबोध एवं सशक्त बना देता है, जैसे- 'संपत्ति और सहृदयता में बैर है'।''

अलंकारों का प्रयोग भाषा के सौंदर्य को और अधिक बढ़ा देता है। गोदान में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, मानवीकरण आदि अनेक अलंकारों का सुंदर प्रयोग हुआ है। प्रेमचंद साधारणत: छोटे-छोटे वा**क्य** पसंद करते थे। 'गोदान' की भाषा में ग्रामीण कृषकों का जीवन साकार हो उठा है। कई स्थलों पर तो वह इतनी मार्मिक बन पड़ी है कि आंखें भर आती हैं। प्रेमचंद की भाषा की विशेषताओं के कारण उनके उपन्यास बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

गतिविधि

अपने आस-पास के ग्रामीण क्षेत्र में जाकर किसानों की समस्याओं की जानकारी लेकर स्थानीय समाचार पत्रों के लिए लेख लिखिए

क्या आप जानते हैं ?

प्रेमचंद प्रारंभ में 'धनपत राय' के नाम से लिखते थे। उनके अभिन्न मित्र मुंशी दयानारायण निगम ने उन्हें प्रेमचंद नाम से लिखने की सलाह दी थी, तब से वे इसी नाम से लिखने लगे।

1.8 सारांश

गोदान उपन्यास की प्रस्तुत व्या**ख्या**एं कथानक का सार तत्व प्रस्तुत करती हैं जिसमें युग बोध की झांकी के साथ ग्रामीण परिवेश में कृषक जीवन, उनकी गरीबी, जमींदरों की कथनी और करनी का अंतर, आपसी वैमनस्य, व्यवस्था के प्रति आक्रोश, दा**म्प**त्य जीवन के विविध रूपों, पुरुषों और स्त्रियों के अलग-अलग रूपों का चित्रण, वर्ग वैमनस्य, आर्थिक संघर्ष, पाश्चात्य संस्कृति, संयु**क्त** परिवार आदि कई ज्वलंतशील मुद्दों पर लेखक ने बहुत सदहृदयता से अपने विचार प्रस्तुत किये हैं जो इस काल के सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक वातावरण से बहुत समानता रखते हैं। गोदान को पढ़ने के पश्चात ही यह समझ में आता है कि प्रेमचंद आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी भावना को मानने वाले हैं। जीवन के कटु यथार्थ को प्रस्तुत कर प्रेमचंद में बुद्धिजीवियों को चिंतन के लिए विवश किया है और पृष्ठभूमि पर लिखा गया कृषक जीवन का महाकाव्य माना जाता है जिसमें सिसकते किसानों की आह सुनाई देती है और जिसमें शोषकों का क्रूर स्वरूप मुखरित होता है। गोदान महाकाव्यात्मक गरिमा से यु**क्त** है। मरीत बेलारी की कथा समस्त भारतीय किसानों की व्यथा का चित्रण है। रसों के सफल निष्पादन की झांकी है। विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति करने में सक्षम 'गोदान' आधुनिक युग बोध को दर्शाता है। गोदान चरित्र चित्रण की दृष्टि से लिओ टॉलस्टॉय के 'वाप एंड पीस' के समान महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति माना जाता है। उपन्यास में प्रयु**क्त** पात्रों में वर्गीय भावना, युगीन परिदृश्य, घटना चक्र, मनोवृत्तियों का सफल चित्रण देखने

को मिलता है। होरी कृषक वर्ग का, धनिया भारतीय नारी के आदर्श का, गोबर युवा वर्ग के आक्रोश का तो मेहता आदर्श के साथ यथार्थ का और मालती संवेदना का मार्ग प्रशस्त करती है। पात्रों के माध्यम से समाज की झांकी देखने को मिलती है।

अंततः हम यह कह सकते हैं कि गोदान अपने सीमित केलवर में संपूर्ण भारतीय कृषकों का बिंब तथा राजनैतिक घटनाक्रमों की झांकी प्रस्तुत करता है। शहरी और ग्रामीण संस्कृति का दिग्दर्शन कराता है और लोक कल्याण की भावना प्रस्तुत करता है। पश्चातप की भावना द्वारा मनुष्य के निर्मल व्यक्तित्व का वर्णन करता है। कर्म की प्रधानता एवं प्रेमभाव का समर्थन करने के कारण ही गोदान आधुनिकता की विशेषताओं को चरितार्ता करने में सक्षम है। नारी, समाज का वह बिंदु है जिस पर परिवाक के साथ समाज और राष्ट्र का अस्तित्व निर्भर करता है।

1.9 मुख्य शब्दावली

- **लत्ता :** कपड़ा।
- **जैजात :** संपत्ति।
- **वख्तर :** आवरण, कवच।
- **अधम :** नीच।
- **साध :** इच्छा।
- **इल्म** : ज्ञान।
- **प्रबुद्ध** : शिक्षित।
- **संचा :** एकत्र किया।
- **दबैल** : दबा हुआ।

1.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. कृषक
2. होरी ने झुनिया को
3. होरी
4. गोबर एवं धनिया
5. परंपरागत एवं आधुनिक
6. धनिया
7. वीमेन्स लीग
8. सारा अनाज और नकद तीस रुपये
9. व्यापक एवं विस्तृत

10. मानव-चरित्र का चित्र

11. वैयक्तिक

12. भारतीय कृषक जीवन का बिंब प्रस्तुत करना

13. जमींदारों के

14. व्यभिचारशाला

15. सबसे बड़ी साधना, तपस्या और त्याग

16. सेवा व्रत में

17. सजीवता एवं रोचकता

18. आंचलिकता

19. अंग्रेजी भाषा

20. मुहावरेदार होना

1.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. 'गोदान' उपन्यास के आधार पर पोही का चरित्र-चित्रण कीजिए।
2. 'गोदान' उपन्यास में किसान जागरूकता के उदाहरणों का विश्लेषण कीजिए।
3. 'गोदान' में उठाए गए दलित प्रश्नों की समीक्षा कीजिए।
4. 'गोदान' के आधार पर होरी का चरित्र-चित्रण कीजिए।
5. मालती की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
6. 'गोदान' में आधुनिकता के कौन-कौन से लक्षण हैं ?

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. 'भारतीय किसान जीवन के प्रति संवेदना गोदान उपन्यास के अस्तित्व का मूल कारण है।' इस कथन के परिप्रेक्ष में गोदन में प्रस्तुत ग्रामीण परिवेश का चित्रण कीजिए।
2. गोदान में प्रस्तुत स्त्री चेतना का विस्तार से विवेचन कीजिए।
3. गोदान उपन्यास की महाकाव्य के गुणों की कसौटी पर समीक्षा कीजिए।
4. गोदान में पात्र योजना की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. गोदान उपन्यास की वास्तविक झांकी प्रस्तुत की गई है, सिद्ध कीजिए।
6. 'गोदान का आदर्श आंतरिक वेदना के दमन का आदर्श है।' इस मत के पक्ष प्रतिपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

1.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ रामविलास शर्मा, *प्रेमंचंद और उनका युग,* राजकमल प्रकाशन।
- ए. अरविंदाक्षण, *प्रेमचंद के आयाम,* राधाकृष्ण प्रकाशन।
- परमानंद श्रीवास्तव, *उपन्यस का पुनर्जन्म,* वीणा प्रकाशन।
- मधुरेश, *हिंदी उपन्यास का विकास,* लोकभारती प्रकाशन।
- राजेश्वर गुरु, *गोदान,* राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- प्रेमचंद, *गोदान : एक परिचय,* रस्तोगी बुक्स, खुरजा।
- इंद्रनाथ मदान, *प्रेमचंद एक विवेचन,* आत्माराम एंड संस प्रकाशन, दिल्ली।
- विनोद शंकर व्यास, *प्रेमचंद की उपन्यास कला,* शिक्षा सदन, बनारस।

इकाई आधे-अधूरे (मोहन राकेश)

2.0 परिचय

मोहन राकेश ने 1969 में आधे-अधूरे नाटक का प्रणयन किया। स्वातंत्र्योत्तर भारत के मध्यवर्गीय समाजमें व्यक्ति के संघर्ष, टूटते परिवार, तनाव एवं द्वंद्व को जीवंत करने वाला यह अद्भुत नाटक है। स्त्री-पुरुष के मन की अतृप्ति एवं अधूरापन उन्हें किस तरह पथभ्रष्ट करता है तथा रिश्तों में आई दरार और पतित होते युवा वर्ग को दर्शाकर मोहन राकेश मध्यवर्गीय परिवार की जीवंत झांकी प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात हुए सबसे महत्वपूर्ण नाटटकारों में मोहन राकेश का नाम नये हिंदी नाटक की सुदृढ़ नींव रखने वालो में लिया जा सकता है किंतु जहां तक उनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रवृत्तियों का प्रश्न है, निस्संकोच हम कह सकते हैं कि वे अत्यंत सूक्ष्म है। मोहन राकेश के तीन पूरे तथा एक अधूरे (पैरों तले जमीन) नाटकों में से दो 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'आधे-अधूरे' 'ट्रैंड-सैटर' कहे जा सकते हैं। 'आषाढ़ का एक दिन' (1985) में व्यंग्य बहुत ही सूक्ष्म है।

जनवरी 1969 में प्रकाशित मोहन राकेश का नाटक 'आधे-अधूरे' पारिवारिक जीवन की एक बहुत बड़ी ट्रैजेडी को अंकित करता है। यह ट्रैजेडी न्यूनाधिक रूप में अनेक लोगों की है। इस नाटक के सावित्री और महेंद्र स्वयं में बहुत बड़े व्यंग्य बन गए हैं। सावित्री पौराणिक सावित्री से विपरीत है जो दूसरा पति पाने के प्रयास में संलग्न है। महेंद्रनाथ अपने नाम के ठीक विपरीत लुंज-पुंज व्यक्तित्व वाला चरित्र है। वैसे तो सभी प्राणी किसी न किसी रूप में आधे-अधूरे होते हैं। नायिका सावित्री भी ऐसी ही है किंतु दूसरों के अधूरेपन पर विशेषत पति और बच्चों के अधूरेपन पर वह खीझती है। यहां व्यंगएक बिल्कुल अलग अंदाज लेकर सामने आया है। 'आधे-अधूरे' वस्तुत: लेखक का स्वयं पर किया गया व्यग्य है। सावित्री जैसे खुद मोहन राकेश का परिवर्तित अहं (आल्टर ईगो) बन गई है। 'आधे-अधूरे' की ट्रैजेडी अतिरंजित रूप में ही सही हमारी सामाजिक मानसिकता पर किया गया व्यंग्य है। समाज के अभिन्न अंग के नाते स्त्री और पुरुष मूलत: एक दूसरे के पूरक होते हैं किन्तु पश्चिमी प्रभावों के कारण एक नयी विकृति भारतीय समाज में प्रतिफलित होती दिखाई देती है। वह है स्त्री-पुरुष के बीच निरन्तर बढ़ता हुआ अविश्वास। स्त्री पुरुष को सुविधाएँ जुटाने वाला साथी मानने लगी है और पुरुष नारी को दैहिक संबंधों तक सीमित करने लगा है। सनातन पुरुष और सनातन नारी आपस में मिल ही नहीं पाते। 'आधे-अधूरे' का यह व्यंग्य समाज पर है जिसके अंग स्त्री-पुरुष दोनों है। जब शरीर ही विकृत है तो अंग कैसे स्वस्थ होंगे। समाज में विकसित मानसिकता से अभिशप्त उसके सदस्य जब आत्म-

केन्द्रित और असामाजिक बनते हैं तो समाज शब्द ही विकृत अथवा अर्थहीन हो जाता है। आज यही विडंबना विकसित होती दिखाई दे रही है। इस इकाई में 'आधे-अधूरे' नाटक की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- मोहन राकेश रचित 'आधे-अधूरे' नाटक को महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर पाएंगे;
- 'आधे-अधूरे' में विद्यमान आधुनिक मध्यवर्गीय परिवार के अभावों एवं संगर्ष से परिचित हो पाएंगे;
- प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक की समीक्षा कर पाएंगे;
- 'आधे-अधूरे' के कथानक एवं पात्रों के चरित्रों की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- 'आधे-अधूरे' में चित्रित युगबोध को परिभाषित कर पाएंगे;
- अभिनेयता की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' नाटक का आकलन कर पाएंगे;
- रंगमंच की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' की भाषा-शैली का मूल्यांकन कर पाएंगे

2.2 पात्र परिचय एवं व्या□याएं

सर्वप्रथम आधे-अधूरे के पात्रों का परिचय देना आवश्यक है क्यों□कि नाटक का समस्त घटनाक्रम इन पात्रों के इर्द-गिर्द घूमता है।

2.2.1 पात्र-परिचय

पुरुष एक - महेंद्रनाथ (सावित्री का पति)
पुरुष दो - सिंघानिया
पुरुष तीन - जहमोहन
पुरुष चार - जुनेजा
स्त्री - सावित्री
बड़ी लड़की - बिन्नी
छोटी लड़की - किन्नी ... सावित्री एवं महेंद्रनाथ के तीन बच्चे
लड़क - अशोक

पुरुष एक के रूप में महेंद्रनाथ : पतलून-कमीज। जिन्दगी से अपनी लड़ाई हार चुकने की छटपटाहट लिये। पुरुष दो के रूप में सिंघानिया पतलून और बन्द गले का कोट। अपने आपसे संतुष्ट, फिर भी आशांकित। पुरुष तीन के रूप में जगमोहन-पटलून-टीशर्ट। हाथ में सिगरेट का डिब्बा। लगातार सिगरेट पीता। अपनी सुविधा के लिए जीने का दर्शन पूरे हाव-भाव में। पुरुष चार

के रूप में जुनेजा पतलून के साथ पुरानी काट का ल□बा कोट पहने। चेहरे पर बुजुर्ग होने का खासा अहसास। काइयांपन।

स्त्री : उम्र चालीस को छूती। चेहरे पर यौवन की चमक और चाह फिर भी शेष। ब्लाउज और साड़ी साधारण होते हुए भी सुरुचिपूर्ण।

बड़ी लड़की : उम्र बीस से ऊपर नहीं। भाव में परिस्थितियों से संघर्ष का अवसाद और उतावलपन। कभी-कभी उम्र से बढ़कर बड़प्पन। साड़ी : मां से साधारण : पूरे व्यक्तित्व में एक बिखराव।

छोटी लड़की : उम्र बाहर और तेरह के बीच। भाव, स्वर चाल-हर चीज में विद्रोह, फ्रॉक चुस्त, पर एक मोजे में सूराख।

लड़का : उम्र इक्कीस के आस-पास। पतलून के अंदर दबी भड़कीली बुश्शर्ट धुल-धुलकर घिसी हुई। चेहरे से, यहां तक कि हंसी से भी, झलकती खास तरह की कड़वाहट।

2.2.2 व्याख्या

1. पुरुष एक : वह छः महीने बाहर रहकर आया है। हो सकता है, कोई नया कारोबार चलाने की सोच रहा हो जिसमें मेरे लिए...

स्त्री : तुम्हारे लिए तो नहीं क्या-क्या करेगा वह जिन्दगी में। पहले ही कुछ कम नहीं किया है। इतनी गर्द भरी रहती है हर वक्त इस घर में। पता नहीं कहां से चली आती है।

पुरुष एक : तुम नाहक कोसती रहती हो उस आदमी को। उसने तो अपनी तरफ से हमेशा मेरी मदद की है।

स्त्री : न करता मदद, तो उतना नुकसान तो न होता जितना उसके मदद करसे से हुआ है।

पुरुष एक : (कुढ़कर सोफे पर बैठता) तो नहीं जाता मैं। अपने अकेले के लिए जाना है मुझे। अब तक तकदीर ने साथ नहीं दिया तो इसका यह मतलब तो नहीं कि...।

स्त्री : यहां से उठ जाओ। मुझे झाड़ लेने दो जरा। उस कुर्सी पर चले जाओं, वह साफ हो गयी है। (बड़बड़ाती) पहली बार प्रेस में जो हुआ सो हुआ। दूसरी बार फिर क्या हो गया? वही पैसा जुनेजा ने लगाया, वही तुमने लगाया। एक ही फैक्टरी लगी, एक ही जगह जमाखर्च। फिर भी तकदीर ने उसका साथ दे दिया, तुम्हारा नहीं दिया।

पुरुष एक : (गुस्से से उठता है) तुम तो ऐसी बात करती हो जैसे...।

स्त्री : खड़े क्यों हो गए?

पुरुष एक : क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता?

स्त्री : (हलका वकफा लेकर तिरस्कारपूर्ण स्वर में) हो तो सकते हो, पर घर के अंदर ही।

संदर्भ – प्रस्तुत संवाद मोहन राकेश के नाटक आधे-अधूरे से लिया गया है।

प्रसंग – यहां पुरुष एक के रूप में महेंद्रनाथ तथा स्त्री के रूप में उसकी पत्नी सावित्री के बीच जुनेजा नामक मित्र को लेकर तीखी झड़प हो रही है जिसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या – महेंद्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री से कहता है कि उसका मित्र जुनेजा जो कारोबार के सिलसिले में बाहर गया था, छह महीने बाद लौटकर आया है। हो सकता है कि वह किसी नये कारोबार के संबंध में कोई योजना बना रहा हो मेरे लिए भी लाभदायक हो, तो मैं उससे मिलने जा रहा हूँ। सावित्री-जुनेजा से नफरत करती है वह सोचती है कि जुनेजा अपने अन्य सहयोगियों के साथ मिलकर उसके पति से काम काम निकलवाता है, उसका शोषण करता है और उसे ऐसी शिक्षा देता है कि वह अपने घर-परिवार को महत्व न दे। सावित्री का मानना है कि जब कारोबार में लाभ देता है तो उसे जुनेजा रखता है और उसके पति को बराबर का हिस्सेदार होने पर भी उसका हिस्सा नहीं मिलता। इसलिए वह जुनेजा से मिलने जाते हुए पति व्यंग्य करती है कि जाओ उसे देने के लिए पैसे नहीं है, बेरोजगार बैठे हो तो कम से कम उसे मुंह तो दिखा ही सकते हो। महेंद्रनाथ कहता है, तुम उस आदमी से बेवजह चिढ़ती हो, उसने मेरी बहुत मदद की है। सावित्री बातें करते हुए कुर्सियां साफ करती जाती है और बड़बड़ाती है कि इस घर में इतनी गर्द हर वक्त भरी रहती है, पता नहीं कहां से आती है? यह गर्द घर में चौबीसों घंटे चलने वाले कलह और तनाव का प्रतीक है। सावित्री कहती है कि जुनेजा तो तुम मददगार कहते हो लेकिन उससे अगर मदद न की होती तो अच्छा होता, उसके मदद करने से अधिक नुकसान हुआ है। महेंद्रनाथ कुढ़ता हुआ बैठ जाता है और कहता है, मैं अपने लिए उसके पास नहीं जा रहा था। किसी व्यवसाय की बात करने जा रहा था ताकि तुम सब के लिए कुछ कर सकूं। पहले जो भी नुकसान हुआ, भाग्य का लिखा, था वही घटा। सावित्री कहती है - पहली बार प्रेस में जो हुआ उसे भाग्य माना जा सकता है लेकिन दूसरी बार तो सरासर बेईमानी थी। एक ही फैक्टरी थी, तुम दोनों ने बराबर पैसा लगाया। फिर तकदीर ने उसका साथ दिया तु□हारा नहीं, यह कैसे हो सकता है। व ह झाड़न से कुर्सी साफ करती हुई महेंद्र के पास पहुंचती है तो वह खड़ा हो जाता- वह कहती है- खड़े क्यों हो गए? वह चिढ़ कर कहता है - क्यों, मैं खड़ा नहीं हो सकता? तब सावित्री व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहती है - तुम केवल घर के अंदर खड़े हो सकते हो, बाहर नहीं। अर्थात् तुम घर में पुरुषार्थ का प्रदर्शन करते हो लेकिन बाहर जाकर हर बात में जुनेजा का सहारा लेते हो, स्वयं निर्णय लेने की शक्ति तुममें नहीं रहती। पत्नी-पति के बीच की बहस को राकेश जी ने जीवंत प्रस्तुति दी है।

2 स्त्री : वजह का पता तुम्हें होगा या तुहारे लड़के को। वह भी तीन-तीन दिन दिखायी नहीं देता घर पर।

पुरुष एक : तुम मेरा मुकाबला उससे करती हो?

स्त्री : नहीं, उसका मुकाबला तुमसे करती हूँ। जिस तरह तुमने ख्वार की अपनी जिन्दगी, उसी तरह वह भी...।

पुरुष एक : और लड़की तुम्हारी? उसने अपनी जिन्दगी ख्वार करने की सीख किससे ली है? मैंने तो कभी किसी के साथ घर से भागने की बात नहीं सोची थी।

स्त्री : (एकटक उसकी आंखों में देखती) तुम कहना क्या चाहते हो?

पुरुष एक : कहना क्या है... जाकर चाय बना लो, पानी हो गया होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – इस दृश्य में पति-पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर छींटाकशी कर रहे हैं।

व्याख्या – सावित्री अपने पति महेंद्रनाथ से कहती है कि अब जुनेजा बाहर से लौट आया है तो फिर पहले की ही तरह बिना बताएं तुम तीन-तीन दिन के लिए घर से बाहर उसके साथ रहोगे ही। महेंद्रनाथ सफाई देते हुए कहता है कि मैं अगर बाहर रहता हूँ तो उसका कोई कारण होता है, तुम जानती हो। सावित्री कहती है - कारण मैं नहीं जानती, तुम जानते हो या तुहारा बेटा क्योंकि वह भी घर से बिना बताए तीन-तीन दिन तक बाहर रहना सीख गया है। यह शिक्षा तुहारी ही है जिस पर चल कर वह तुहारी तरह ही अपनी जिन्दगी बर्बाद कर लेगा। सावित्री का आरोप सुनकर महेंद्रनाथ तिलमिला जाता है और कहता है - तुम मेरी बराबरी उस लड़के से कर रही हो? अर्थात् बेटा तो बच्चा है, गैर जिम्मेदार है, आवारागर्दी करता है और तुम उससे मेरी बराबरी कर रही हो। सावित्री कहती है- नहीं, तुम्हारी बराबरी उससे नहीं, उसकी बरबरी तुमसे कर रही हूँ क्योंकि वह भी तुम्हारी तरह बर्बादी की राह पर चल रहा है। महेंद्रनाथ कुढ़ जाता है और कहता है - ठीक है बेटा मेरी तरह बर्बाद हो रहा है लेकिन बेटी के संबंध में तुम्हारी क्या है? वह भी तो तुम्हारे पद-चिह्नों पर चल रही है। मैंने बेटे को यह नहीं सिखाया कि किसी लड़की को लेकर भाग जा। तुम्हारी बेटी किसी लड़के के साथ माग गई, उसे यह शिक्षा कहां से मिली? सावित्री तिलमिलाकर सवाल पूछती है तो महेंद्रनाथ विवाह खत्म करने की दृष्टि से कहता है- इस संबंध में कुछ नहीं कहना है, जो हे, तुम जानती हो।

जाओ चाय बनाकर लाओ।

प्रस्तुत अंश में बाहरी दबावों और परिस्थितिजन्य कुंठा से ग्रस्त पति-पत्नी के संबंध का संकेत हैं, साथ ही पूरे परिवार की व्यक्तिगत जटिलताओं तथा पारस्परिक संबंधों का भी। आधुनिक समाज के अंतर्विरोधीं और विसंगतियों का भी। मोहन राकेश ने नाटक में आम आदमी की छवि को आम आदमी के तेवर, भाषा एवं लहजे में उभारा है।

3.पुरुष एक : हांऽऽ, सिंघानिया, तो लगवा ही दगा जरूर। इसीलिए बेचारा आता है यहं चलकर।

स्त्री : शुक्र नहीं मानते कि इतना बड़ा आदमी, सिर्फ एक बार कहने भर से।

पुरुष एक : मैं नहीं शुक्र मनाता? जब-जब किसी नये आदमी का आना-जाना शुरू होता है यहां, मैं हमेशा शुरू मनाता हूँ। पहले जगमोहन आया करता था। फिर मनोज आने लगा था।

स्त्री : (स्थिर दृष्टि से उसे देखती) और क्या-क्या बातें रह गयी हैं कहने को बाकी? वह भी कह डालो जल्दी से।

पुरुष एक : क्यों... जगमोहन का नाम मेरी जबान पर आया नहीं कि तुम्हारे हवास गुम होने शुरू हुए?

स्त्री : (गहरी वितृष्णा के साथ) जितने नाशुक्रे आदमी तुम हो, उससे तो मन करता है कि आज ही मैं...।

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - महेंद्रनाथ सावित्री और उसके बॉस सिंघानिया के बीच संबंधों को संदिग्ध दृष्टि से देखते हुए सावित्री पर व्यंग्य कर रहा है।

व्याख्या - सावित्री कहती है, कि सिंघानिया आने वाला है, वह मेरा बॉस है, बड़ा आदमी है लेकिन इतना भला है कि मेरे एक बार कहने पर ही घर आ रहा है। मैंने उसे इसलिए बुलाया है कि उससे संबंध बन जाएं तो वह लड़के की कहीं नौकरी लगवा देगा इसलिए तुम सब लोग उसके आने पर उसका स्वागत करो, उससे मिलो। महेंद्रनाथ व्यंग्यात्मक अंदाज में कहता है- हां, बेचारा सिंघानिया लड़के की नौकरी लगवाने के लिए ही तो यहां आता है, और कुछ नहीं। वैसे भी जिस नये व्यक्ति का घर में आना जाना आरंभ होता है मैं शुक्र ही मानता हूँ कि चलो एक और बड़ा आदमी इस घर में आने लगा। पहले जगमोहन आता था, फिर मनोज और सिंघानिया। सावित्री तिलमिलाकर कहती है और भी जो-जो कहना है कहा डालो क्योंकि तुम अहसानफरामोश हो, मैं जिसको भी बुलाती हूँ तुम लोगों के भले के लिए बुलाती हूं ताकि बड़े लोगों से संबंध बनाकर कुछ लाभ इस घर के लिए कमा सकूं। लेकिन तुम्हारी आरोप वाली बातें सुनकर तो लगता है

कि... सावित्री बात अधूरी छोड़ देती है लेकिन उसका आशय स्पष्ट है कि तुम संदेह करते हो तो मन करता है कि आज ही यह घर और तुम्हें छोड़कर उस आदमी अर्थात् सिंघानिया के साथ चली जाऊं।

4 बड़ी लड़की : वजह सिर्फ वह हवा है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।

पुरुष एक : (उस और देखकर) क्या कहा... हवा?

बड़ी लड़की : हां, हवा।

पुरुष एक : (निराश भाव से सिर हिलाकर, मुंह फिर दूसरी तरफ करता) यह वजह बतायी है इसने... हवा।

स्त्री : (बड़ी लड़की के चेहरे को आंखों से टटोलती) मैं तेरा मतलब नहीं समझी।

बड़ी लड़की : (उठती हुई) मैं शायद समझा नहीं सकती (अस्थिर भाव से कुछ कदम चलती) किसी दूसरे को तो क्या, अपने को भी नहीं समझा सकती। (सहसा रुककर) ममा, ऐसा भी होता है क्या कि...?

स्त्री : कि?

बड़ी लड़की : कि दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक-दूसरे से अजनबी महसूस करें।

स्त्री : तुम दोनों ऐसा महसूस करते हो?

बड़ी लड़की : कम से कम अपने लिए तो मैं कह सकती हूँ।

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - बड़ी लड़की बिन्नी अपने पति के घर से अचानक मायके आ गई है। सावित्री और महेंद्रनाथ को संदेह है कि यह बार-बार पति ले लड़ कर यहां आती है, इसलिए वे उससे अचानक आने का कारण पूछते हैं और बिन्नी अपने अंदाज में उत्तर देती है।

व्याख्या - सावित्री पूछती है कि बिन्नी से - ऐसी क्या वजह है कि तू बार-बार पति को छोड़कर यहां भाग आती है। विवाह तो तूने उसके (मनोज) के साथ भागकर अपनी इच्छा से किया है फिर क्या समस्या है। माता-पिता द्वारा तय किए गए रिश्तों से समस्या हो सकती है क्योंकि लड़का-लड़की एक दूसरे को पहले से जानते नहीं है लेकिन बिन्नी ने मनोज के साथ भागकर शादी की, फिर क्या वजह है कि वह उसे छोड़कर यहां आए। बिन्नी कहता है -मनोज से उसे शिकायत नहीं। वह अच्छा पति है, प्रेमी है उसका ध्यान रखता है लेकिन कुछ है हमारे बीच कि हम कुछ देर साथ रहने के बाद असहज हो जाते हैं। हमारे बीच से गजरने वाली 'हवा' ही वह वजह है अर्थात् हमारे बीच का कुछ अनजाना सा तत्व। वह मां से कहती है कि क्या ऐसा होता है

कि दो लोग जितना अधिक एक-दूसरे के साथ रहें, एक हवा में सांस ले उतना ही ज्यादा वे एक-दूसरे के लिए अजनबी बनते जाते हैं। मां पूछती है क्या तुम दोनों ऐसा अनुभव करते हो? बिन्नी कहती है- कम से कम मैं तो करती हूं। तात्पर्य यह कि पहले दूर-दूर रहकर दो लोग एक दूसरे के प्रति आकर्षित तो होते हैं किंतु एक दूसरे के व्यक्तित्व को परिपूर्णता में नहीं जानते, साथ रहने पर दो व्यक्तित्व आपस में टकराते हैं जिसके कारण वे एक-दूसरे से दूर होते जाते हैं। बिन्नी इसी द्वंद्व से गुजर रही है।

प्रस्तुत अंश में व्यक्तित्वों की टकराहट और अंतर्संबंधों की जटिलता को एक गहरी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दिखाया गया है। व्यक्ति संबंध निभाना भी चाहता है लेकिन अपनी व्यक्तिगत सत्ता, अपनी अस्मिता से समझौता भी नहीं करना चाहता। आज के समाज के आधुनिक व्यक्ति की यही विसंगति है। मोहन राकेश ने अपने नाटकों में व्यक्ति संबंधों की इसी जटिलता को बड़ी बारीकी से उभारा है।

5. **बड़ी लड़की :** पर कौन सी अड़चन? उसके हाथ में छलक गयी चाय की प्याली, या उसके दफ्तर से लौटने में आधा घंटे की देर-ये छोटी-छोटी बातें अड़चन नहीं होती, मगर अड़चन बन जाती है। एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है और मैं इन्तजार में रहती हूँ जैसे कि कब कोई बहाना मिले जिससे उसे बाहर निकाल लूं। और आखिर...। आखिर वह सीमा आ जाती है जहां पहुंचकर वह निढाल हो जाता है।

ऐसे में वह एक ही बात कहता है।

स्त्री : क्या

बड़ी लड़की : कि मैं इस घर से ही अपने अंदर कुछ ऐसी चीज लेकर गयी हूँ जो किसी भी स्थिति में मुझे स्वाभाविक नहीं रहने देती।

स्त्री : (जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो) क्या चीज?

बड़ी लड़की : मैं पूछती हूं क्या चीज, तो उसका एक ही जवाब होता है।

स्त्री : वह क्या?

बड़ी लड़की : कि इसका पता मुझे अपने अंदर से इस घर के अंदर से चल सकता है। वह कुछ नहीं बता सकता।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – उपर्युक्त अंश एक आधुनिक विवाहिता स्त्री की दुविधा, उसकी अस्मिता और उससे की जाने वाली अपेक्षाओं के द्वंद्वों को व्यक्त करता है और टूटते हुए परिवारों की विसंगति को भा। प्रस्तुत व्याक्यांश में परिवार की बड़ी पुत्री जो पति का घर छोड़कर आ गई है, मां से अपनी मन:स्थिति व अपने पति के बीच में आई दूरी का जिक्र कर रही है। लेखक ने यहां इसकी मानसिकता को माता-पिता के व्यक्तिगत संबंधों में आई दरारों और परिवार की कुंठाओं और क्लेश से भी जोड़ा है। सावित्री अपनी बेटी बिन्नी से कहती है कि अगर तुम अपने पति के साथ रहते हुए भी अजनबी जैसा अनुभव करती हो तो इसके पीछे कोई अड़चन होगा। तब बिन्नी उत्तर देती है।

व्याख्या – बिन्नी सावित्री से कहती है कि कोई अड़चन या बाधा ऐसी नहीं है जिसके कारण हम पति-पत्नी के बीच के संबंध असहज हो जाते हैं। उसके हाथ से चाय छलक जाए या वह द□तर से आधा घंटा देर से आए ये तो छोटी-छोटी बातें हैं, ये अड़चन नहीं होती, लेकिन बन जाती है, जिसका कारण मैं हूं। इन छोटी-छोटी बातों को भी बहाना बनाकर मैं अपने भीतर का गुबार निकालती रहती हूँ क्योंकि कोई कारण न होने पर भी मेरे भीतर एक गुबार सा हर वक्त भरा रहता है और मैं बहाना या मौका ढूंढती रहती हूं कि कब अपनी भड़ास मनोज पर निकालू और अंतत: जब उसकी कोई कमी नजर नहीं आती तो ऐसे छोटे-छोटे कारणों को लेकर ही मैं उस पर बरस पड़ती हूं। वह समझाता है लेकिन अंतत: वह भी थककर हथियार डाल देता है, लेकिन ऐसे अवसरों पर वह यही कहता है कि – इसमें मेरी कोई गलती नहीं है – मेरे परिवेश की है कि मैं इस घर यानी मायके से ही कोई ऐसी चीज लेकर गई हूं जो किसी भी स्थिति में मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती। सावित्री को धक्का लगता है जैसे किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो क्योंकि वह जानती है कि आज जो उसका दामाद है, बीते कल में उसका मित्र या प्रेमी था और वह उसकी असंतुष्ट प्रवृत्तिको जानता है। शायद यह अतृप्ति या असंतुष्टि ही वह चीज है जो न मुझे सहज रहने देती थी न उसकी बेटी की। लेकिन वह अपने मनोभाव छिपाकर पूछती है कि मनोज किस चीज का जिक्र करता है। बन्नी कहती है- मुझे पता नहीं, मनोज भी नहीं बताता। कहता है कि चीज जो तुम्हें सहज, स्वाभाविक, नहीं करने देती उसका पता तुम्हें अपने अंदर से यानी अपने भीतर झांकने से या अपने घर के संबंध में सोचने पर मिल सकता है। क्योंकि हर मनुष्य यह जानता है कि वह क्या है।

6. **बड़ी लड़की :** **क्यों**कि मुझे नहीं लगता है कि... कैसे बताऊं, **क्या** लगता है? वह जितने विश्वास के साथ यह बात कहता है, उससे मुझे अपने से अजब सी चिढ़ होने लगती है। मन करता है... मन करता है, आसपास की हर चीज को तोड़-फोड़ डालूं। कुछ ऐसा कर डालूं जिससे...।

स्त्री : जिससे?

बड़ी लड़की : जिससे उसके मन को कड़ी-से-कड़ी चोट पहुंचा सकूं। उसे मेरे ल**म्बे** बाल अच्छे लगते हैं। इसलिए सोचती हूं, इन्हें जाकर कटा जाऊं। वह मेरे नौकरी करने के हक में नहीं है। इसलिए चाहती हूँ, इन्हें जाकर कटा आऊं। वह मेरे नौकरी करने के हक में नहीं है। इसलिए चाहती हूं कहीं भी, कोई भी छोटी-मोटी नौकरी ढूंढ़कर कर लूं। कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह अंदर से तिलमिला उठे। पर कर मैं कुछ भी नहीं पाती और जब नहीं कर पाती, तो खीझकर...।

स्त्री : यहां चली आती है?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – मनोज जब हर बार बिन्नी से कहता है कि वह अपने घर से कोई ऐसी चीज लेकर आई है जो उसे स्वाभाविक, सहज नहीं रहने देती तो बिन्नी खिन्न होकर जो प्रतिक्रिया व्य**क्त** करती है उसका चित्रण किया गया है।

व्याख्या – सावित्री बिन्नी से कहती है कि तुम मनोज से **क्यों** नहीं पूछती कि वह किस चीज के संबंध में बात कर रहा है। त तब बिन्नी कहती है कि मुझे नहीं लगता कि मनोज गलत कह रहा है **क्यों**कि मुझे भी ऐसा लगता है कि कुछ है ऐसा मेरे भीतर जो मुझे सहज वातावरण में भी सहज नहीं रहने देता। वह जितने विश्वास से यह बात कहता है उस पर अविश्वास करने का प्रश्न ही नहीं उठता बल्कि मुझे अपने-आपसे चिढ़ होने लगती है। लगता है अपने आस-पास की हर चीज नष्ट कर दूं, तोड़-फोड़ दूं कुछ ऐसा करूं कि मनोत दुखी हो, परेशान हो, उसके मन को चोट पहुंचे। वह भी मेरी तरह असहज हो जाए तो मुझे चैन मिले। मैं हर काम उसकी इच्छा के विरुद्ध करना चाहती हूं ताकि वह चिढ़े, दुखी हो। उसे मेरे ल**म्बे** बाल पसंद है इसलिए चाहती हूं इन्हें कटवा दूं ताकि उसके मन को आघात लगे, वह मेरा नौकरी करना पसंद नहीं करता इसलिए लगता है कि कोई भी छोटी-मोटी नौकरी करने के लिए घर से निकलूं ताकि वह दुखी हो। मेरे सामने हार जाए। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर पाती इसलिए खीझकर यहां चली आती हूँ।

यहां कुछ विशेष प्रकार की स्त्रियों की उस मनोवृत्ति को प्रकट किया गया है जहां वे छोटी-छोटी बातों को लड़ाई का बहाना बनाती है और पति को नीचा दिखाने का प्रयास करती है।

7. बड़ी लड़की : मेरा अपना घर...हां। और मैं आती हूं। कि एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि **क्या** चीज है वह इस घर में जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है। (लगभग टूटते स्वर में) तुम बता सकती हो ममा कि **क्या** चीज है वह? और कहां है वह? इस घर के खिड़कियों-दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुमने? डैडी में? किन्नी में? अशोक में? कहां छिपी है वह मनहूस चीज जो वह कहता है मैं इस घर से अपने अंदर लेकर गयी हूं? (स्त्री की दोनों बांहें हाथ में लेकर) बताओ ममा, **क्या** है वह चीज? कहां पर है इस घर में?

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – बिन्नी सावित्री से कहती है, मैं इस घर में बार-बार इसलिए आती हूं ताकि मनोज के कथानुसार उस चीज को ढूंढ सकूं जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती।

व्याख्या – बिन्नी सावित्री से कहती है कि हर बार पति के सामने मन का गुबार निकाल कर मुझे यही सुनना पड़ता है कि मैं इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हूं जो मुझे सहज और स्वाभाविक नहीं रहने देती तब मैं लड़कर यहां आती हूं। अपने घर में बार-बार आती हूं यह खोजने कि वह चीज **क्या** है? कहां है? जिसका उल्लेख करके मनोज बार-बार मुझे नीचा दिखाता है, हीन साबित करता है। बिन्नी दुखी, उदास होकर कहती है तो लगता है वह भीतर से टूट चुकी है। वह मां से पूछती है कि बताओं वह चीज **क्या** है? कहां है? इस घर के खिड़की दरवाजों में? छत में? दीवारों में? तुममें? डैडी में? किन्नी और अशोक में? कहां है। किसमें छिपी है वह मनहूस, अशुभ चीज भाव या तत्व जिसे अपने साथ लेकर मैं यहां से गई हूं? वह मां का हाथ पकड़कर झकझोरते हुए जिद करती है कि वह उस चीज का पता बताएं ताकि उस चीज का पता लगते ही वह उसे नष्ट कर अपने गृहस्थ जीवन को सुखी बना सके। वह नहीं जानती कि अतृप्ति और असंतोष ही वह चीज, भाव, या संस्कार है जो वह अपनी मां से इस घर से लेकर गई है जो असहज बनाये रखते हैं। यह सारी परिस्थिति उन महिलाओं के क्षुद्र भावों की ओर संकेत करती है जिनके मूल में उनके पैतृक परिवार का, पीहर का परिवेश काम कर रहा होता है।

8. पुरुष एक : किसे सुना सकता हूँ? कोई है जो सुन सकता है? जिन्हें सुनना चाहिए, वे सब तो एक रबड़-स्टैंप के सिवा कुछ समझते नहीं मुझे। सिर्फ जरूरत पड़ने पर इस स्टैंप का ठप्पा लगाकर...।

स्त्री : यह बहुत बड़ी बात नहीं कह रहे तुम?

लड़का : (उसे रोकने की कोशिश में) ममा...।

स्त्री : मुझे सिर्फ इतना पूछ लेने दे इनसे कि रबड़-स्टैंप के माने क्या होते हैं? एक अधिकार, एक रुतबा, एक इज्जत -यही न?

लड़का : (फिर उसी कोशिश में) सुनो तो सही, ममा...।

स्त्री : (बिना उसकी तरफ ध्यान दिए) यह सब कब-कब मिला है इनसे किसी को भी इस घर में? किस माने में ये कहते हैं कि...?

पुरुष एक : किसी माने में नहीं। मैं इस घर में एक रबड़-स्टैंप भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूं-बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। इसके बाद क्या कोई मुझे वजह बता सकता है, एक भी ऐसी वजह, कि क्यों मुझे रहना चाहिए इस घर में?

संदर्भ : पूर्ववत।

प्रसंग : महेंद्रनाथ अपनी उपेक्षा से पीड़ित होकर पत्नी, बच्चों के सामने नि□न पंक्तियों में अपने मन का गुबार निकाल रहा है।

व्याख्या : महेंद्रनाथ अपनी पत्नी सावित्री और बच्चों के सामने जोर-जोर से कहता है कि कितने साल का हो गया मैं? कितने साल से परिवार की देखरेख कर रहा हूं लेकिन इस घर में हर कोई मेरी उपेक्षा करता है, मुझ पर व्यंग्य करता है। मेरा यहां कोई समान है या नहीं? उसकी बात सुनकर सावित्री चिढ़ कर कहती है कि यह रोना किसे सुना रहे हो? तब सावित्री की बात का उत्तर देते हुए महेंद्रनाथ कहता है कि किसे सुनाऊंगा? इस घर के लोग मुझे केवल रहर स्टैंप समझते हैं। जैसे किसी कागज को, लेख को प्रमाणित करना हो तो लोग रबर स्टैंप निकालकर संबंधित अधिकारी या कार्यालय की सील लगा देते हैं, फिर रबर स्टैंप को टेबल या अलमारी के किसी कोने में लापरवाही से डाल देते हैं। स्टैंप लगाते ही कागज मूल्यवान हो जाता है लेकिन जिस स्टैंप ने इस कागज को मूल्यवान और अस्तित्ववान बनाया उसको उपेक्षित पड़ा रहने देते हैं। महेंद्रनाथ का यही तात्पर्य है कि पिता है और पति है, यह प्रमाणित करने के लिए ही उसका अस्तित्व है, वरना कोई उसे सम्मान नहीं देता। सावित्री चिढ़ कर कहती है कि रबर स्टैंप का मतलब- एक रुतबा, एक इज्जत, एक अधिकार है, लेकिन यह सब घर के लोगों को इन्होंने कब दिया? तात्पर्य

यह है कि तुम रबर स्टैंप भी नहीं हो। महेंद्रनाथ कहता है- हां, मैं रबर स्टैंप नहीं बल्कि रबर का एक टुकड़ा हूं, बेकार जिसे रोज-रोज घिसा जाता है। मैं अस्तित्वहीन हूं तो मुझे घर में नहीं रहना चाहिए। **क्यों**कि मेरे घर में रहने की कोई वजह नहीं है। मैं रहूं तब भी, न रहूं तब भी, कोई फर्क नहीं पड़ता। अपने ही परिवार में उपेक्षित पति की मनोदशा को ये श**ब्द** मुखर कर रहे हैं।

-9. **पुरुष एक** : (सिर हिलाता) हां... छोटी सी बात ही तो है यह। अधिकार, रुतबा, इज्जत-यह सब बाहर के लोगों से मिल सकती है इस घर को। इस घर का आज तक कुछ बना है, या आगे बन सकता है, तो सिर्फ बाहर के लोगों के भरोसे! मेरे भरोसे तो सबकुछ बिगड़ता आया है और आगे बिगड़ ही बिगड़ सकता है (लड़के की तरफ इशारा करके) यह आज कर बेकार **क्यों** घूम रहा है? मेरी वजह से। (बड़ी लड़की की तरफ इशारा करके) यह बिना बिताये एक रात घर से **क्यों** भाग गयी थी? मेरी वजह से। (स्त्री के बिल्कुल सामने आकर) और तुम भी? तुम भी इतने सालों से **क्यों** चाहती रही हो कि...?

स्त्री : (बौखलाकर, शेष तीनों से) सुन रहे हो तुम लोग?

पुरुष एक : अपनी जिन्दगी चौपट करने का जि**म्मे**दार मैं हूं। तु**म्ह**ारी जिन्दगी चौपट करने का जि□मेदार मैं हूं। इन सबकी जिन्दगियां चौपट करने का जि□मेदार मैं हूं। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूं **क्यों**कि अंदर से मैं आरामतलब हूं, घरघुसरा हूं, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।

स्त्री : मैं नहीं जानती, तुम सचमुच ऐसा महसूस करते हो या...?

पुरुष एक : सचमुच महसूस करता हूं। मुझे पता है मैं एक कीड़ा हूं जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है (बाहर के दरवाजे की तरफ चलता) पर अब पेट भर गया है मेरा। हमेशा के लिए भर गया है (दरवाजे के पास रुककर) और बचा भी **क्य**ा है जिसे खाने के लिए और रहता रहूं यहां?

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - घर में अपनी उपेक्षा से तिलमिलाया हुआ महेंद्रनाथ पत्नी के सामने मन का गुबार निकालते हुए उसकी चारित्रिक कमजोरियों पर प्रकाश डाल रहा है।

व्याख्या – महेंद्रनाथ कहता है कि रबरस्टैंप यानी–अधिकार, रुतबा और इज्जत। अगर मैं यह भी नहीं दे सकता, पिता और पति का स**म्मा**न मिलना तो दूर जब मुझे रबर स्टैंप भी नहीं समझा जाता तो मैं इस घर में **क्यों** रहूं। यह सब चीजें इस घर को सदा बाहर के लोगों से मिलती रही है। वे ही इस घर को अधिकार, रुतबा, इज्जत देते, दिलाते रहे हैं और आगे भी ऐसा ही होगा। वह सावित्री के पुरुष मित्रों के साथ अनैतिक संबंधों पर व्यंग्य करता है। कहता है मेरे कारण तो इस घर में सब कुछ बिगड़ता ही रहा है। लड़का बेकार, आवारा होकर घूम रहा है। लड़की किसी के साथ घर से भाग गई। और तुम भी इतने वर्षों से यही चाहती रही हो कि कोई ऐसा मिल जाए जिसके साथ तुम संतुष्ट हो सको और घर छोड़कर जा सको। मैं अपनी, तु□हारी, बेटा–बेटी, सबकी जिन्दगी चौपट करने का जि**म्मे**दार हूं तो मुझे इस घर में रहने का **क्या** अधिकार है? लेकिन मैं पड़ा हूं यही, **क्यों**कि मैं आरामतलब हूं, घरघुसरा हूं, मेरी हड्डियों में जंग लग गया है मैं काम करने के लिए बाहर जाकर परिश्रम नहीं करना चाहता, तु**म्हा**री कमाई खाकर ऐश करता हूं।

सावित्री हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि मुझे नहीं मालूम कि तुम ऐसा अनुभव करते हो। सावित्री महेंद्रनाथ को नकारा के साथ आत्मस**म्मा**नहीन पुरुष समझती है। महेंद्रनाथ कहता है कि मैं अनुभव करता हूं। जैसे मैं एक कीड़ा हूं, घुन हूं जिसने अंदर–अंदर ही परिवार के सुखी लहलहाते वृक्ष को खाकर, खोखला कर दिया है। लेकिन अब मेरी सहनश**क्ति** खत्म हो गई है, मेरा पेट भर गया है, अब यहां इस घर में और नहीं रह सकता। वह दुखी और आहत भाव से घर से निकल जाता है।

10 स्त्री : तू ठहर, मुझे बात करने दे। (लड़के से) दिलचस्पी तो तेरी सिर्फ तीन चीजों में है–दिन भर ऊंघने में, तस्वीरें काटने में और घर की यह चीज वह चीज ले जाकर...।

लड़का : (कड़वी नजर से उसे देखता) इसे घर कहती हो तुम?

स्त्री : तो तू इसे **क्या** समझकर रहता है यहां?

लड़का : मैं इसे...।

बड़ी लड़की : (उसे बोलने न देने के लिए) देख अशोक, ममा के यह सब कहने का मतलब सिर्फ इतना है कि...।

लड़का : मैं नहीं जानता मतलब? तू चली गयी है यहां से, मैं तो अभी यहीं रहता हूं।

स्त्री : (हताश भाव से) **क्यों** नहीं तू भी फिर...?

बड़ी लड़की : (झिड़कने के स्वर में) कैसी बात कर रही हो, ममा।

स्त्री : कैसी बात कर रही हूं ? यहां पर सब लोग समझते **क्य**ा है मुझे ? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है ? मगर किसी के मन में जरा सा भी **ख्य**ाल नहीं है इस चीज के लिए कैसे मैं...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेंद्रनाथ के घर से जाने के बाद अशोक और सावित्री यानी मां-बेटे के बीच बहस हो रही है। अशोक घर को घर नहीं मानता जिससे सावित्री आहत होती है।

व्याख्या – सावित्री का बेटा अशोक बेकार है और आवारागर्दी करता है। वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे घर की चीजें ले जाकर दे देता है। बिना लताए कई दिनों तक घर से गायब रहता है। सावित्री उसे डांटते हुए कहती है कि तू नौकरी नहीं करना चाहता, तेरी किसी चीज में दिलचस्पी है भी या नहीं ? तुझे तीन ही चीजों में दिलचस्पी दिखाई देती है – दिन-भर ऊंघने में, तस्वीरें काटने में और घर की चीजें ले जाकर इस लड़की को देने में। अशोक तिलमिलाकर कहता है- इस घर को घर कहती हो तुम ? सावित्री पूछती है कि तू उसे घर नहीं समझता तो **क्य**ा समझकर यहां रहता है। बहन को भी अशोक कड़ा उ**त्त**र देता है कि तू तो यहां से चली गई, मैं यहां रहता हूं, इसलिए मैं सब देखता हूं समझता हूं। दूसरे पुरुषों के साथ भटकती मां, नाकारा पिता, कलह का वातावरण, अभाव इन सबके बीच शांति और सुख खो गए है जो घर को घर बनाते हैं। घर के सदस्य मुंह खोलते ही एक-दूसरे पर व्यंग्य बाण चलाते हैं। प्रेम की छाया भी जिस जगह न हो उसे अशोक घर नहीं मानता। वह सोचता है ऐसे दमघोंटू वातावरण से घबराकर ही उसकी बहन दूसरे लड़के के साथ भाग गई। बेटे के तात्पर्य को समझाकर सावित्री भीतर से लज्जित होती हुई भी अपने आचरण को सही ठहराने के लिए कहती है-बहन चली गई, महेंद्रनाथ भी आरोप लगाकर घर से चला गया, तू भी **क्य**ों नहीं चला जाता अगर तेरा दम घुट रहा है तो। **क्य**ा घर के ऐसे वातावरण के लिए मैं ही उ**त्त**रदायी हूं जो सभी मुझ पर आरोप लगा रहे हैं ? मैं दिन-रात काम करके घर चला रही हूं, मेरी थकान और आवश्यकताओं का किसी को ध्यान नहीं है। सब मुझे मशीन समझते हैं जो सबके लिए दिन-रात आटा-पीसकर सबका पेट भरती है। कोई यह समझता ही नहीं कि इस घर को चलाने के लिए मुझे **क्य**ा-**क्य**ा करना पड़ता है।

11. लड़का : जिनके आने से हम जितने छोटे हैं, उससे और छोटे हो जाते हैं अपनी नजर में।

स्त्री : (कुछ स्त**ब्ध** होकर) मतलब ?

लड़का : मतलब वही जो मैंने कहा है। आज तक जिस किसी को बुलाया है ?

स्त्री : तू **क्य**ा समझता है, किस वजह से बुलाया है ?

लड़का : उसकी किसी 'बड़ी' चीज की वजह से। एक को कि वह इन्टलैक्चुअल बहुत बड़ा है। दूसरे को कि उसकी तनखाह पांच हजार है। तीसरे को कि उसकी तख्ती चीफ कमिश्नर की है। जब भी बुलाया है, आदमी को नहीं-उसकी तनखाह को, नाम को, रूतबे को बुलाया है।

स्त्री : तू कहना क्या चाहता है इससे? कि ऐसे लोगों के आने से इस घर के लोग छोटे हो जाते हैं।

लड़का : बहुत-बहुत छोटे हो जाते हैं।

स्त्री : और मैं उन्हें इसीलिए बुलाती हूं कि...।

लड़का : पता नहीं किसलिए बुलाती हो, पर बुलाती सिर्फ ऐसे ही लोगों को हो। अच्छा तुम्हीं बताओ, किसलिए बुलाती हो?

स्त्री : इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। कि मेरे अकेली ऊपर बहुत बोझ है इस घर का। जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके। अगर मैं कुछ खास लोगों के साथ संबंध बनाकर रखना चाहती हूं तो अपने लिए नहीं, तुम लोगों के लिए। पर तुम लोग इससे छोटे होते हो, तो मैं छोड़ दूंगी कोशिश। हां, इतना कहकर कि मैं अकेले दम इस घर की जिम्मेदारियां नहीं उठाती रह सकती और एक आदमी है जो का सारा पैसा डुबोकर सालों से हाथ पर हाथ धरे बैठा है। दूसरा अपनी कोशिश से कुछ करना तो दूर, मेरे सिर फोड़ने से भी किसी ठिकाने लगना अपना अपमान समझाता है। ऐसे में मुझसे भी नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहां दर्द नहीं किसी चीज का, तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीखती रहूं रात-दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठ रहूं अपनी जगह? उससे तो तुममें से कोई छोटा नहीं होगा।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री का बॉस घर आता है। सावित्री अशोक को उससे मिलवाना चाहती है ताकि अशोक को कहीं नौकरी दिलवा दे। लेकिन अशोक बॉस की खिल्ली उड़ाता है, उपेक्षा करता है और उसका वनमानुष जैसा कार्टून बनाता है। बॉस के जाने के बाद दोनों मां बेटे में बहस होती है।

व्याख्या – अशोक कहता है मां से कि तुम हमेशा ऐसे लोगों को क्यों बुलाती हो जिनके आने से हम छोटे लोग और छोटे हो जाते हैं। वे अपना बड़प्पन दिखाते हैं और हमारा हीनताबोध गहरा जाता है। एक को तुमने उसकी पांच हजार तन□याह के कारण, दूसरे को उसके इन्टलैक्चुअल होने के कारण, तीसरे को उसके चीफ कमिश्नर होने के कारण घर पर बुलाया। तुम आदमी को नहीं उसकी तन□वाह को, नाम को, रुतबे को बुलाती हो, जिसके कारण हमारी हीनभावना बढ़ जाती है इसलिए मैं ऐसे लोगों से नहीं मिलना चाहता। वे दाता के भाव में बात करते हैं और हमें भिखारी समझते हैं।

सावित्री कहती है कि मैं ऐसे लोगों को इसलिए बुलाती हूं कि इनसे संबंध अच्छे बने रहें। ताकि इसने लाभ उठाकर इस घर का कुछ भला कर सकूं। तुम्हारे नाकारा पिता को ही कोई काम

दिया दें या तुम्हें नौकरी दिलवा दें शायद ये लोग, ताकि इस घर का भार जो मुझे अकेले ढोना पड़ रहा है कुछ हल्का हो जाए, बंट जाए। लेकिन अगर तुम्हें इनके आने से हीनताबोध अनुभव होता है तो नहीं बुलाऊंगी। लेकिन अब मैं भी अकेले इस घर का भार नहीं ढो सकती। सभी अपना-अपना इंतजाम कर लो। महेंद्र व्यवसाय में वर्षों की कमाई गंवा कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे हैं, न स्वयं कुछ करते हैं घर के लिए, न मेरी सहायता से कोई काम बन रहा हो तो उसे स्वीकार करते हैं, उल्टा आरोप लगाते हैं। जब सभी निश्चित बैठे हैं इस घर और सबके जीवन से आंखें मूंदकर, तो मैं ही **क्यों** हैरान रहूं। मैं भी ठाठ से बैठी रहूंगी। किसी की नौकरी की चिंता में बॉस को नहीं बुलाऊंगी ताकि तुम लोग हीनता बोध अनुभव न करो। अब से मैं भी घर परिवार की चिन्ता छोड़कर केवल अपने सुख और आराम के बारे में सोचूंगी। संकेत इस ओर है कि स्त्री यदि किसी बाहरी पुरुष से चाहे नेक इरादे से ही संबंध बढ़ाए तो उसका चरित्र संदेहास्पद हो जाता है। केवल पति ही नहीं अपितु पुत्र भी उसके इस व्यवहार को नहीं सह पाता।

12. लड़का : और मैं ही शायद इस घर में सबसे ज्यादा नाकारा हूँ। ... पर **क्यों** हूं?

बड़ी लड़की : यह... यह मैं कैसे बता सकती हूं?

लड़का : कम से कम अपनी बात तो बता ही सकती है। तू यह घर छोड़कर **क्यों** चली गयी थी?

बड़ी लड़की : (अप्रतिभ होकर) मैं चली गयी थी... चली गयी... **क्यों**कि...।

लड़का : **क्यों**कि तू मनोज से प्रेम करती थी! खुद तुझे ही यह गुट्टी बहुत कमजोर नहीं लगती?

बड़ी लड़की : (रुआंसी पड़कर) तो तू मुझझे... मुझसे भी कह रहा है कि...?

लड़का : मैंने कहा था तुझसे... मत कर बात।

स्त्री : (अत्यधिक गंभीर) तुझे पता है न, तूने **क्य**ा बात कही है? पता है न? तो ठीक है। आज से मैं सिर्फ अपनी जिन्दगी को देखूंगी... तूम लोग अपनी-अपनी जिन्दगी को खुद देख लेना।

मेरे पास अब बहुत सात नहीं है जीने को। पर जितने हैं, उन्हें मैं इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था इस का, हो चुका आज तक, मेरी तरफ से यह अन्त है उसका ...। निश्चित अन्त।

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री कहती है कि मैं अकेले अब इस घर का भार नहीं ढो सकती। अशोक कहता है कि बिन्नी से कि जब इनसे अकेले नहीं निभाता तो **क्यों** निभा रही है? बेटे की बात से सावित्री आहत होती है तथा तीनों के बीच निर्णयात्मक संवाद होता है।

व्याख्या – सावित्री को सुनाते हुए अशोक बिन्नी से कहता है कि ये कई बार इस बात को कह चुकी है कि अकेले भार ढो रही है, अब नहीं निभाता, तो **क्यों** निभा रही है? किसके लिए और **क्यों** कर रही है? बिन्नी हस्तक्षेप करते हुए कहती है कि ममा ये सब स्वयं के लिए नहीं बल्कि इस घर के लोगों के लिए कर रही है। किन्नी के लिए, डैडी के लिए, तेरे और मेरे लिए कर रही है। अशोक कहता है – गलत है। तेरे लिए करती तो तू इस वातावरण से घबराकर घर छोड़कर न भागती। तू चली गई और कलह से घबराकर डैडी भी चले गए। किन्नी दिनों-दिन बिगड़ती जा रही है। न उसकी शिक्षा की ओर न संस्कारों की ओर इनका ध्यान है। मां होने के नाते जो इन्हें करना चाहिए वह करती तो घर **क्या** इस रूप में होता। एक मैं ही नकारा हूं, इसके पीछे वही घुटन है जो तेरे घर छोड़कर जाने के पीछे थी। बिन्नी कहती है- मैं घुटन के कारण घर से नहीं भागी बल्कि इसलिए गई **क्यों**कि मैं मनोज से प्रेम करती थी। अशोक उसका मजाक उड़ाते हुए कहता है कि तेरी यह दलील झूठी है, कमजोर है, यह तू भी जानती है। **क्यों**कि तू मनोज से प्रेम नहीं करती थी बल्कि उसने तुझे प्रेम किया और उज्ज्वल भविष्य का सपना दिखाया। तुझे लगा घर के इस घुटन भरे वातावरण से निकलने का यही एक रास्ता है और तू चली गई। अशोक और बिन्नी की बहस सुनकर सावित्री आहत होती है। बेटे के मन में उसके लिए इतनी कड़वाहट, अपमान और उपेक्षा है यह जानकर वह गहन दुख का अनुभव करती है और अशोक से कहती है-तूने आज बहुत बड़ी बात कह दी, इसे ध्यान रखना। अब तुम सब अपना-अपना ध्यान रखो, मेरी तरफ से इस उ**त्तर**दायित्व का आज निश्चित अंत हो गया समझो। मेरी बची हुई थोड़ी सी जिन्दगी है उसे अब मैं अपने लिए अपने तरीके से जीऊंगी। घर के लिए जितना कर सकती थी, किया और जो पाया, वह देख रही हूं। इसलिए अब मैं स्वयं को सारो उ**त्त**रदायित्वों से मु**क्त** करता हूं। अपनी मर्यादाओं को भंग करने वाले लोगं का परिवार अंततोगत्वा किस प्रकार टूटन की ओर बढ़ता है, वह परिस्थिति यहां उभरकर सामने आई है।

13. . पुरुष चार : तुम किसी तरह छुटकारा नहीं दे सकतीं उस आदमी को?

स्त्री : छुटकारा? मैं? उन्हें? कितनी उलटी बात है।

पुरुष चार : उलटी बात नहीं है। तुमने जिस तरह बांध रखा है उसे अपने साथ...।

स्त्री : उन्हें बांध रखा है? मैंने अपने साथ? सिवा आपके कोई नहीं कह सकता था यह बात।

पुरुष चार : **क्यों**कि और कोई जानता भी तो नहीं उतना जितना मैं जानता हूं।

स्त्री : आप हमेशा यही मानते ये हैं कि आप बहुत ज्यादा जानते हैं। नहीं?

पुरुष चार : महेंद्रनाथ के बारे में, हां। और जानकर ही कहता हूं कि तुमने इस तरह शिकंजे में कस रखा है उसे कि वह अब अपने दी पैरों पर चल सकने लायक भी नहीं रहा।

स्त्री : अपने दो पैरों पर। अपने दो पैर कभी थे भी उसके पास?

पुरुष चार : कभी की बात **क्यों** करती हो? जब तुमने उसे जाना, तब से दस साल पहले से मैं उसे जानता हूं।

स्त्री : इसीलिए शायद जब मैंने जाना, तब तक अपने दो पैर रहे ही नहीं थे उसके पास।

पुरुष चार : मैं जानता हूं सावित्री, कि तुम मेरे बारे में **क्या**-**क्या** सोचती और कहती हो...।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – पुरुष चार अर्थात् जुनेजा और सावित्री के बीच सावित्री के गृहस्थ जीवन और महेंद्रनाथ को लेकर वार्तालाप हो रहा है।

व्याख्या – जुनेजा सावित्री से कहता है कि मेरा मित्र महेंद्रनाथ गलत नहीं है। उसका भाग्य उसका साथ नहीं दे रहा है। वह तु**म्हें** और इस घर को बहुत चाहता है इसलिए तुम लोगों की उपेक्षा और अपमान पाकर भी तुमसे बंधा हुआ है। तुम अपनी अतृप्ति और सब कुछ पा लेने की महत्वाकांक्षा में कहां-कहां जाती हो, वह सब जानता है फिर भी तुमसे बंधा है। तुम उसे छोड़ **क्यों** नहीं देती? उसे छुटकारा दे दोगी तो तो वह फिर से एक नये विश्वास के सा अपने पैरों पर खड़ा हो सकेगा। अभी बार-बार तु□हारे ताने सुनकर, उसका आत्मविश्वास खो गया है। उसे छोड़ दो।

सावित्री कहती है कि कितनी उलटी बात कर रहे हो। मैं क्यों उन्हें बांध कर रखूंगी। वे मेरे पति है लेकिन तु□हारे मित्र अधिक है इसलिए तुम मुझसे ज्यादा उन्हें जानते हो शायद। रही बात पैरों पर खड़ा होने की तो मुझे नहीं लगता कि उनके पास कभी खुद के दो पैर थे। अर्थात् वे हमेशा तुम्हारी बैसाखी लेकर चलते रहे स्वयं कोई निर्णय लेने की क्षमता उनमें थी ही नहीं। पहले भी तुमसे पूछकर हर कार्य करते थे आगे भी मुझसे ज्यादा उन्हें तुम्हारी आवश्यकता होगी और ऐसा ही तुम लोग चाहते हो। जुनेजा सावित्री के व्यंग्य बाणों को सुन कर कहता है कि तुमसे विवाह के दस वर्ष पहले से मैं महेंद्र को जानता हूँ। तुमने ही उसे ऐसा बनाया है पहले वह ऐसा नहीं था। लेकिन तुम मुझ पर ही आरोप लगा रही हो। मैं जानता हूं मेरे संबंध में तुम बहुत कुछ सोचती हो और कहती हो लेकिन मैं बुरा नहीं मानूंगा। सामान्य स्त्री स्वभाव के अनुसार सावित्री को अपना पति नाकारा व निकम्मा प्रतीत हो रहा है जबकि जुनेजा के विचार में विवाह बंधन के कारण उसकी यह दशा हुई है।

14. स्त्री : (खड़ी होती) मुझे उस असलियत की बात करने दीजिए जिसे मैं जानती हूं।... एक आदमी है। घर बसात है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन-सी जरूरत। अपने अंदर के किसी उसको... भर सकने की। इस तरह उसे अपने लिए... अपने में.... पूरा होना होता है। किन्ही दूसरों को पूरा करते रहने में ही जिन्दगी नहीं काटनी होती। पर आपके महेंद्र के लिए जिन्दगी का मतलब रहा है... जैसे सिर्फ दूसरों के खाली खाने भरने की ही एक चीज है वह। जो कुछ वे दूसरे उससे चाहते हैं, उम्मीद करते हैं या जिस तरह वे सोचते हैं, उनकी जिन्दगी में उसका इस्तेमाल हो सकता है।

पुरुष चार : इस्तेमाल हो सकता है?

स्त्री : नहीं? इस काम के लिए और कोई नहीं जा सकता, महेंद्रनाथ चला जाएगा। इस बोझ को और कोई नहीं ढो सकता, महेंद्रनाथ ढो लेगा। प्रेस खुला, तो भी। फैक्टरी शुरू हुई, तो भी। खाली खाने भरने की जगह पर महेन्द्रनाथ, और खाने भर चुकने पर? महेंद्रनाथ कहीं नहीं। महेंद्रनाथ अपना हिस्सा पहले ही ले चुका है, पहले ही खा चुका है। और उसका हिस्सा। (कमरे के एक-एक सामान की तरफ इशारा करती) ये ये ये दूसरे-तीसरे-चौथे दरजे की घटिया चीजें, जिनसे वह सोचता था, उसका घर बन रहा है।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – महेंद्रनाथ को लेकर जुनेजा और सावित्री के बीच बहस होती है। इन पंक्तियों में सावित्री महेंद्रनाथ और उसके मित्रों की वास्तविक मन:स्थिति पर प्रकाश डाल रही है।

व्याख्या – सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाते हुए कहती है कि तुम जैसे मित्रों ने महेंद्र का इस्तेमाल अपने लाभ के लिए किया लेकिन महेंद्र इस बात को समझाता ही नहीं। वह हर बात तुमसे पूछे बिना नहीं मानता, हर काम करने के लिए तुमसे पूछता है कि यह सही है या नहीं। जो तुम सही को, वही उसके लिए सही है।

सावित्री कहती है – आदमी अपनी जिन्दगी का अधूरापन मिटाने, खालीपन भरने के लिए विवाह करता है, घर बसाता है लेकिन महेंद्रनाथ के लिए पत्नी और घर से अधिक महत्वपूर्ण था मित्रों के खालीपन को भरना। जब प्रेस का कान शुरू हुआ, जब फैक्टरी शुरू हुई तब भी जहां कोई काम करने के लिए नहीं हैं उसे तुमने महेंन्द्र के ऊपर डाल दिया और जब उस जगह पर कोई आ गया तो महेंद्र को निकाल दिया। और निर्णय भी दे दिया कि महेंद्र ने जितना रुपया लगाया था उतना हिस्सा वह ले चुका है, और वह हिस्सा था तीसरे-चौथे दर्जे की घटिया कुर्सियां, मेजें...। महेंद्र इस सामान के रूप में अपना हिस्सा लाकर घर में रखता था और सोचता था कि उसका घर बन रहा है। वह बेवकूफ बनता रहा। काम वह करता था और लाभ तुम लोग उठाते थे और उसे यह कहा गया कि उसके हिस्से का पैसा डूब गया उसे नुकसान हुआ। और तब से वह नकारा घूम रहा है। जिसके उत्तरदायी तुम लोग हो। सावित्री जुनेजा को धिक्कारती है कि उसके पति और गृहस्थी को बर्बाद करने वाले कोई और नहीं उसके मित्र ही हैं, जिन्होंने मित्र बनकर शत्रुओं जैसा कार्य किया।

15. वही महेंद्र जो दोस्तों के बीच दब्बू-सा बना हलके-हलके मुसकराता है, घर आकर एक दरिंदा बन जाता है। पता नहीं, कब किसे नोंच लेगा, कब किसे फाड़ खायेगा। आज वह ताव में अपनी कमीज को आग लगा लेता है। कल वह सावित्री की छाती पर बैठकर उसका सिर जमीन से रगड़ने लगता है। बोल, बोल, चलेगी उस तरह कि नहीं जैसे मैं चाहता हूं? मानेगी वह सब कि नहीं जो मैं कहता हूं? पर सावित्री फिर भी नहीं चलती। वह सब नहीं मानते। वह नफरत करती है इस सबसे-इस आदमी के ऐसा होने से। वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए- एक...पूरा...आदमी। गला फाड़कर वह यह बात कहती है। कभी इस आदमी को ही वह आदमी बना सकने की कोशिश करती है। कभी तड़पकर अपने को इससे अलग कर लेना चाहती है। पर अगर उसकी कोशिशों से थोड़ा भी फर्क पड़ने लगता है उस आदमी में तो दोस्तों में इसका गम मनाया जाने लगता है। सावित्री महेंद्र की नाक में नकेल डालकर उसे अपने ढंग से चला रही

है। सावित्री बेचारे महेंद्र की रीढ़ तोड़कर उसे किसी लायक नहीं रहने दे रही है। जैसा कि आदमी न होकर बिना हाड़-मांस पुतला हो वह एक-बेचारा महेन्द्र।

संदर्भ - पूर्ववत।

प्रसंग - सावित्री जुनेजा पर आरोप लगाती हुई महेन्द्रनाथ के बर्बाद होने के लिए उसकी मित्र मंडली को दोषी ठहराता है।

व्याख्या - सावित्री जुनेजा से कहती है कि महेंद्र ने मुझसे विवाह करके अच्छे गृहस्थ की तरह जीना आरम्भ किया तो तुम लोगों को बुरा लगा। तुम्हें लगा तुम्हारे मित्र को मैंने छीन लिया। अब वह तुम्हारा मनोरंजन और बेगार करने के लिए खाली नहीं था इसलिए तुमने उसे शिक्षा देना शुरू किया और उसे मेरी जिन्दगी और गृहस्थी से विमुख कर दिया। परिणाम यह हुआ कि महेन्द्र मित्रों के बीच दब्बू और सीधा सादा शालीन बना मुस्कुराता रहता है लेकिन घर के अंदर घुसते ही दरिंदा बन जाता है। चीखता है, चिल्लाता है, मार-पीट करता है, पत्नी की छाती पर चढ़कर उसके बाल नोंचता है, सिर दीवार से रगड़ देता है लगता है जैसे सबको फाड़ कर खा जाएगा। पत्नी को अपने अनुसार चलने के लिए विवश लगता है। ऐसे चलो, ऐसे पहनो, ऐसे खाओ, ऐसे मिलो, बात करो। पर नहीं, वह हार जाता है। मैं उसकी दरिंदगी से डरकर उसके अनुसार चलने से मना कर देती हूं। मैं नफरत करती हूं ऐसे दरिंदे आदमी से। मुझे एक पूरा आदमी चाहिए। ऐसा आदमी जो आदमियत की और पति की, प्रेमी की, हर कसौटी पर खरा उतरे। मैंने कभी महेंद्र को ऐसा आदमी बनाने का प्रयत्न किया भी लेकिन नहीं बना सकी तो हार कर उससे अलग होने का प्रयत्न भी किया, वह भी नहीं कर पाई हूं। जब कभी महेंद्र में थोड़ा परविर्तन आया, उसे मुझसे और घर से लगाव हुआ, उसने मुझे और घर को समय देना शुरू किया तो उसके मित्रों में दुख की लहर फैल गई कि बेचारा महेंद्र कठपुतली बन गया है। बीवी उसे नकेल डालकर नचा रही है। उसकी कमर तोड़कर उसे नकारा बना रही है। अर्थात् मित्रों की दृष्टि में पत्नी और घर को समय देना पुरुषार्थ के विरुद्ध माना जाता। मित्रों की इन टीका टिप्पणियों से प्रभावित होकर महेंद्र फिर बदल जाता- और मित्र प्रसन्न हो जाते कि उनका बेगार ढोने वाला वापस आ गया है। सावित्री जुनेजा को सीधे सीधे अपनी गृहस्थी की बर्बादी का जिम्मेदार ठहराती है।

16. पुरुष चार : असल बात इतनी ही कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता तुम्हारी जिंदगी में, तो साल-दो साल बाद, तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। उसकी जिन्दगी में भी ऐसे ही कोई महेंद्र, कोई जुनेजा, कोई शिवजीत या कोई जगमोहन होता जिसकीवजह से तुम यही सब सोचती, यही सब

महसूस करती। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा है – कितना कुछ एक एक साथ ओढ़कर जीना। वह उतना कुछ भी तुम्हें किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती। वह आदमी भी इसी तरह तुम्हें अपने आसपास सिर पकड़ता और कपड़े फाड़ता नजर आता... और तुम।

संदर्भ – पूर्ववत।

प्रसंग – सावित्री के द्वारा लगाए गए आरोप सुनकर जुनेजा अत्यंत गंभीरता के साथ उसे उसके वास्तविक चरित्र से परिचित कराता है और कहता है कि सावित्री, अपनी बर्बाद गृहस्थी के लिए तुम स्वयं उत्तरदायी हो।

व्याख्या – सावित्री अपनी पथभ्रष्टता को न्यायसंगत ठहराने के लिए जुनेजा पर आरोप लगाती है कि उसके यदि पति का शोषण करके उसे नाराका और आत्मविश्वासहीन न बनाया होता तो गृहस्थी चलाने के लिए उसे उतना परिश्रम न करना पड़ता जितना वह कर रही है। इस पर जुनेजा उत्तर देता है कि तुम अपने आप को सही सिद्ध करने के लिए महेंद्र को दोषी तुम हो। तुम अतृप्त हो, कुंठित हो, महत्वाकांक्षी हो, तुम एक साथ सब कुछ पा लेना चाहती हो। किसी एक आदमी में सब कुछ मनचाहा पा लेना स्वाभाविक नहीं है लेकिन यह बात तुम न समझती हो, न मानती हो इसलिए महेंद्र तुम्हें अपूर्ण लगात है और पूर्णता की खोज में तुम एक पुरुष से दूसरे और दूसरे से तीसरे के पास भटकती रही हो लेकिन पूर्णता और स्थायित्व तुम्हें कहीं– नहीं मिला, मिल भी नहीं सकता क्योंकि किसी मनुष्य को सब कुछ नहीं मिलता। महेंद्र की जगह कोई भी आदमी होता– जुनेजा, जगमोहन, शिवजीत, तुम उससे विवाह के साल–दो–साल बाद यही सोचतीं जो आज सोच रही है। तुम्हें एक साथ, सब कुछ एक ही जगह नहीं मिलता और तुम इसी तरह खाली, अपूर्ण और अतृप्त अनुभव करतीं। वह आदमी भी तुम्हें महेंद्र की तरह दरिंदा, कपड़े फाड़ता, सिर फौड़ता नजर आता। तुम इसी तरह उसकी अपूर्णता की शिकायत करतीं।

जुनेजा का तात्पर्य है कि अपूर्णता, असंतुष्टि सावित्री के अंदर है। वह सत्य को स्वीकार न करके एक असंभव सी चीज, पूर्णता को पाने के लिए एक पुरुष से दूसरे पुरुष की यात्रा करती हुई पतित हो रही है और गृहस्थी बर्बाद कर रही है। इसका आरोप वह पति मढ़ रही है। वैवाहिक संबंधों में एक दूसरे को अपने सांचे में ढालने की कोशिश में प्राय: पति–पत्नी को असफलता ही

हाथ लगती है, इस तथ्य की कटुता इन शब्दों में नाटककार ने अत्यंत कुशलतापूर्वक चित्रित की है।

2.3. आधे-अधूरे में आधुनिकता बोध

'आधे-अधूरे' आधुनिक युग के प्रश्नों को लेकर लिखा गया सामाजिक बोध का नाटक है और मध्यवर्गीय नारी-पुरुष संबंधों पर प्रकाश डालता है। पारिवारिक परिवेश में नारी की भूमिका क्या है? उसमें असन्तोष क्यों है? वह कैसी पूर्णता चाहती है आदि अनेक प्रश्न नाटक में उठते हैं। उत्तर तलाशने की चेष्टा राकेश नहीं करते, उनके पास कोई 'रेडीमेड' समाधान नहीं है। बड़ी लड़की का प्रश्न है, ''अंकल, सचमुच कुछ नहीं हो सकता क्या?'' और चतुर्थ पुरुष जुनेजा का उत्तर है, ''एक दिन के लिए हो सकता है, शायद दो दिन के लिए हो सकता है, पर हमेशा के लिए नहीं।'' मोहन राकेश का मुख्य प्रजोयन पारिवारिक परिवेश के मध्यवर्गीय नारी की स्थिति और नारी-पुरुष संबंधों पर दृष्टि डालना है और इसके लिए उन्होंने सावित्री को चुना। समानान्तर चरित्र के रूप में उसकी बेटी बिन्नी को रखा और दोनों को द्वंद्व से गुजारा। दोनों विक्षुब्ध। तनाव के कोई बड़े कारण हों, ऐसा भी नहीं है, तनाव है सो है। मां-बेटी के व्यक्तित्व की बनावट के कारण भी ऐसा है और पूरा पारिवारिक परिवेश तो है ही।

जीवन में पूर्णता की तलाश-वह भी व्यक्ति के माध्यम से, एक निष्फल खोज है। पुरुष चार-जुनेजा, नाटक के लगभग अन्त में नायिका सावित्री का विश्लेषण करते हुए उसी से कहता है, ''असल बात इतनी है कि महेंद्र की जगह इनमें से कोई भी आदमी होता, तु□हारी जिन्दगी में, तो साल-दो बाद तुम यही महसूस करती कि तुमने गलत आदमी से शादी कर ली है। क्योंकि तुम्हारे लिए जीने का मतलब रहा रहै - कितना कुछ एक साथ होकर, कितना कुछ एक साथ पाकर और कितना कुछ एक साथ छोड़कर जीना। वह उतना कुछ तुम्हें एक साथ किसी एक जगह न मिल पाता, इसलिए जिस किसी के साथ भी जिन्दगी शुरू करती, तुम हमेशा इतनी ही खाली, इतनी ही बेचैन बनी रहती। यहां राकेश की दृष्टि नारी पक्ष का द्वंद्व उजागर करने में अधिक है, वह भी आज की आधुनिक प्रवृत्ति के संदर्भ में। नाटक में नारी का प्रश्न है कि कहां है उसका घर, जिसमें वह अपनी निजता को पा सके? कहां है वह संबंध, जहां वह अपने को सार्थक अनुभव करे? और सबसे बड़ा प्रश्न है कि कहां है वह पुरुष, जिसमें वह पूर्णता देखे?

आधे-अधूरे की कथा सामयिक है इसलिए यहां नारी-पुरुष प्रश्न और भी प्रखरता से उभरे हैं। इसके पूर्व नारी का एक निश्चित स्थान था, स्थिर मान्यताएं थीं और थी स्त्री के मन में उन

मान्यताओं के प्रति दृढ़ आस्था, अटूट विश्वास। समय की गति के साथ धारणाएं बदली, आस्था विद्रोह ने लिया। नारी-जीवन की मान्यताओं में बदलाव आया और उन आस्थाओं को बन्धनों के रूप में देखा जाने लगा। महत्वाकांक्षाओं में डूबी नाकी को नयी राह पर चलते-चलते एक असमंजस की स्थिति का सामना करना पड़ा। आरम्भ में तो उस स्वतंत्रता में नारी को कुछ सन्तोष मिला पर शीघ्र ही एक बिखराव आया। सारा ढांचा गी चरमराता प्रतीत होने लगा। पूर्व-पश्चिम के जीवन मूल्यों की टकराहट, आर्थिक समस्याएं, टूटती हुई मान्यताएं टहती आस्था इन सबके मध्य नारी स्वयं अपने को खोने लगी, तनावों और अन्त:संघर्षों से बिखरने लगी। नायिका सावित्री में यह प्रतिबिम्बित है।

नायिका सावित्री अंत:संघर्ष से गुजरती है- एक नारी, पुरुष अनेक। उसकी बड़ी बेटी बिन्नी भी अपने पति मनोज से असन्तुष्ट है। 'आधे-अधूरे' का नायक थका-हारा महेंद्रनाथ फिर सावित्री के पास लौट आता है। नाटक में स्थिति यह है कि इस मामले में वर्चस्व नारी का है कि पुरुष बार-बार उसके पास लौटता है, मानों यहीं उसकी नियति है। इन नाटकों का अन्त मार्मिक है। 'आधे-अधूरे' में महेंद्रनाथ फिर लौटता है लड़खड़ाते पांवों पर, क्योंकि उसे घर की आवश्यकता है और वह सावित्री को छोड़कर कहीं जा नहीं सकता। यह एक ऐसा बन्धन है जिससे चाहकर भी वह मुक्ति नहीं पा सकता। मोहन राकेश का आशय नारी को प्रमुखता देना है, और इस माध्यम से नारी-पुरुष संबंधों का विश्लेषण करना भी।

'आधे-अधूरे' में चार पुरुष है : महेंद्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा। सबके केन्द्र में है सावित्री। नारी और पुरुष के व्यक्तित्व जब इन नाटक में टकराते हैं तो मोहन राकेश नारी को वर्चस्व देते हैं। यहां नारी प्रिया है तो संवेदनशील भी है और स्त्री है तो प्रभावी, उसका अपना एक व्यक्तित्व है। यह बात दूसरी है कि इसी से द्वंद्व उपजे हैं। यह द्वंद्व, तनाव, अतिरिक्त महत्वाकांक्षा, एक साथ, थोड़े समय में सब कुछ पा लेने की बेचैनी आधुनिक युग में मिला अभिशाप है।

2.4 आधे-अधूरे की प्रयोगधर्मिता

हिंदी नाट्य साहित्य के इतिहास में मोहन राकेश के नाटक कई स्तरों पर बहुत बड़े परिवर्तन एवं नये दिशा-संकेत लेकर आते हैं। उनके नाटकों ने न सिर्फ हिंदी नाटकों की संवेदना और रूपबंध में आमूल परिवर्तन के संकेत दिए, बल्कि हिंदी रंगमंच की दिशा को व्यापक रूप से प्रभावित किया। हिंदी रंग-परिदृश्य पर राकेश का आगमन उस समय हुआ जब स्वाधीनता के बाद सांस्कृतिक पुनर्जागरण की लहर पूरे देश को और जीवन के हरेक क्षेत्र को आंदोलित कर रही थी। राकेश के आगमन से पूर्व हिंदी नाट्य परिदृश्य में पर्याप्त जागरूकता एवं सक्रियता विद्यमान थी,

लेकिन इन सबके बावजूद हिंदी रंगकर्म को एक गंभीर और दायित्वपूर्ण कलात्मक एवं रचनात्मक क्रिया-कलाप के रूप में व्यापक प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई थी। राकेश के नाटकों ने हिंदी रंगकर्म को एक समर्थ एवं महत्वपूर्ण कला माध्यम के रूप में व्यापक स्वीकृति दिलाई और उसे राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित करने तथा अपनी बहुसंख्यक एवं वैविध्यपूर्ण प्रस्तुतियों से इसे दो-चार महानगरों के सीमित दायरे से आगे बढ़ाकर छोटे-बड़ो नगरों एवं कस्बों तक विस्तार देने में निर्णायक भूमिका का निर्वाह किया है। सुप्रसिद्ध निर्देश ब.व. कारंत की मान्यता है कि अल्का जी द्वारा प्रस्तुत 'आषाढ़ के एक दिन' से पहले हिंदी रंगमंच था ही नहीं। अत: स्पष्ट है कि आधुनिक हिंदी नाटक एवं रंगमंच की विकास परंपरा में मोहन राकेश के नाटक इस क्षेत्र में व्याप्त साहित्यिक एवं रंगमंचीय नाटक जैसे कृत्रिम एवं भ्रामक वर्गीकरण को तोड़कर एक नयी सार्थक रंग-परंपरा की शुरूआत करते हैं। साथ ही इसके माध्यस से हिंदी रंगकर्म को व्यापक स्वीकृति दिलाने एवं वयस्क बनाने का काम भी करते हैं। इस दृष्टि से क-भ्त में प्रकाशित राकेश का प्रथम नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' एक उल्लेखनीय दस्तावेज है जिसमें नाटककार ने पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियों से प्रभावित और आक्रांत हो रहे हिंदी रंगमंच के स्वस्थ विकास के लिए अपनी मौलिक रंगदृष्टि की तलाश पर जोर दिया है। मोहन राकेश की मान्यता है कि -

''... हिंदी नाटक रंगमंच की किसी विशेष परंपरा के साथ अनुस्यूत नहीं है। पाश्चात्य रंगमंच की उपलब्धियां ही हमारे सामने हैं। परंतु न तो हमारा जीवन उन सब उपलब्धियां की मांग करता है और न ही यह संभव प्रतीत होता है कि हम उस रंगशिल्प को व्यापक'' रूप से ज्यों का त्यों अपने यहां प्रतिष्ठित कर दें।

हिंदी रंगमंच को हिंदी भाषी प्रदेश की सांस्कृतिक पूर्तियों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना होगा, रंगों और राशियों के हमारे विवेक को व्यक्त संवेगों और स्पंदनों को अभिव्यक्त करने के लिए, जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं भिन्न होगा। इस रंगमंच का रूपविधान नाटकीय प्रयोगों के अ□यंतर से जन्म लेगा और समर्थ अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों इसका विकास होगा।

'आषाढ़ का एक दिन' नाटक की भूमिका के रूप में लिखे गए राकेश के उपर्युक्त वक्तव्य को हिंदी रंगमंच के लिए एक निजी रंगदृष्टि की तलाश के रूप में रेखांकित किया जा सकता है। इस रंगदृष्टि का पहला आयाम, जो राकेश के नाटकों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है, वह है : नाटक और रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध की पहचान तथा नाटककार एवं रंगकर्मी के अपरिहार्य पारस्परिक सहयोग की स्वीकृति। राकेश के अनुसार किसी भी सार्थक रंग प्रक्रिया में नाटककार, निर्देशक तथा अभिनेताओं का पारस्परिक सहयोग अनिवार्य है। हिंदी रंगमंच में नाटककार और रंगमंच के संबंध विधान को रेखांकित करते हुए राकेश ने लिखा है -

''एक तो अपने यहां, विशेष रूप से हिंदी में, उस तरह का संगठित रंगमंच है ही नहीं, जिसमें नाटककार के एक निश्चित अवयव होने की कल्पना की जा सके, दूसरे उस तरह की कल्पना के लिए मानसिक पृष्ठभूमि भी अब तक बहुत कम तैयार हो पायी है। रंचमंच का जो स्वरूप हमारे सामने हैं, उसकी पूरी कल्पना परिचालक और उसकी अपेक्षाओं पर निर्भर करती है।

नाटककार की स्थिति एक ऐसे 'अजनबी' की रहती है जो केवल इसलिए कि पांडुलिपि उसकी है, एक नाटक के सफल अभिनय के रास्ते में खामखाह अड़ंगा लगा रहा है।

... रंगमंच की पूरी प्रयोग-प्रक्रिया में नाटककार केवल एक अभ्यागत सम्मानित दर्शक या बाहर की इकाई बना रहे, यह स्थिति मुझे स्वीकार्य नहीं लगती। न ही यह कि नाटककर की प्रयोगशीलता उसकी अपनी अलग चार दीवारी तक सीमित रहे और क्रियात्मक रंगमंच की प्रयोगशीलता उससे दूर अपनी अलग चहारदीवारी तक। इन दोनों को एक धरातल पर लाने के लिए अपेक्षित है कि नाटककार पूरी रंग-प्रक्रिया का एक अनिवार्य अंग बन सके।''

'नाटककार और रंगमंच' नामक निबंध में व्यक्त राकेश के उपर्युक्त विचार न केवल नाटककार और रंगमंच के आपसी संबंध पर प्रकाश डालते हैं, बल्कि एक सफल एवं संपूर्ण रंग-प्रक्रिया में नाटककार, निर्देशक एवं अभिनेता के आपसी सहयोग पर बल देते हैं। राकेश के अनुसार रंग-प्रक्रिया एक निरंतर एवं जटिल प्रक्रिया है जिसके बीच नाटककार का एक अनिवार्य अंग की तरह होना और इस प्रक्रिया के क्रम में निर्देशक और अभिनेता की तरह ही शब्दों के स्तर पर बार-बार प्रयोग करते रहना आवश्यक है। इस तरह के आपसी सामंजस्य एवं निरंतर प्रयोग के द्वारा ही उस वातावरण की सृष्टि की जा सकती है, जिसमें रंगमंच की वास्तविक खोज शामिल हो -लेखन के स्तर पर भी और निर्देशन के स्तर पर भी। इस संदर्भ में राकेश द्वारा 'लहरों के राजहंस' के तीसरे अंक का पुनर्लेखन नाटककार एवं निर्देशक के रचनात्मक संबंध का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। प्रसिद्ध निर्देशक श्री श्यामानंद जालान के साथ नाटक की रिहर्सल के दौरान काम करते हुए, और नाटक की पूरी अन्विति में एक-एक शब्द को परखते हुए, इस नाटक के तीसरे अंक का पुनर्लेखन प्रस्तुतिकरण की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया गया।

कालातंर में राकेश ने निर्देशक के आरोपित आतंक और अतिरिक्त महत्व को अस्वीकार करते हुए 'नाटककार का रंगमंच' की धारण का समर्थन किया और अपने रंग संपूर्ण नाट्यालेखों के माध्यम से रंगकर्म में नाटककार की महत्वपूर्ण भूमिका को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। अपने समय में जयशंकर प्रसाद ने भी हिंदा रंगमंच के विकास के लिए इसी तरह की धारणा का समर्थन करते हुए लिखा था-

''रंगमंच के संबंध में यह भारी भ्रम है कि नाटक रंगमंच के लिए लिखे जाएं। प्रयत्न तो यह होना चाहिए कि नाटक के लिए रंगमंच हो, जो व्यावहारिक है। हां, रंगमंच पर सुशिक्षित और

कुशल अभिनेता तथा मर्मज्ञ सूत्रधार के सहयोग की आवश्यक है। इन सबके सहयोग से ही हिंदी रंगमंच का अभ्युत्थान संभव है।''

रंगमंच के संबंध में प्रसाद का उपर्युक्त वक्तव्य नई रंगदृष्टि की ओर संकेत करता है जो नाटक को महज लेखक या निर्देशक की रचना न मानकर उसे एक सहयोगी प्रयास के रूप में देखता है। नाटककर द्वारा शब्दों में लिखे नाट्यालेख को जब तक रंगकर्मी और निर्देशक मिलकर एक सांस्कृतिक-सामाजिक क्रिया कलाप के रूप में मंच पर सजीव नहीं करते, तब तक वह अपनी संपूर्णता को प्राप्त नहीं होता। आलेख की संपूर्णता एवं सार्थकता अनिवार्यत: उसकी प्रस्तुति से जुड़ी होती है, इसलिए नाट्यालेख एवं प्रस्तुति के बीच एक अभिन्न एवं अनिवार्य संबंध आवश्यक है। नाटककार के शब्दाश्रित आलेख को निर्देशक संकेतों और प्रतीकों की भाषा का इस्तेमाल करते हुए दृश्य-सज्जा, मंच-सामग्री, पार्श्व-संगीत, छायालोक एवं रूप विन्यास के साथ-साथ पात्रों के प्रवेश स्थान और उनकी गतियों एवं मुद्राओं द्वारा न केवल प्रभावी दृश्य-बिंब में परिवर्तित करता है, बल्कि अपनी विचारधारा और मंतव्य के अनुकूल आलेख में छोटे-बड़े परिवर्तन या संशोधन भी करता है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप जन्मी रचना को प्रस्तुति आलेख(प्रोडक्शान स्क्रिप्ट) कहा जाता है। नाटककार के मूल आलेख पर आधारित निर्देशक के इस प्रस्तुति आलेख को अभिनेता अपने सृजनशील अभिनय द्वारा अर्थात् अपनी देह और वाणी के माध्यम से, गतियों, मुद्राओं, भंगिमाओं और क्रियाओं द्वारा दृश्य-बिंबो में रूपांतरित करता है और सहृदय दर्शक की संवेदनशीलता उसके प्रभाव को ग्रहण करती है। इस प्रकार नाटककार द्वारा लिखित नाटक का प्रस्तुति आलेख में रूपांतरित एक जटिल एवं सहयोगी प्रयास की प्रक्रिया है, जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता एवं दर्शक की रचनात्मक भागीदारी अनिवार्य है। नाट्य रचना के सहयोगी प्रयास संबंधी इसी धारणा को राकेश ने बार-बार मुखर शब्दों में अभिव्यकित किया है। नाटक एवं रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध का उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं कि-

''बहुत बार ऐसा होता है कि रंगमंच की अपेक्षाओं के अनुसार नाटकों की रचना की जाती है, पर कई बार ऐसा भी होता है कि एक नाटक के लिए विशेष रंगमंच का संयोजन किया जाता है। परंतु दोनों ही स्थितियों में नाटककार के सामने रंगमंच के रूपविधान का स्पष्ट होना आवश्यक है। विचार और भावपूर्ण गुंफित भाषा नाटकीयता की कसौटी नहीं है। संवादों और घटनाओं को दृश्यों और अंकों में बांट देना ही पर्याप्त नहीं, नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ लिखता है, उसे आंख मूंदकर अपनी कल्पना के रंगमंच पर घटित होते हुए भी देखे। एक कृति के रूप में नाटक तभी सफलता प्राप्त कर सकता है जबकि उसमें रंगमंच पर अभिनीत होने की संभावनाएं निहित हो। लिखा गया नाटक एक हड्डियों के ढांचे की तरह है जिसे रंगमंच का वातावरण ही मांसलता प्रदान करता है।''

नाटक और रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध पर बल देने के साथ-साथ राकेश हिंदी के निजी रंगमंच के विकास की बात भी बराबर करते रहें। उनके अनुसार हिंदी रंगमंचका उत्थान पाश्चात्य रंगमंच की नकल में होने के कारण, उसका निजी व्यक्तित्व अभी तक निखर नहीं पाया है। उनके अनुसार हिंदी के नये रंग-शिल्प के विकास के लिए जिस तरह के रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य रंगमंच से कहीं अधिक खुला होना चाहिए। यह रंगमंच हमारी लोकरुचि और परंपरा दोनों को मान्यता देते हुए ही विकसित हो सकता है। हिंदी के इस निजी रंगमंच के विकास पर जोर देते हुए राकेश लिखते हैं कि-

''रंगमंच के विषय में सोचते हुए हम पाश्चात्य नाटक के रंग-शिल्प को दृष्टि में रखे और हिंदी के निजी रंगमंच के विकास की बात करें, इसमें असगंति ही प्रतीत होती है। हिंदी रंगमंच के विकास से नि:संदेह हमारा वह अभिप्राय नहीं है कि अत्याधुनिक सुविधाओं से संपन्न रंगशालाएं राजकीय या अर्ध-राजकीय संस्थाओं द्वारा बनवा दी जाएं, जहां हिंदी के नाटककारों की रचनाओं का प्रदर्शन किया जा सके। यह प्रश्न केवल आर्थिक सुविधां का नहीं, एक सांस्कृतिक दृष्टि का है। हिंदी का वास्तविक रंगमंच आयोजनों से नहीं, समर्थ नाटककारों और अभिनेताओं तथा दिग्दर्शकों के हाथों विकसित होगा।''

राकेश का उपर्युक्त वक्तव्य हिंदी नाटक एवं रंगमंच के वास्तविक उत्थान के लिए एक निजी रंगमंच के विकास की आवश्यकता को रेखांकित करता है। हिंदी के इस निजी रंगमंच का स्वरूप किस प्रकार का हो, इसका खुलासा करते हुए वे लिखते है -

''...हमारे दैनंदिन जीवन के राग-रंग को प्रस्तुत करने के लिए, हमारे ब्याह-त्योहारों के स्पंदनों को आकार देने के लिए जिस रंगमंच की आवश्यकता है, वह पाश्चात्य शैली के रंगमंच से कहीं अधिक खुला होना चाहिए। हरे या स्लेटी रंग की पृष्ठभूमि की बजाए हम हल्दी, चंदन और गेरू के रंगों का स्पर्श देकर ऐसी पृष्ठभूमि की रचना कर सकते हैं जो सभी तरह के दृश्यों को प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त और आंखों पर सुखकर प्रभाव छोड़नेवाली हो। आधुनिक रंगमंच की तरह कैनवस, गत्ते और लकड़ी की सेटिंग देने और पार्श्व संगीत तथा लाइट और साउंड के इफेक्ट इत्यादि की चर्चा बाद की चीज है।''

यह एक सुखद आश्चर्य ही है कि हिंदी रंगमंच के अभ्युत्थान की चर्चा करते हुए जयशंकर प्रसाद भी हिंदी के इसी तरह के रंगमंच के विकास पर बल देते हैं जो न केवल खुला और विस्तृत हो बल्कि भारतीय सामाजिक परंपरा के अनुकूल हो। प्राचीन भारतीय रंगमंच का हवाला देते हुए वे कहते हैं कि उस समय का रंगमंच इतना पूर्ण और विस्तृत होता था कि उसमें बैलों से जुते हुए रथ और घोड़ों के रथ तथा हेमकूट पर चढ़ती अप्सराएं दिखलायी जा सकती थी। इसी प्रकार रंगमंच पर आकाशगामी-सिद्ध-विद्याधरों के विमानों के दृश्य भी दिखलाएं जाते थे। इन दृश्यों को

दिखलाने में मोम, मिट्टी, तृण, लाख, अभ्रक, काठ, चमड़ा, वस्त्र और बांस के फंठों से काम लिया जाता था। हिंदी रंगमंच में भारतीय लोक परंपरा के संस्कारों के महत्व को रेखांकित करते हुए वे लिखते हैं -

''जिस तरह हम वास्तविक या प्राचीन शब्दों में लोकधर्मी अभिनय की आवश्यकता समझते हैं, ठीक उसी प्रकार से नाट्यधर्मी अभिनय को भी देश, काल, पात्र के अनुसार रंगमंच में संग्रहित रहना चाहिए। श्री भारतेंदु ने रंगमंच की आस्थाओं को देखकर जिस हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र स्थापना की थी, उसमें इन सबका समन्वय था। हिंदी रंगमंचकी इस स्वतंत्रता चेतना को सजीव रखकर रंगमंच की रचना करनी चाहिए। केवल नयी पश्चिमी प्रेरणाएं हमारी पथ प्रदर्शिका न बन जाएं। हां, इन सब साधनों से जो वर्तमान विज्ञान द्वारा उपलब्ध है, हमको वंचित भी न होना चाहिए।''

उपर्युक्त उद्धरण हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र और मौलिक सत्ता की स्थापना पर जौर देता है, जो अपने विकास क्रम में अन्य देशों के रंगमंच से निश्चय ही भिन्न होगा। मोहन राकेश की भी यही मान्यता है कि हर देश में रंगमंच का विकासक्रम वही नहीं होगा, जो विकसित देशों में है। राकेश के अनुसार इस प्रक्रिया में हम प्रयोगशीलता के नाम पर अंधाधुध अनुकरण करते हुए उसी विकास क्रम में से गुजरने का आभास दे रहे हैं, जो पहले पश्चिमी देशों में हो चुका है। यह तथाकथित प्रयोगशीलता हमें किसी वास्तविक उपलब्धि तक नहीं पहुंचाती है। रचनात्मक एवं सच्चा प्रयोग तो रंगमंच के शब्द और मानव-पक्ष को समृद्ध बनाकर ही किया जा सकता है, केवल बाह्य उपकरणों की नकल करके नहीं। रंगमंच में प्रयोगशीलता की स्थिति पर अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं -

''... हमशीलता के नाम पर अनुकरणात्मक प्रयोग करते हुए हिन्दी वास्तविक उपलब्धियों तक नहीं पहुंच सकते, केवल उपलब्धियों के आभास से अपने को अपनी अग्रगामिता का झूठा विश्वास दिला सकते हैं। यह दृष्टि बाहर से रंगमंच को एक नया और आधुनिक रूप देने की है, अपने निजी जीवन और परिवेश के अंदर से रंगमंच की खोज की नहीं।... तकनीकी रूप से समृद्ध और संश्लिष्ट रंगमंच भी अपने मन में विकास की एक दिशा है, परंतु उससे हटकर एक दूसरी दिशा दी और मुझे लगता है कि हमारे प्रयोगशील रंगमंच की भी वही दिशा हो सकती है। वह दिशा रंगमंच के शब्द और मानव-पक्ष को समृद्ध बनाने की है- अर्थात् न्यूनतम उपकरणों के साथ संश्लिष्ट प्रयोग कर सकने की।''

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राकेश हिंदी रंगमंच की स्वतंत्र एवं निजी सत्ता की स्थापना के पक्षधर थे, जिसका विकास भारतीय लोकजीवन की पहचान एवं हमारी अपनी रंग-परंपरा के आधार पर होगा। जीवन एक परिवेश तथा भारतीय रंग-परंपरा के तत्वों की खोज ही हमें वास्तविक नये प्रयोगों की दिशा में ले जा सकती है और एक अभिनव रंग-शिल्प को जन्म दे सकती है। विदेशी रंगमंच के बाह्य उपकरणों का अंधाधुंध आयात प्रगतिशीलता का झूठा विश्वास तो दिला सकता है लेकिन वास्तविक उपलब्धि तक नहीं पहुंचा सकता। राकेश की रंगदृष्टि की दूसरी

महत्वपूर्ण अवधारण रंग-प्रक्रिया को एक 'सहयोगी प्रयास' के के रूप में देखने की है, जिसमें नाटककार, निर्देशक, अभिनेता एवं दशकों की रचनात्मक हिस्सेदारी अनिवार्य है।

2.5 नाट्य समीक्षा की कसौटी पर 'आधे-अधूरे'

मोहन राकेश का यह नाटक कथ्य एवं शिल्प स्तरों पर पाठकों को आंदोलित करता है। इसमें विद्यमान युगबोध आज भी उतना ही प्रासंगिक है। यहां नाटक के कुछ ऐसे ही पक्षों का विश्लेषण किया जा रहा है-

2.5.1 कथानक

यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज है और विकृक मूल्यों, भ्रान्तियों, एवं दोगली नैतिकता का निर्गम अनावरण, जो उस रिक्तता के कारण है। इसके केंद्र में पत्नी के वे प्रयत्न है, जो वह अपने बिखरते परिवार को बांधने के लिए करती है।

आधे-अधूरे नाटक का विश्लेषण करते हुए उसकी बनावट और भावों पर त्रिपुरारी शर्मा लिखते हैं - 'आधे-अधूरे' नाटक का ढांचा बहुत सावधानी से बनाया गया है और बहुत ही बारीक विशिष्ट बुनावट है। नाटक के हर वाक्य, हर शब्द में दर्द, क्षोभ और विड□बना संवादों से झांकती है। नाटक उकसाता भी है और जबरन हमें अपने से जोड़ लेता है। अक्सर मन करता है विरोध करने का, कुछ कहने का, अफनी फटेहाल अधूरी जिन्दगी को पूरा करने का। हां, शहरी जिन्दगी के रोजमर्श जीवनयापन और आपसी व्यवहार का इस नाटक से गहरा नाता है। एक स्तर पर नाटक एक ऐसे परिवार के बारे में है जिसकी जड़ें कहीं नहीं जम पाई, यह एक ऐसी संस्कृति के बारे में भी है, मध्यवर्गीय धीरे-धीरे जिस पर आश्रित हो गए, ऐसी आकांक्षाओं की संस्कृति। इसमें वो गर्माहट व आश्वासन नहीं जो निश्चितता से पैदा होता है। अविकाशील समाज को सहारा देने वाले ढांचे अभी तक तैयार नहीं हुए। अकेलेपन की भयानकता और बदलाव को यह नाटक पकड़ता है, साथ ही एक विशेष परिवर्तन को भी रेखांकित करता है। सावित्री के मां-बाप का कहीं कोई जिक्र नहीं फिर भी जब कभी बिन्नी अपनी शादी-शुदा जिन्दगी से लौटना चाहती है तो उसके पास लौटने की एक जगह है। हालांकि यह वही घर है जिसके उसे ऐसा बनाया, फिर भी यही आसरा भी है और आदि बिंदु भी। टूटता हुआ सा घर फिर भी मजबूत है कि हर किसी को वापस खींचता है। एक मजबूरी और निर्भरता सबको एक दूसरे से बांधती है, वे अपनी कमजोरी से नफरत करते हैं इसलिए एक-दूसरे की आजादी को तोड़ते रहते हैं। एक सुखी परिवार के मिथक को यह नाटक साफ तौर पर तोड़ देता है। स्थिरता का आधार विवाह है, इस बात पर गहरे प्रश्न है, तीव्र विवाद है। कई अर्थों में यह आदमियत के अधूरेपन का नाटक है, सीमाहीनता और व्यक्तिवादिता और असहिष्णुता सब पर काबिज है, दूसरों की कमियों के साथ। जबकि खुद अपनी भी कोई गहरी पहचान नहीं। खुशी पैदा करने की नालायकी उतनी ही बड़ी है जितनी कि

खुशी पानेकी ख्वाहिश, कोशिशों की नाकामयाबी में एक अजब व्यंग्य है लेकिन जिंदगी के सब की तरह हर पीढ़ी को उसका तजुर्बा व पहचान खुद ही करनी पड़ती है।

यह नाटक अपने आप में एक पूरा संसार है, एक ऐसा संसार जो व्यक्ति ने रचाया है काले लिबास वाले व्यक्ति ने, जिसके तजुर्बे और जिसकी नजर का रंग इस संसार पर काबिज है। चूंकि उसने काला चुना है तो यह सारे स्थान में फैले जाता है। इसी में बाकी के पात्र स्थापित किए गए है। हालांकि सभी पुरुष इस मानसिकता के प्रतीक है, यह औरत सावित्री भी कई औरतों की तरह है, उन पुरुषों से व्यवहार करते हुए उनसे रिश्ते कायम करते हुए हर एख पुरुष से पेश आते हुए इस औरत के व्यक्तित्व के अलग ही रंग सामने आते हैं, जिससे वो बहुरंगी बन जाती है, और उतने ही रंगों में भी जाती है। बीवी, मां व नौकरीशुदा। वो रूमानियत की भी तलाश करती है, और अपनी वकालत भी खुद करती है। इस संसार में वह असहाय है और पुरुष से शक्ति प्राप्त करती है। किंतु महेंद्रनाथ खुद उसकी शक्ति से बंधा है, उसे आश्वासन या शक्ति नहीं दे सकता, जिसकी जरूरत है। वो कमजोर दीखता है लेकिन सावित्री और उस घर पर अपने अधिकारों को यह कायम रखता है, सभी विरोधों के बावजूद उसका दोस्त, उसका वकील, जुनेजा भी उससे हार जाता है। जुनेजा के शब्दों में स्वीकृत नैतिकता, जो सामाजिक रस्म रिवाज से पैदा हुई है, गुंजती है, उसमें दुहरापन है, फिर भी उसका कहना है कि अलग-अलग मुखौटों के नीचे चेहरा एक ही है। इसलिए सावित्री की तलाश बेमानी है। सावित्री नहीं मानती। वह केवल भूमिकाओं से बंधी औरत ही नहीं बल्कि, मानवीय आत्मा है जो अपने सुख की खोज, शांति और सुन्दरता और मंजिल में संतुलन की खोज स्वयं करती है। और ऐसा लगता है कि नाटक में होने वाली घटनाओं का दोष सावित्री का है, लेकिन यह इसीलिए कि वो ही जिम्मेदारी उठाती है तथा औरों से कम भगोड़ी है। हमने उसे परखने की कोशिश की है, उसे समझने की, उसकी कुंठाओं, इच्छाओं और टूटन को समझने की कोशिश। इस घर के बच्चे कोई अर्थों में संक्रमणकालीन समाज की पैदाइश है। अशोक को लगता है कि घर निश्चित रूप से टूटा है। बिन्नी की कोशिश है कि सब कुछ बंधा रह सके, इस प्रक्रिया में वह ऐसी धुरी बन जाती है जिसके गिर्द सारी स्थितियां घूमती है। किन्नी जैसे घर की आत्मा हो, तरस्ती हुई कि कोई उसे प्यार करे, कोई उसकी तरफ भी ध्यान दे। घर उन सब में प्रमुख है और वह घटनाओं को आकार देता है - यह चक्र चलता रहता है। क्या चलना ही चाहिए? शायद नाटक धीरे से, अस्पष्ट स्वर में यही प्रश्न करता है।

इस नाटक में समकालीन जीवन के अनेक धूप-छांही चित्र और ढांचे बुने हुए है।
'आधे-अधूरे' मोहन राकेश द्वारा एक जीवन्त नाट्य-रूप और हिंदी नाटक-लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम-बिन्दु है। यह उनके स्त्री-पुरुष संबंधों के अन्वेषण की एक कड़ी होते हुए भी यहां वह एक तरह की स्वीकृति पर पहुंच गए हैं। स्त्री और पुरुष के बीच पह्यरस्पर अनुकूलता नहीं है, और उनके संबंधों में एक बुनियादी संघर्ष सदा बना रहता है। मगर फिर भी इस संघर्ष को समझना और इसके साथ-साथ रहना भी पड़ता है, क्योंकि स्त्री और पुरुष पूरी तरह कभी अलग नहीं हो सकते और इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

नाटक की एक अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता इसकी भाषा है। इसमें वह सामर्थ्य है जो समकालीन जीवन के तनाव को पकड़ सके। शब्दों का चयन, उनका क्रम, उनका संयोजन-सब कुछ ऐसा है, जो बहुत संपूर्णता से अभिप्रेत को अभिव्यक्त करता है।

मोहन राकेश आधुनिक जीवन में व्याप्त अतृप्ति और महत्वाकांक्षाओं की दौड़ में हारते जीवन की व्यथा कथा कहकर यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि संतोष ही परम सुख है। सब कुछ एक साथ नहीं मिलता, सबको सब कुछ नहीं मिलता, लेकिन जो मिला है उसे प्यार से सहेजना ही शांतिपूर्ण जीवन की कुंजी है।

2.5.2 पात्र एवं चरित्र चित्रण

आधे-अधूरे के सभी पात्र भारतीय संस्कृति से भटके और पाश्चात्य संस्कृति से संक्रमित दिखाई देते हैं। महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने में लगी स्त्री, सावित्री पथभ्रष्ट प्रतीत होती है तो पुरुष महेन्द्रनाथ और अशोक नकारा, अकर्मण्य, आलसी और परजीवी प्रतीत होते हैं। आत्मसम्मान और पौरुष से हीन दिखाई देते हैं। किन्नी, बिन्नी, सावित्री सभी असंतुष्ट, अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए बेचैन गलत मार्ग पर चलती हुई, कुंठित, हीनता-ग्रंथि का शिकार और खुद में एकाकी दिखाई देती है। मोहन राकेश ने अन्य पुरुष पात्रों-सिंघानिया, जगमोहन, जुनेजा, मनोज सभी को भोग-विलास में रत, स्वार्थी, शोषक एवं कुसंस्कारी दिखाकर पाश्चात्य सता से आच्छादित समाज को प्रतिनिधियों की ओर संकेत किया है जो भावनाओं का, मित्रता का लाभ उठाकर केवल स्वयं का भला करते हैं। यह नाटक असंतुष्ट अधूरेपन से ग्रस्त पात्रों का दस्तावेज है। कथा के अनुकूल पात्रों का चयन किया गया है, जिनकी वेशभूषा, भाषा, संवाद एवं प्रवृत्ति प्रभावशाली है, जो नाटक को जीवंत बनाती है। आधुनिक मध्यवर्गीय समाज में जो विशेष रूप से महानगरों में बसते हैं, ऐसे चरित्रों की भरमार है। अनेक सावित्रियां, किन्नियां, महेन्द्रनाथ और अशोकों से समाज भर गया है। असंतुष्टि, आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति, ज्यादा पाने की होड़, कम समय और कम मेहनत कर सब कुछ एक साथ, ज्यादा से ज्यादा पाने की होड़ में लगे भटकते अशोकों, सावित्रियों से समाज पटा पड़ा है। यह पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के दुष्परिणाम हैं जिनको दिखाने के लिए ही संभवत: मोहन राकेश ने ऐसे पात्रों का चयन किया, जो कथा की कसौटी पर खरे उतरते हैं। चरित्रों के चयन की दृष्टि से भी यह सफल नाटक है।

महेंद्रनाथ

महेंद्रनाथ नाटक का मुख्य पुरुष पात्र है। यह सावित्री का पति है तथा बिन्नी, किन्नी और अशोक का पिता है। व्यवसाय में मित्रों पर निर्भरता और विश्वास के कारण सारा धन गंवाकर अब बेकार बैठा है। यह निकम्मा और दब्बू प्रतीत होता है, क्योंकि सावित्री की कमाई पर पलता है

और उसके पुरुष मित्रों से उसकी निकटता देखकर यदा-कदा व्यंग्य करता है। बहस करता है और दो-दो, तीन-तीन दिन के लिए घर से गायब होकर मित्रों के घर पड़ा रहता है। महेंद्रनाथ गैर जिम्मेदार है। वह न घर संभालने की जिम्मेदारी उठाता है न बच्चों की। अगर वह बच्चों को प्यार, अनुशासन एवं संस्कार सिखाता तो घर इतना बिखरा हुआ और तनावग्रस्त नहीं होता। नौकरी से लौटने पर सावित्री बच्चों को पिता के साथ बैठकर पढ़ते देखती, घर को व्यवस्थित देखती तो उसके अंदर कार्य करने की लगन और उत्साह बढ़ जाता। वह सारी थकान भूलकर पति और बच्चों के प्यार तथा सहानुभूति से जीवंतता का अनुभव करती। लेकिन महेंद्रनाथ घर का मुखिया होते हुए भी इस दायित्व को नहीं समझता। उसे यहां-वहां भटकते, बिगड़ते बच्चों की चिंता नहीं है। उसकी खींझ का एक मात्र केंद्र सावित्री है। महेंद्रनाथ पत्नी को अमानवीय तरीके से पीटता, प्रताड़ित करता हुआ क्रूर पुरुष भी है जो असफल पुरुषार्थ की हीनता को कम करने के लिए पत्नी को प्रताड़ित करता है। लेकिन वह हार जाता है, क्योंकि उसकी प्रताड़ना के कारण, उसके अमानवीय व्यवहार के कारण उसके चरित्र का खोखलापन उजागर होता है जिससे पत्नी और बच्चे न केवल दूर हो जाते हैं बल्कि कोई उसका सम्मान भी नहीं करता। सावित्री खुलेआम एक के बाद एक पुरुषों के साथ घूमती है। उसे दूसरे पुरुषों के साथ संबंध बनाकर महेंद्रनाथ को हीन दिखाने में मजा आने लगता है। वह घर छोड़कर जाने के लिए उतावली है और बार-बार कहती है कि जिस दिन कोई ठीक-ठीक आधार मिल गया, वह चली जाएगी। आधार के तात्पर्य ऐसा पुरुष जो पूर्ण हो, सक्षम हो, जो सावित्री की कामनाओं की कसौटी पर खरा उतरे। जब सावित्री किसी पुरुष को घर बुलाती है तो महेंद्रनाथ नपुंसक की तरह किसी काम का बहाना करके घर से बाहर चला जाता है। गृहस्वामी होते हुए भी उसका व्यवहार नौकर से भी बदतर है। वह स्वयं खीझ कर कहता है कि उसकी हैसियत एक रबर के टुकड़े के समान है।

महेंद्रनाथ में निर्णय लेने की क्षमता नहीं है। वह हर निर्णय अपने मित्रों से पूछ कर करता है। उसमें आत्मदृढ़ता भी नहीं है, वह बार-बार बहस करके घर छोड़कर जाता है लेकिन फिर सावित्री के पास लौट आता है क्योंकि वह उससे प्रेम करता है। अपनी कमजोरियों को महेंद्रनाथ समझता है इसलिए वह कहता है कि - मैं कीड़ा हूं जो इस घर को खोखला कर रहा है। मैं सबके पतन के लिए जि□मेदार हूं। मेरी हड्डियों में जंग लग गई है इसलिए पत्नी और बच्चों की उपेक्षा तथा तिरस्कार सहकर भी इस घर में पड़ा रहता हूं। महेंद्रनाथ के अंदर जीवन में कुछ भी हासिल कर पाने की पीड़ा और कुंठा है। वह ऐसा पुरुष है जिसने पत्नी को अपने अनुसार चलाने में ही अपना पुरुषार्थ समझा, पत्नी को अपने हाथों की कठपुतली बनाना चाहा लेकिन बुरी तरह हार गया। न केवल पत्नी बल्कि बच्चे भी उसके हाथ और अधिकार क्षेत्र से निकल गए। वह असंतुष्ट और निराश व्यक्ति है तथा पलायनवादी है। संघर्ष करके सब कुछ पा लेने का प्रयत्न करने के बजाय वह सिगरेट और शराब में डूबा गम गलत करता है। महेंद्रनाथ कमजोर व्यक्ति है, उसकी आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति, स्वार्थपरता उसे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति का प्रतिनिधि घोषित करती है। वह न अच्छा पति है न अच्छा पिता बल्कि वह श्रेष्ठ मनुष्य भी नहीं लगता। राकेश जी ने आधे-अधूरे के इस पात्र के माध्यम से मध्यवर्गीय, अभावग्रस्त, महत्वाकांक्षी लेकिन अकर्मण्य पुरुष की

छवि को प्रभावशाली तरीके से अभिव्यक्त किया है। पूरे नाटक में यह पात्र अपने लिजलिजेपन से केवल खीझ उत्पन्न करता है, सहानुभूति अर्जित नहीं करता। यह आधुनिक परिवेश के विकारों से ग्रस्त पात्र है।

अशोक

यह सावित्री और महेंद्रनाथ का बेटा है। नाटक में यह एक अल्पशिक्षित, आवारा, निकम्मा और उद्दण्ड पात्र है, जो अपनी मां से मर्यादाहीन वार्तालाप करके अपनी खराब छवि प्रस्तुत करता है। संघर्ष करती हुई मां का सहारा बनने की बजाय यह उसके कार्यों को गलत सिद्ध करता हुआ उस पर

आरोप लगाता है। यह एक कृतघ्न पात्र है जो मां के सारे अहसानों पर पानी फेर देता है यह कह कर कि ये जो कुछ करती है स्वयं के सुख के लिए करती है। यह कहता है, किन्नी दिनोंदिन बिगड़ रही है, बिन्नी मनोज के साथ घर से भाग गयी, पिता लड़कर घर से चले गए, मैं नकारा घूम ही रहा हूं। अगर सावित्री बच्ची और घर के लिए ही संघर्ष कर रही होती तो घर का और बच्चों का यह हाल नहीं होता। यह कटु भाषा में संवाद करता है। अशोक स्वयं कुछ कमाता नहीं, घर से उसे जेब खर्च मिलता नहीं, इसलिए वह जिस लड़की से प्रेम करता है उसे उपहार देने के लिए घर की चीजें उठा-उठाकर ले जाता है।

वर्तमान में आधुनिक युवा पीढ़ी स्वयं परिश्रम करने से बचती है तथा माता-पिता से अपेक्षा करती है कि वे उसकी जिंदगी को ऐशो-आराम युक्त बनाने के साधन उपलब्ध कराएं। ऐसा न हो पाने पर वह माता-पिता के प्रति क्रूरता, अस□यता से भरा व्यवहार करती है। अशोक ऐसा ही युवा है। जो आलसी और कर्मण्य है। पढ़ने में उसकी रुचि नहीं है, न ही कोई काम करना चाहता है। मां अपने अधिकारियों, पुरुष मित्रों से मिलवाकर उसे काम दिलाना चाहती है तो वह उनसे नहीं मिलना चाहता बल्कि मां को चरित्रहीन समझता है और स्वयं को श्रेष्ठ और स्वाभिमानी प्रदर्शित करता है। अशोक अपने पिता की ही तरह गैर जिम्मेदार है। वह अपने परिवार के प्रति किसी दायित्व को निभाना आवश्यक नहीं समझता। उसके मन में परिवार के लिए प्रेम भी दिखाई नहीं देता क्योंकि प्रेम होता तो वह जिम्मेदारी भी समझता। किन्नी को बिगड़ने से बचाता। मां का सहयोग करता। अशोक एक स्वार्थी युवा है। अपने अधूरेपन को भरने के लिए भी गलत रास्तों पर चल रहा है। अपने समवयस्क युवाओं के साथ रहने पर हीनता से ग्रस्त होने के कारण संभवत: यह कुंठित एवं विकृत आचार-विचार का प्रदर्शन करता है। वह सावित्री के बॉस का कार्टून बनाता है, व्यंग्य करता है। इससे यह तो पता चलता है कि वह बुद्धिमान है, लेकिन वह अपनी बुद्धि का प्रयोग नकारात्मक कार्यों में करता है। वह भी पिता की तरह घर में किसी को बताए बिना कई-कई दिनों तक घर से गायब रहता है।

आधे-अधूरे नाटक के हर पात्र की तरह अशोक भी असंतुष्ट भटकता, एकाकीपन से ग्रस्त पात्र है। कमरे में बैठकर फिल्मी अश्लील पत्रिकाएं पढ़ना तथा चित्र काट-काटकर रखना उसका शौक

है। उसे घर में घुटन का अनुभव होता है। वह मानता है कि इसी घुटन से तंग आकर उसकी बहन बिन्नी मनोज के साथ भाग गयी। वह स्पष्ट वक्ता है। बोलते समय यह नहीं सोचता कि उसके शब्दों से किसी का मर्म आहत हो सकता है। इसके दो उदाहरण दिए जा सकते हैं- एक तो वह बिन्नी से कहता है कि तू घर से इसलिए नहीं गई कि तुझे मनोज से प्रेम हो गया था- बल्कि मनोज के रूप में तुझे एक खिड़की मिली कि तू इस घर से बाहर जाकर चैन की सांस ले सके। दूसरा, वह मां के लिए कहता है कि बार-बार कहती है कि अब अकेले जिम्मेदारी नहीं सम्हाली जाती मुझसे, अब केवल अपने लिए जीऊंगी तो क्यों नहीं छोड़ देतीं जिम्मेदारी निभाना, हमें हमारे हाल पर छोड़कर जाएं जहां जाना हो। अशोक की कटुक्तियों में कहीं सच्चाई भी दृष्टिगोचर होती है। तब लगता है कि भले ही वह आवारा घूमता है, पढ़ता नहीं, कोई काम नहीं करता, लेकिन परिस्थितियों को समझने और विश्लेषण करने की उसमें भरपूर क्षमता है। यह नाटक वर्तमान समाज के मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त संघर्ष, तनाव, द्वंद्व, कुंठा के बीच पलती पीढ़ी के आक्रोश एवं मनोवृत्तियों को सफलतापूर्वक दर्शाता है। अशोक एक नकारात्मक छवि को प्रस्तुत करने वाला पात्र है जिसके परिप्रेक्ष्य में सावित्री के प्रति सहानुभूति बढ़ती है। दूसरी ओर यदि सकारात्मक दृष्टि से देखा जाए तो यही एक पात्र है जो मां के चरित्र के अनुरूप अपने चरित्र/व्यवहार का औचित्य सिद्ध करता है।

सावित्री

सावित्री एक मध्यवर्ग की आधुनिक नारी है। आधे-अधूरे में सावित्री नाटक का मुख्य आधार है। वही प्रमुख स्त्री है जिसे नायिका कहा जा सकता है। उसके अनेक संबंध है- पति महेंद्रनाथ और बॉस सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा-जिन्हें क्रमशः एक, दो, तीन, चार पुरुष कहा गया है। सावित्र के जीवन में ये आते-जाते हैं। सावित्री के माध्यम से राकेश आधुनिक स्त्री को चित्रित करना चाहते हैं जिसकी कई भूमिकाएं हैं। आर्थिक रूप में कई बार वह परिवार की धुरी है। घर के लिए वह कमा कर लाती है, पर गृहस्थी भी उसे ही देखनी पड़ती है, बच्चों की सारी जिम्मेदारी भी उसी के कन्धों पर है। कई पात्र उसके जीवन में आते हैं जिसका कारण उसका असन्तोष तो है ही, पर वह परिवार की बेहतरी भी चाहती है, जैसे बॉस सिंघानिया से बेटे अशोक की नौकरी के लिए निवेदन। नाटक में वह आदि से लेकर अन्त तक सक्रिय है और घटनाचक्र उसी के इर्द-गिर्द घूमता रहा है, तो इसके लिए समाजशास्त्रीय कारण तो हैं ही, उसका अहं भी है, परिस्थितियां भी हैं। वह मां है और अपने बेटे-बेटियों को भी ऊपर उठाना चाहती है। यह बात दूसरी है कि वह सफल नहीं हो पाती।

सावित्री के माध्यम से राकेश एक कामकाजी महिला को सामने लाते हैं, और इस दृष्टि से वह आधुनिक नारी है। राकेश ने आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर इस प्रकार के पात्र अपनी अन्य रचनाओं में

भी प्रस्तुत किए हैं। सावित्री आधुनिक नारी के रूप में अपना स्वतंत्र आर्थिक आधार रखती है। वह नौकरी करती है और इस आधार पर स्वतंत्र सामाजिक संबंध भी बनाना चाहती है। पति महेंद्रनाथ बेकार है, सावित्री के लिए नौकरी करने की यही विवशता नहीं है, स्वभाव से भी वह आर्थिक स्वतंत्रता चाहती है। आधुनिक भारतीय नारी के विषय में सोचा गया कि यदि वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो जाए तो उसकी स्थिति बेहतर हो सकती है। पर यह अधूरी दृष्टि है। नारी अपने शरीर में हो उसकी स्थिति में जब तक सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से नारी सम्मानित नहीं होती, स्थिति में परिवर्तन सम्भव नहीं। अब भी जैसे आधुनिकता के नाम पर हम मध्यकाल के सामन्ती समाज में जी रहे हैं- दहेजप्रथा, अनमेल विवाह, बलात्कार, स्त्री के प्रति निरादर भाव आदि आम बातें हैं। इन स्थितियों में आधुनिक भारतीय नारी ने आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होना चाहा तो क्या उसके 'स्टेटस' में सामाजिक दृष्टि से कोई गुणात्मक परिवर्तन हुआ? सम्भवत: नहीं। क्योंकि स्थितियां बाहर-बाहर बदलीं, ऊपर-ऊपर-मानसिकता में अधिक परिवर्तन नहीं आया और नारी के प्रति दृष्टि में प्राय: वही पिछड़ापन मौजूद है।

सावित्री के माध्यम से राकेश जिस आधुनिक नारी का चित्रण करते हैं, वह साधारण मध्यवर्ग की हैं, और परिवार के साथ तमाम उम्र समझौते करती है। तथाकथित इण्टलेवचुअल मध्य वर्ग की नारी आर्थिक रूप से स्वतंत्रता पाने के प्रयत्न में काफी हद तक सफल हुई, पर राकेश प्रश्न उठाते हैं कि वह संतुष्ट है क्या? सम्भवत: नहीं। सावित्री की 'ट्रैजिडी' ही यह है कि वह आर्थिक आधार बनाकर अपने जीवन को स्वतंत्रता देना चाहती है, पर ऐसा हो नहीं पाता। वह स्वयं भी टूट-बिखर जाती है, तरह-तरह के दबावों में रहती है। और परिवार तो विघटन के कगार पर है ही। आधुनिक नारी के रूप में उसकी सीमा यह है कि वह परिवार को अपने ढंग से चलाना चाहती है- पति से लेकर बेटा, बेटी और तथाकथित मित्रों तक को, पर यह स□भव नहीं, क्योंकि आजादी तो सभी चाहते हैं- स्कूल में पढ़ने वाली छोटी बेटी तक। सावित्री चाहती है कि घर ठीक-ठाक रहे, और ऐसा न होते देखकर झुंझलाती है, चीखती है। पति महेंद्रनाथ से कहती है, ''पता नहीं यह क्या तरीका है इस घर का? रोज आने पर पचास चीजें यहां-वहां बिखरी मिलती है।'' आधुनिक प्रवृत्ति के कारण सावित्री घर को यन्त्रवत चलाना चाहती है, व्यवस्था चाहती है। पर यह स□भव नहीं होता और वह खींझती चली जाती है, और इस क्रम में लगातार टूटती है।

सावित्री आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना चाहती है, चाहे अपनी इच्छा से अथवा विवशता में, पर यह उसके जीवन का प्रमुख प्रश्न है। उस पर पूरे परिवार का बोझ है जिसके कारण उसे यथार्थ से समझौते करने पड़ते हैं। उसकी स्वाभाविक इच्छा है कि पति महेंद्रनाथ कुछ काम करे, निठल्ले न बैठे रहें। अशोक को अच्छी नौकरी मिल जाए और बेटियों को अच्छे पति। सावित्री की इच्छाओं को हम आधुनिक प्रवृत्ति से प्रेरित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा भर नहीं कर सकते, इसके मूल में उसके पारिवारिक दायित्व हैं। वह बड़ी लड़की से दर्द से कहती है- ''... यहां पर परिवार में सब लोग समझते क्या हैं, मुझे? एक मशीन, जो कि सबके लिए आटा पीस-पीसकर रात को दिन और दिन को रात करती रहती है।'' सावित्री यदि समझौता करती है और उसमें स्खलन दिखायी देता है

तो इसीलिए कि वह परिवार के लिए खटती है। पुरुष दो (सिंघानिया) सावित्री के साथ विचित्र व्यवहार करता है। बार-बार कहता है कि : ''तुम (सावित्री) आओगी ही घर पर।'' सावित्री यह यातना सह जाती है क्योंकि उसे अपने बेटे अशोक के लिए नौकरी चाहिए। अशोक इस पुरुष को (सिंघानिया) को 'वनमानुष' कहता है। पर मां के रूप में सावित्री को बेटे-बेटियों के भविष्य की चिन्ता है, मूल्य कुछ भी चुकाना पड़े। इस दृष्टि से सावित्री समाज की सहानुभूति की भी अधिकारिणी है।

सावित्री परिवार की चिंता में है और जैसे अकेली ही लड़-झगड़ रही है। जब अशोक कहता है कि ऐसे गलत लोगों को क्यों बुलाती हो? तो सावित्री का उत्तर है- ''इसलिए कि किसी तरह इस घर का कुछ बन सके। मेरे अकेली के ऊपर बहुत बोझ है इस घर का जिसे कोई और भी मेरे साथ ढोने वाला हो सके।'' कितनी चिन्ताएं लेकर चल रही है सावित्री। निठल्ला पति, विद्रोही संतान, वह भी आपस में सौमनस्यरहित। बेटा अशोक छोटी बहिन को पीट देता है क्योंकि वह पड़ोस की लड़की सुरेखा से स्त्री-पुरुष संबंधों पर बात करती है। छोटी लड़की भाई के प्रेम-प्रसंग की चर्चा करती है कि ये अपनी प्रेमिका वर्षा के चक्कर लगाते हैं। परिवार का भार वहन करने वाली नारी के रूप में सावित्री अपने पति महेंद्रनाथ से पूर्णरूपेण असंतुष्ट है, वह किसी काम का नहीं। सावित्री में एक गहरा विक्षोभ है कि वह परिवार के लिए अकेली ही पिस रही है, फिर भी उसे टूटने-बिखरने से बचा नहीं पा रही है। परिवार में जैसे सब गैरजिम्मेदार हैं, सारा बोझ उसी पर। बड़े दर्द से सावित्री कहती है- ''मेरे पास अब बहुत साल नहीं जीने को। पर जितने हैं, उतने में इसी तरह और निभाते हुए नहीं काटूंगी। मेरे करने से जो कुछ हो सकता था, इस घर का, हो चुका आज तक। मेरी तरफ से अब अन्त है उसका-निश्चत अन्त।''

सावित्री अपने पारिवारिक दायित्वों की ओर ध्यान देती है पर उसके व्यक्तित्व में संग्रंथन, संयोजन सबको साथ लेकर चल सकने वाले नेतृत्व की कमी हो सकती है। इसके कारण समाजशास्त्रीय हैं और आर्थिक हैं। औद्योगिक, शहरी समाज बन रहे हैं, पारिवारिक इकाइयों का टूटना एक स्वाभाविक परिणति है। पहले टूटते हैं सामन्ती समाज के बने बड़े संयुक्त परिवार, फिर छोटे परिवार भी व्यक्तियों में बंट जाते हैं, छोटी-छोटी आत्मकेंद्रित इकाइयों में से यहां तक कि पति-पत्नी, माता-संतान, भाई-बहिन आदि संबंध भी टूट जाते हैं। उचित हो यह था कि महेंद्रनाथ और अशोक परिवार का बोझ ढोते, पर दायित्व आ पड़ा है सावित्री पर और वह इसे निभाने में ही टूटती है। यह बात दूसरी है कि उनके पास 'गोदान' की धनिया का जुझारूप ग्राम-व्यक्तित्व न होकर मध्यवर्ग की शहरी मानसिकता है, इसीलिए वह भीतर-भीतर टूटती है। इसमें मनोग्रन्थियां बनती हैं, पर जहां तक उसके जीवन का प्रश्न है, इसमें सन्देह नहीं कि पारिवारिक दायित्व उसे थकाते हैं। वह अपने बेटे से पीड़ा के साथ कहती है- ''ऐसे में मुझसे नहीं निभ सकता। जब और किसी को यहां दर्द नहीं किसी चीज का तो अकेली मैं ही क्यों अपने को चीथती रहूं रात-दिन? मैं भी क्यों न सुर्खरू होकर बैठी रहूं, अपनी जगह?''

सावित्र महेंद्रनाथ का वरण पति के रूप में करती है, पर स्वभाव से दोनों भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं। इनमें कुछ तो अपनी बनावट का रोल है, और कुछ परिस्थितियों की भी भूमिका है। कुल मिलाकर जो मानव व्यक्तित्व बनता है, उसमें व्यक्त एवं समाज दोनों का योग होता है, अर्थात सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव। सावित्री महेंद्रनाथ को फिजूल का आदमी समझती है। बेकार का, जो निठल्ला बैठा रहता है, कुछ करना ही नहीं चाहता। वह न खुद चलता है और न दूसरों को ही चलने देता है- 'नामुराद मोहरे की तरह है। पुरुष एक, महेंद्रनाथ पत्नी से खीझकर कहता है- ''अपनी जिन्दगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूं। फिर भी मैं इस घर से चिपका हूं, क्योंकि अंदर से मैं आरामतलब हूं, घर-घुसरा हूं, मेरी हड्डियों में जंग लगा है।'' सावित्री महेंद्रनाथ के साथ रहती तो है, पर मुक्त का कोई उपाय नहीं है। सावित्री महेंद्रनाथ के साथ-साथ रहने के लिए विवश है, जैसे। यह आज के ठण्डे, तनावपूर्ण स्त्री-पुरुष-संबंधों की एक झांकी है।

पति-पत्नी एक-दूसरे को सही ढंग से समझना नहीं चाहते। महेंद्रनाथ कहीं काम पर लगने की कोशिश में है- जुनेजा के पास आता-जाता है, पर सफल नहीं होता। सावित्री धीरे-धीरे मानसिक स्तर पर पति से दूर होती जाती है, उन दोनों में जैसे भावात्मक संबंध गायब हो जाते हैं- एक संवादहीन स्थिति। उनमें बातें होती हैं तो जली-कटी, आक्रोश भरी, जैसे हर वक्त झगड़ रहे हों। कुछ संवाद है-

''**पुरुष एक** (महेंद्रनाथ) तुम लड़ना चाहती हो?

स्त्री (सावित्री) तुम लड़ भी सकते हो इस वक्त, ताकि उसी बहाने चले जाओ घर से।... वह आदमी (पुरुष दो, सिंघानिया) आयेगा। तो जाने क्या सोचेगा कि क्यों हर बार इसके (सावित्री के) आदमी को कोई न कोई काम हो जाता है बाहर। शायद समझे कि मैं जान-बुझकर ही भेज देती हूं।

पुरुष एक : वह मुझसे तय करके तो नहीं आता कि में उसके लिए मौजूद रहा करूं घर पर।

स्त्री : कह दूंगी, आगे से तय करके आया करे तुमसे। तुम इतने बिजी आदमी हो, पता नहीं कब किस बोर्ड की मीटिंग में जाना पड़ जाय (तीखा व्यंग्य, महेंद्रनाथ की बेकारी पर)।

पुरुष एक : तुम तो बस, आमादा ही रहती हो हर वक्त।

स्पष्ट है कि 'आधे-अधूरे' में मोहन राकेश-महेंद्रनाथ के माध्यम से स्त्री-पुरुष के तनाव भरे संबंधों पर टिप्पणी करते हैं। उन पति-पत्नी में वह सौमनस्य नहीं जो दाम्पत्य जीवन को, अभावों के बावजूद भी पूर्णता देता है, इसलिए वे त्रस्त हैं और घर भी टूट रहा है। सावित्री अपने असंतोष में कई पुरुषों से बंधती दिखायी देती है - जुनेजा, जगमोहन और विवश स्थिति में बॉस सिंघानिया भी। सावित्री खोजती क्या है? पूर्ण मनुष्य! पर वह तो कल्पना है, दार्शनिकी की, कवियों की। महेंद्रनाथ को आधा-अधूरा व्यक्ति करार देते हुए वह कहती है- ''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो?... जब से मैंने उसे जाना

है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी को सहारा ढूंढ़ते पाया है।'' जैसे वह आधा-अधूरा आदमी है। एक पत्नी के रूप में सावित्री असन्तुष्ट है, भटकती है, पर उसे परितृप्ति नहीं मिलती। पूर्णत्व की इस मृग-मरीचिका के पीछे दौड़कर वह हताश सी हो गयी है। यह हमारे आज के मध्यवर्गीय स्त्री-पुरुष संबंधों पर तीखी टिप्पणी है।

सावित्री-महेंद्र के तनावपूर्ण संबंधों का प्रभाव पूरे घर पर पड़ता है। पूरा परिवार जैसे इस तनाव के कारण टूटता चरमराता दिखायी देता है। बेटे अशोक में तीव्र आक्रोश है, वह विद्रोह पर उतारू है, बेकार होकर भी वर्षा से प्रेम करता है। विचित्र संस्कार है उसके... आवारापन के। बड़ी लड़की किने हर चीज से असंतुष्ट है। भाई-बहन में कोई प्रेम-भाव नहीं, इसीलिए कि परिवार के अभिभावक सावित्री-महेंद्रनाथ में सौमनस्य नहीं है। बच्चे भी जानते हैं कि मां के कहां-कहां, कैसे संबंध है? कौन आता-जाता है। परिवेश का प्रभाव परिवार पर पड़ना स्वाभाविक है, इसे राकेश ने नाटक में भलीभांति दिखाया है। बिन्नी (बड़ी लड़की) एक स्थान पर पुरुष चार (जुनेजा) से कहती है- ''मैं तो बयान नहीं कर सकती कि कितने-कितने भयानक दृश्य देखे हैं इस घर में मैंने।'' वह घर को 'चिड़ियाघर का पिंजड़ा' कहती है। इस तरह पारिवारिक तनावों के कारण सभी सदस्य असंतुष्ट हैं- आधे-अधूरे।

मोहन राकेश ने सावित्री का चरित्र मध्यवर्ग से उठाया है और उसे एक परिवार का दायित्व दिया। पति को निठल्ला बनाया और संतान भी इस अर्थ में लापरवाह कि मां मैं कोई रुचि नहीं। राकेश ने सावित्र को शरीर अथवा यौन स्तर पर भटकती साधारण नारी के रूप में चित्रित नहीं किया, उसे एक व्यक्तित्व देने की कोशिश की। एक प्रकार से 'रैशनलाइज' किया है कि सावित्री पूर्णता चाहती है जो मिलना असंभव है। इस दृष्टि से सावित्री की यात्रा 'सही संबंधों की खोज की यात्रा' है। वह गृहस्थी की त्रासदी भी झेलती है और अपने मन की यातना भी। वास्तव में सावित्री 'व्यक्ति' नारी नहीं है कि राकेश उसमें 'आषाढ़ का एक दिन' की मल्लिका अथवा 'लहरों के राजहंस' की सुंदरी जैसे चारित्रिक रेखाएं भरने का अधिक सावधान प्रयत्न करते। 'आधे-अधूरे' में उन्होंने सावित्री को एक स्त्री माना है- और वह मध्यवर्ग की इन परिस्थितियों की कोई भी स्त्री हो सकती है। विवाह के पूर्व महेंद्रनाथ उसका प्रिय था, पर विवाह के अनंतर ऐसा क्या कुछ बदल गया कि सावित्री का मन उससे तिक्त हो जाता है। उसकी बालों में तिक्तता, कड़वाहट और व्यंग्य है, स्नेह बिल्कुल नहीं। क्यों ये संबंध धीरे-धीरे ठंडे, व्यर्थ होते गए हैं? राकेश ने उसके लिए सावित्री को घर-गृहस्थी के तनाव से गुजारा है- घर से लेकर बाहर तक।

मोहन राकेश 'आधे-अधूरे में एक और मध्यवर्ग की त्रासदी दिखाते हैं- पारिवारिक स्तर पर, दूसरी ओर यह भी बताते हैं कि सभी को सही संबंधों की खोज है और उसका सबसे अधिक प्रयत्न सावित्री में है। नाटक के लगभग अंतिम दौर में पुरुष नं. चार, जुनेजा आता है और बड़ी लड़की- बिन्नी से उसकी काफी बातचीत होती है जिससे सावित्री-महेंद्र के संबंधों के बिखराव

का पता चलता है। जब सावित्री स्वयं रंगमंच पर उपस्थित होती है तो जुनेजा के सामने वह लंबे वक्तव्य देती है, जहां उसकी मानसिकता उजागर होती है। सावित्री कहती है- ''...एक आदमी है। घर बसाता है। क्यों बसाता है? एक जरूरत पूरी करने के लिए। कौन सी जरूरत? अपने अंदर के किसी उसको एक अधूरापन कह लीजिए उसे... उसको भर सकने के लिए। इस तरह उसे अपने लिए... अपने में, पूरा होना होता है।'' इस क्रम में, अपने बहुत लंबे वक्तव्य में सावित्री बोलती चली जाती है लगातार और कहती है कि अपने ढंग से जीना चाहती है, सही संबंधों की तलाश है उसे। उसके शब्द है- ''वह एक पूरा आदमी चाहती है अपने लिए... एक... पूरा आदमी।'' और मोहन राकेश ने चुना है सावित्री को, पूर्णता की तलाश के लिए। सावित्री को भटकन हर उस व्यक्ति की भटकन हो सकती है जिसे पूर्णता की खोज है- यही सावित्री की 'ट्रैजिडी' है।

बिन्नी

बिन्नी सावित्री की बड़ी लड़की है और किन्नी छोटी। बिन्नी बी मां की तरह पूर्णता की खोज में है। राकेश दिखाते हैं कि बिन्नी उस मनोज के साथ भाग निकलती है जो उसकी मां का प्रेमी था। पर प्रेम और विवाह में अंतर है। विवाह करके बिन्नी भी मां की तरह असंतुष्ट है, कहती है... ''एक गुबार सा है जो हर वक्त मेरे अंदर भरा रहता है...'' या ''मन करता है कि आसपास की हर चीज को तोड़-फोड़ डालूं।'' ऐसा क्यों होता है कि जिस व्यक्ति का स्वयं वरण किया, उसी के साथ असंतोष। नागरिक समाज में उपजे एकाकीपन, अलगावपन, अतृप्ति आदि का संकेत मोहन राकेश अपने पात्रों के माध्यम से करते हैं। बिन्नी निस्संकोच है, अपना असंतोष मां से लेकर अजनबी तक के सामने व्यक्त करती है।''

यदि केवल यह कह दिया जाय कि बेटी मां के संस्कार पाये हैं, तो अधूरी बात होगी। यह एक पक्ष है। स्थिति यह कि पारिवारिक परिवेश में माता-पिता में जो तनाव बिन्नी ने देखा है, ''यदि उस पर उसका प्रभाव है तो यह चेष्टा भी होनी चाहिए कि वह उससे युक्त भी हो। पर ऐसा नहीं हो पाता। एक क्षण ऐसा भी आता है कि जब मां-बेटी एक-दूसरे को सहानुभूति देती है जैसे उनके जीवनवृत्त एक जैसे हों। दोनों ही प्रतिक्रियाओं में कई बार समानता मिल जाती है। माता-पिता दोनों बिन्नी से पूछते हैं कि वह मनोज के साथ खुश तो है न? पहले तो वह टालती है, फिर मां के सामने स्कूल जाती है, कहती है ''...शादी से पहले मुझे लगता था कि मनोज को बहुत अच्छी तरह जानती हूं। पर अब आकर... अब आकर लगने लगता है कि यह जानना, बिल्कुल जानना नहीं था। इससे बिने के मन का द्वंद्व पता चल पाता है। मां तरह-तरह के प्रश्न पूछती है, पर बेटी के पास कोई तर्कसंगत उत्तर नहीं है। छोटी-छोटी बातों पर तनाव क्यों हो जाता है? फालतूपन है क्या? बिन्नी छोटी-मोटी नौकरी करना चाहती है- क्यों? ''कुछ भी ऐसी बात जिससे एक बार तो वह (मनोज) अंदर से तिलमिला उठे।'' फिर खीझती है और कुछ नहीं कर पाती।

बिने मध्यवर्ग की नारी है, अपनी विसंगतियों से गुजरते हुए परेशान होती है। माता-पिता के संबंधों को देखकर उसमें भय जागता है। सोचती है, ''क्या यही नियति उसकी भी है?'' और तब वह टूटते स्वरों में से कहती है, ''...एक बार फिर खोजने की कोशिश कर देखूं कि क्या चीज है इस घर में, जिसे लेकर बार-बार मुझे हीन किया जाता है?'' और स्थिति यह कि इस पूर्णता की तलाश मां को भी है, बेटी को भी-यहां दोनों में समानता है। पर बिने का एक शुभ पक्ष है कि वह मनोज के साथ होकर भी माता-पिता, भाई-बहन से जुड़ी है। माता-पिता का तनाव उसे खलता है, वह अपने दु:ख को व्यक्त करती है। पर कोई कारगर भूमिका निभाने में स्वयं को असमर्थ पाती है। खुद तनाव से गुजरते हुए प्राय: इंसान दूसरों के सुख-दु:ख से अन्यमनस्क हो जाता है। पर बिन्नी ऐसी नहीं है। इसीलिए नाटककार राकेश ने उसे नाटक में काफी स्थान दिया है। बड़ी लड़की बिन्नी मां की सहेली जैसी हो जाती है और इसी तरह का व्यवहार करती है। मां के साथ सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहती है- ''जब से बड़ी हुई हूं, तभी से देख रही हूं। तुम सब कुछ सहकर भी रात दिन अपने को इस गर के लिए हलाक करती रही हो।'' पिता के प्रति भी उसकी सहानुभूति है। पर चाहने से तनाव नहीं मिट सकते। भाई को ममता देती है और छोटी बहन को भी। यह बिन्नी के व्यक्तित्व की प्रौढ़ता को भी सूचित करता है कि वह बातों को ठीक से समझती है।

2.5.3 युग-बोध

प्रत्येक रचनाकर अपने युग से प्रभावित होकर रचनाकर्म करता है। तत्कालीन समाज, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति और आवश्यकताएं उसकी रचना में प्रतिबिंबित होती है। मोहन राकेश की रचनाओं में भी यह युग बोध अपने चरम पर पूरी उत्कृष्टता के साथ दिखाई देता है। वे अपने युग से प्रभावित हैं और युग की नब्ज पकड़ कर चलते हैं। मोहन राकेश की दृष्टि अत्यंत सूक्ष्म एवं गहन तत्वों को पकड़ने की क्षमता रखती है। स्वातंत्र्योत्तर भातर के विकास की प्रक्रिया में हर क्षेत्र विज्ञान से, भौतिकवाद से प्रभावित है। पाश्चात्य संस्कृति को अपनाकर आधुनिक बनने की होड़ में भारतीय समाज का मध्यवर्ग सर्वाधिक पतित हुआ है। मध्यवर्ग वैसे भी हर परिवर्तन के लिए उत्तरदायित्वों के निर्वहन के लिए जिम्मेदार माना जाता है। उच्च वर्ग में शामिल होने की उसकी महत्वाकांक्षा उसे पथभ्रष्ट, कुंठित, असंतुष्ट, भटकन एवं एकाकीपन का शाप झेलने के लिए विवश करती है। युवा वर्ग काम करना अशोभनीय मानते हुए सोचता है कि वह काम करता हुआ निम्नवर्गीय लगेगा इसलिए अकर्मण्य हो जाता है। महत्वाकांक्षाएं उसे कल्पना लोक में घुमाती है और शिक्षा बुद्धि को भी विकसित करती है। इसलिए वह सुखों की परिभाषा को जान नहीं पाता और अशोक, सावित्री, बिन्नी, किन्नी, महेंद्रनाथ जैसे चरित्रों की सृष्टि होती है। वर्तमान युवा पीढ़ी

माता-पिता के प्रति कितनी कटु, अमर्यादित असभ्य भाषा का प्रयोग कर सकती है, यह अशोक के चरित्र से ही पता चलता है। आत्मनिर्भर स्त्रियों की मानसिकता का पता सावित्री के चरित्र में चलता है। हर मध्यवर्गीय आत्मनिर्भर स्त्री सावित्री नहीं होती, लेकिन समाज में ऐसी असंतुष्ट, भटकती, महत्वाकांक्षी स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है।

मोहन राकेश सावित्री और उसके गृहस्थ जीवन के माध्यम से तत्कालीन समाज का प्रतिबिंब दिखाते हैं। कलह, अशांति, कटुता, व्यंग्यात्मक संवाद, तनाव, द्वंद्व, असंतुष्टि, पलायनवादी प्रवृत्ति, अकर्मण्यता आदि वर्तमान युग की सर्वाधिक व्याप्त रहने वाली प्रवृत्तियां हैं जिन्हें इस नाटक में स्थान मिला है। युग-बोध की अभिव्यक्ति में नाटककार सफल रहा है। नाटक में काव्य की सफल अभिव्यक्ति है। यह युग के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला नाटक है जिसमें भाषा, ध्वनि, संवाद, पात्र निर्देशन सभी कुछ प्रभावशाली एवं मर्मस्पर्शी हैं। मोहन राकेश ने सामान्य विषय वस्तु के माध्यम से जटिल यथार्थ को सफलतापूर्वक प्रस्तुत किया है। संपूर्णता की तलाश में भटकती स्त्री सावित्री का चरित्र इस युग का सत्य है। कटुता, तनाव, द्वंद्व के कारण नीरस होते पारिवारिक संबंध, बिखरते गृहस्थ जीवनों की झांकी दिखाने वाला यह नाटक बहुत गरही बात कह जाता है।

2.5.4 अभिनेता

नाटककार ने एक ही अभिनेता द्वारा पांच पृथक भूमिकाएं निभाये जाने की दिलचस्प रंगयुक्ति का सहारा लिया है। महेंद्रनाथ की जगह पर जगमोहन को रख देने से स्थिति में कोई बुनियादी अंतर नहीं पड़ता, क्योंकि परिस्थितियों के ढांचे में व्यक्ति लगभग समान ढंग से बर्ताव करता है। इसी अनुभव पर बल देने के लिए कुछेक प्रदर्शनों में नाटक की शुरुआत के साथ एक सपाट कमरे में लगे मुखौटे को आलोकित करता था।

'आधे-अधूरे का कार्य-स्थल एक मकान की बैठक है, जिसमें सोफे, कुर्सियां, अलमारी, किताबें फाइलें आदि हैं। यह कमरा एक समय साफ-सुथरा रहा होगा, पर सालों की आर्थिक कठिनाइयों के कारण अब सब पर धूल की तह जम गयी है। क्राकरी पर चटखन है। दीवारें मटमैली हो गयी है। परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है। घर की हवा तक में उस स्थायी तल्खी की गंध है, जो पांचों व्यक्तियों के मन में भरी हुई है- ऊब, घुटन, आक्रोश, विद्रूप... दम घोंटने वाली मनहूसियत जो मरघट में होती है।

यह नाटक एक टूटते हुए मध्यवर्गीय के बारे में है। इसके केंद्र में है सावित्री, तीन बच्चों की मां और एक नाकामयाब पुरुष की पत्नी। परिवार को बचाने के लिए सारे उतार-चढ़ाव का सामना

करने के साथ-साथ वह संपूर्ण पुरुष की भी तलाश में है। उसका संपूर्ण मोहभंग, और उससे पैदा होने वाली मध्यवर्गीय अस्तित्व के स्तर पर हताशा, एक सुगठित स्थिति में उजागर हुई है जिसमें सावित्री के जीवन में आने वाले चार पुरुषों का अभिनय एक ही अभिनेता से कराने की प्रभावी रंगमंचीय युक्ति का प्रयोग किया गया है।

मोहन राकेश, 'आधे-अधूरे के माध्यम से नाट्य लेखन को कई दिशाएं प्रदान करते हैं, उदाहरणार्थ नाटकीय संघर्ष पैदा करने के लिए उन्होंने अतिनाटकीयता का सहारा न लेकर एक आम, साधारण विषय-वस्तु का चुनाव किया है।

'आधे-अधूरे' में मोहन राकेश द्वारा नाट्य संरचना की दृष्टि से अपनी लोक परंपरा से लिया गया सूत्रधार का प्रयोग, जो सभी चरित्रों का अभिनय करता है, आधुनिक हिंदी नाट्य लेखन में महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इस परंपरा का निर्वाह पूरे नाटक की मूल विषय-वस्तु के ताने-बाने में इतने कौशल के साथ किया गया है कि आरोपित न प्रतीत होकर नाटक के कथ्य का एक अनिवार्य अंग बन जाता है।

इस प्रकार 'आधे-अधूरे' की संरचना में सही अर्थों में यथार्थवादी भाषा, विषय-वस्तु, चरित्र चित्रण, ध्वनियां आदि का कुशलता से सामंजस्य किया गया है और इसी जटिल रूप का इस्तेमाल प्रस्तुति में किया गया है। प्रस्तुति लोक परंपरा को आगे बढ़ाते हुए छः सदस्यों का कोरस भी शामिल किया गया है, जो सूत्रधार का विकसित रूप है। कोरूस चरित्रों की आन्तरिक भाषा को शब्द देता है तथा कई बार मंच निर्देश भी बोलता है। इस प्रकार नाटकीय स्थितियों पर अपनी प्रतिक्रिया तथा प्रबल मनोभावों के प्रति तटस्थ दृष्टि भी प्रदान करता है। अप्रिय एवं कर्कश संगीत का प्रयोग मात्र नाटकीय चरमोत्कर्ष के लिए ही नहीं है, बल्कि चरित्रों के जीवन में व्याप्त कटुता एवं कर्कशता को प्रकट करने के लिए है। संगीत, वातावरण की ध्वनियों से इतना जुड़ा हुआ है कि किसी चरित्र के स्वर से अथवा किसी वस्तु विशेष की आवाज से शुरू या खत्म होता है। कई स्थल पर यथार्थवादी मनोभाववादी की अतिरंजना के लिए भी शुद्ध ध्वनियों का प्रयोग किया गया है।

इस प्रस्तुति में घोर यथार्थवादी एवं अतिनाटकीय तत्वों का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया गया है जिसके माध्यम से नाटक का मूल कथ्य अपनी पूरी प्रखरता से उजागर होता है, जिसका संबंध एक मध्यवर्गीय परिवार की भयानक स्थिति, उनका झूठा दिखावा और पारिवारिक संबंधों की असफलताओं के सत्य का सामना न करने की नपुंसकता से है। 'आधे-अधूरे' हमारे यथार्थ का संपूर्ण प्रतिबिंब है तथा नाटककार की असमझौतावादी साफगोई की रोशनी में प्रकाशित चरित्रों में दर्शक अपने-आपको देखकर अंदर ही अंदर हिल उठता है।

2.6 आधे-अधूरे की नाट्यभाषा

मोहन राकेश की रंगदृष्टि का सबसे महत्वपूर्ण आयाम एक नई नाट्यभाषा की अनवरत तलाश है जो अपने समय के जटिल जीवन अनुभव को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्त कर सके। नाट्यभाषा की बनावट की सही पहचान हिंदी नाटक को उनका सबसे बड़ा योगदान कहा जा सकता है। प्रसिद्ध नाटककार आइनेस्को की मान्यता है कि कलाकार भाषा को बदलकर ही पुराने कथानकों को नया रूप दे सकता है। उनके अनुसार चली आती हुई भाषा के संश्लिष्ट अनुभव को व्यक्त करने के लिहाज से नाकाफी है अत: एक नई नाट्यभाषा की तलाश आवश्यक है। एक ऐसी भाषा जो दृश्य हो, जो मंच की भाषा हो, ज्यादा प्रत्यक्ष, ज्यादा विश्वसनीय और अपने प्रभाव में शब्दों से कहीं अधिक शक्तिशाली।

2.6.1 रंगमंच के अनुकूल शब्दों का चयन

हिंदी नाट्य साहित्य में नाटक एवं रचनात्मक भाषा के संबंध की पूरी निष्ठा के साथ तलाश एवं इस प्रक्रिया में एक नई नाट्य भाषा के विकास का प्रयास सर्वप्रथम राकेश में ही दिखाई देता है। साहित्य में भाषा के पक्ष को लेकर राकेश कितने जागरूक थे, यह 'बकलम खुद' में अभिव्यक्तउनके इस वक्तव्य से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है-

''अभिव्यक्ति के लिए भाषा से उलझने की समस्या हर लेखक के सामने आती है- अर्थात हर सचेत और अनुभूति प्रवण लेखक के सामने। समस्या नहीं आती तो उन लोगों के सामने, जो अनुभूति और चिंतन की दृष्टि से अंदर से बिल्कुल साफ हैं या केवल कुछ एक बेसिक अनुभूतियों और विचारों के दायरे में सोचते रहते हैं। उनके मन की हर बात पहले से ही किसी न किसी की कही और सोची हुई बात होती है। हजारों बार कही और सोची हुई बातों की कार्बन कॉपी तैयार करने में समस्या पैदा ही कहां होती है? जब एकाध विचार और दो-एक अनुभतियों से आगे व्यक्ति का मन यात्रा ही न कर पाता हो तो उलझे हुए रास्ते पार करने की समस्या ही नहीं होगी, उसके लिए साधन ढूंढ़ने की बात तो बाद में आती है।''

मोहन राकेश का उपर्युक्त वक्तव्य भाषा के संबंध में उनकी जागरूकता को स्पष्ट कर देता है। उन्होंने तब लिखना शुरू किया जब देश मोहभंग के काल से गुजर रहा था। स्वतंत्रता के बाद एक ओर देश का विभाजन जैसी राजनीतिक विपत्ति थी जिसके लाखों लोग शिकार हुए तो दूसरी ओर उससे भी अधिक दर्दनाक थी विभाजन के बाद की परिस्थिति एवं जीवन के सभी पहलुओं में बढ़ता पतन। इस मूल्यहीनता की स्थिति ने न केवल करोड़ों लोगों को प्रभावित किया बल्कि अधिकांश को अंदर से खोखला कर दिया। जाहिर है स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न हुई जीवन और अनुभूतियों की इस जटिलता को पारंपरिक भाषा पूरी प्रामाणिकता के साथ अभिव्यक्त नहीं कर

सकती थी। जो भाषा राकेश को विरासत में मिली थी, वह मु□यत: प्रसाद की अभिजात्य भाषा थी। यह भाषा काव्यात्मक होते हुए भी समसामयिक जीवन के रंग को पकड़ पाने में पूरी तरह समर्थ नहीं थी। अत: एक ऐसी नाट्यभाषा की तलाश आवश्यक थी जो रंगानुकूल होने के साथ-साथ समसामयिक जीवन की जटिलता को प्रमाणिक रूप से अभिव्यक्ति दे सके।

एक शिल्पकार की तरह राकेश अपने शब्दों, वाक्यों और मुहावरों को निरंतर संशोधित, परिवर्तित करते रहते थे। वह 'शब्दो को रंगमंच का बुनियाद एवं अनिवार्य तत्व मानते थे, इसीलिए एक सटीक एवं रंगानुकूल नाटकीय शब्द की तलाश में वे लगातार करते रहे। राकेश का यह कथन कि 'रंगमंच मूलत: एक श्रव्य माध्यम है, नाटक के संबंध में चली आ रही परंपरागत धारणा को बिल्कुल छिन्न-भिन्न कर डालता है। लेकिन उनका वक्तव्य महज चौंकाने वाली कोई युक्ति नहीं है, बल्कि भाषा और शब्द को लेकर उनके द्वारा किए गए गंभीर शोध पर आधारित है। अपने अप्रकाशित नाटक 'पैर तले की जमीन' में एक स्थान पर वह तीन भिन्न दृश्यों को एक दूसरे में घुलते हुए दिखाना चाहते थे। इसके लिए उनका फुटनोट इस प्रकार है-

''इन्हें थिएट्रिकली प्रतिष्ठित करो, शब्दों और ध्वनियों के द्वारा।''

राकेश का उपर्युक्त कथन नाटककार की इस मान्यता को स्पष्ट करता है कि शब्द और ध्वनियां ही रंगमंच की जान है, न कि बिंब, जैसा कि पारंपरिक रूप से समझा जाता रहा है। अपनी इस मान्यता को स्पष्ट करते हुए राकेश लिखते हैं-

''शब्दों और ध्वनियों को नाटकीय रंगमंच का आधार मानने का अर्थ बिंब का अस्वीकार नहीं है। अर्थ केवल इतना है कि इस माध्यम की आंतरिक निरंतरता शब्दों और ध्वनियों पर निर्भर करती हैं। सिनेमा मूलत: एक दृश्य माध्यम है जहां शब्दों और ध्वनियों की एक सहायक अत: गौण भूमिका है। वहां दृश्य की अपेक्षा के अनुसार शब्दों और ध्वनियों का संयोजन होता है और उस माध्यम की प्रगति को देखते हुए लगता है कि आगे चलकर उसकी आधारभूत विशेषता और रेखांकित होगी। इसके विपरीत रंगमंच मूलत: एक श्रव्य माध्यम है। रंगमंच में दृश्य की आपेक्षिक स्थिरता के बावजूद जो एक आंतरिक गति रहती है, वह शब्दों और ध्वनियों की निरंतरता से ही उपजती है, क्योंकि यहां जो 'देखा जाता है वह सुने जा रहे' का ही रूपांतर होता है।''

राकेश का उपर्युक्त वक्तव्य रंगमंच में शब्द की बुनियादी भूमिका को उद्घाटित करता है। उनके अनुसार दृश्य नाटक का अनिवार्य तत्व होते हुए भी वह अपने आप में स्वतंत्र नहीं है। वह शब्द की ही परिणति है। रंगमंच की इस शब्द निर्भरता के कारण प्रत्येक नाटककार की सफलता शब्दो और ध्वनियों के सार्थक संयोजन में निहित होती है। राकेश के अनुसार नाटक में अलग से दिए गए रंग निर्देश या प्रस्तुत की गई सामग्री उतनी महत्वपूर्ण नहीं होती, जितना शब्दों और

ध्वनियों का संयोजन, क्योंकि रंगमंच में बिंब का उद्‌भव शब्दों के बीच से ही होता है। उनके अनुसार किसी भी नाटक की सफलता नाटकीय प्रयोजन से युक्त शब्दों के सटीक प्रयोग पर निर्भर करती है। शब्दों का अतिरिक्त तथा अनपेक्षित प्रयोग वास्तविक रंग-सिद्धि में बाधक ही सिद्ध होता है। रंगमंच में शब्दों की इस महत्वपूर्ण भूमिका को उद्‌घाटित करते हुए राकेश लिखते हैं-

''रंगमंच की शब्द निर्भरता का अर्थ रंगमंच में शब्द की आधारभूत भूमिका है। इस भूमिका का निर्वाह माध्यम की सीमाओं में शब्दों के संयम से हो सकता है, उनके अतिरिक्त तथा अनपेक्षित प्रयोग से नहीं। शब्दों की बाढ़ से, या बिना नाटकीय प्रयोजन के प्रयुक्त शब्दों से, रंग-सिद्धि संभव नहीं, क्योंकि बिंब को जन्म देने के साथ-साथ उस बिंब से संयोजित रहने की संभावना भी शब्दों में होनी आवश्यक है।''

शब्दों और ध्वनियों को रंगमंच का बुनियादी तत्व मानने के कारण ही राकेश आजीवन नाटकीय शब्दों की तलाश में लगे रहे। उनके सभी नाटक रचनाकार की शब्द संबंधी मान्यता पर खरे उतरते हैं तथा नाटकीय संभावना से युक्त शब्दों के सटीक प्रयोग का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। राकेश की रचनाओं में पहली बार भाषा नाटककार के अतिरिक्त शब्द-मोह, नाटकीय दृष्टि से निरर्थक शब्दजाल के आग्रह और आलंकारिकता के लबादे से सहसा मुक्त हुई है। यद्यपि अपने पहले दो नाटकों 'आषाढ़का एक दिन' एवं 'लहरों के राजहंस' में संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक भाषा के प्रयोग के कारण नाट्य-समीक्षकों ने राकेश को प्रसाद की परंपरा का वाहक माना है, लेकिन कई मायनो ंमें राकेश की नाट्यभाषा, प्रसाद की नाट्यभाषा से बुनियादी रूप से भिन्न है। प्रसाद के नाटकों में काव्यात्मकता और अलंकारप्रियता कई स्थानों पर नाट्यभाषा को बांधती हुई चलती एवं रंग-सिद्धि में बाधा उत्पन्न करती है वहीं राकेश की भाषा साहित्यिक होते हुए भी नाटकीय संभावना से युक्त है एवं आम बोलचाल के काफी निकट है।

'आधे-अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने एक अनूठा प्रयोग यह किया कि एक मु□य पुरुष को पांच भूमिकाएं करने के लिए नियुक्त किया। पहले वह काले सूट वाला सूत्रधार बनता है फिर एक के बाद एक ऊपरी वस्त्र बदल-बदल कर रंगमंच पर आता है- महेंद्रनाथ, सिंघानिया, जगमोहन और जुनेजा बनकर। किन्नी, बिन्नी अशोक की वेशभूषा में परिवर्तन नहीं होता केवल सावित्री दूसरे अंक के लिए साड़ी बदलती है। यह खुले एवं बंद नाट्यगृहों दोनों में प्रभावशाली तरीके से मंचित होने वाला नाटक है। मध्यवर्गीय अभावग्रस्त घर को दिखाने के लिए टूटा-फूटा सामान और फर्नीचर प्रयोग किया गया । पात्रों को बिना मेकअप के प्रस्तुत किया गया। ध्वनि,

प्रकाश और संवाद का संयोजन अद्‌भुत था। धाराप्रवाह बोले जाने वाली बातों की गहनता भी छूती है और धारावाहिक रूप से बाले जाने वाले छोटे-छोटे वाक्यों का प्रभाव भी अमिट बन रहता है।

मोहन राकेश ने मंच और पात्रों की चमक-दमक के स्थान पर यथार्थ प्रस्तुति देने का प्रयास किया है जो मध्यवर्गीय परिवार के संघर्ष और अनुभूतियों को जीवंत बनाता है। मोहन राकेश प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। नाटक के कथ्य को आम जनता तक पहुंचाने के लिए उन्होंने सरल, आम बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। अत: जहां-जहां इस नाटक का मंचन हुआ वहां उसने सफलता, ख्याति और प्रशंसा प्राप्त की। हिंदी नाटककार समकालीन स्थितियों और जीवन से जुड़े चरित्रों को लेकर एक सफल नाटक लिख सकता है, यह बात मोहन राकेश ने सिद्ध कर दिखायी। तीन बच्चों की मां सावित्री का चरित्र दर्शकों को गहराई तक झकझोर देता है। असफल, नाकारा पति महेंद्रनाथ, और सावित्री की भटकन दर्शकों को आम जीवन के बीच ले जाती है।

कलकत्ता के श्यामानंद जालान लिखते हैं- ''आधे-अधूरे'' मोहन राकेश द्वारा रचित एक जीवन्त नाट्य रूप और हिन्दी नाटक लेखन में नाटकीय संवाद की खोज का चरम बिंदू है।'' नाटक में उपस्थित दृश्य जैसे सामानों पर छाई धूल और सावित्री का उसे झाड़ना संकेतात्मक है कि रिश्तों पर गलतफहमी की धुंध पड़ गयी है जिसे सावित्री साफ करने का प्रयास करती है। फटी पत्रिकाएं, दीमक लगी फाइलें, टूटी प्लेटें, बिखरा सामान, घर में छाई कुंठा, तनाव और उदासी को व्यक्त करते हैं। कलात्मक दृष्टि से देखने वालों ने इसे दोष भी कहा किंतु यथार्थ को जानने-परखने की दृष्टि से लैस दर्शकों की भीड़ ने राकेश जी की प्रयोगधर्मिता को सराहा। आधे-अधूरे अपने युग की सफलतम कृति है, जिसे दर्शनीयता और पठनीयता दोनों दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है।

2.6.2 भाषा शैली

भाषा और संवाद का विकास इस नाटक में शब्दों के चुनाव और विन्यास के रूप में दिखाई देता है। अभिव्यक्ति, बल्कि निश्चित और प्रभावकारी ढंग से संप्रेषण की निरंतर ललक। अर्थ और ध्वनि दोनों के माध्यम से न सिर्फ विचार बल्कि भावावेग के संप्रेषण की भी। 'आधे-अधूरे' की प्रभावी भाषा उसी खोज की उपलब्धि है, जो 'लहरों के राजहंस' के प्रथम लेखन के बाद शुरू हुई थी और उस नाटक के संशोधित रूप में मौजूद है, और जो 'आधे-अधूरे' में खिलकर आयी है।

'आधे-अधूरे' की बहुत बड़ी विशेषता नाटक की रंगमंच की भाषा के प्रति गहरी समझ है। रंगमंच, दृश्य एवं श्रव्य तत्वों का माध्यम है, और इस क्षेत्र में मोहन राकेश, नई, जमीन रचते हैं।

नाटकीय उपलब्धियों के लिए अमूर्त काव्य आदि साहित्यिक रुढ़ियों का मोह छोड़कर 'आधे-अधूरे' रोजमर्रा के जीवंत यथार्थ को प्रस्तुत करता है। यह यथार्थ अपने आप में जटिल है जो कि सूत्र में बंधना या परिभाषित होना स्वीकार नहीं करता है किंतु साथ ही अपनी लगातार परिवर्तनशीलता तथा रहस्यात्मक विशेषता के कारण उत्तेजक है। यह अपरिभाषित एवं जटिल यथार्थ केवल इस नाटक के कथ्य का ही नहीं बल्कि इसमें प्रयुक्त भाषा का भी निर्धारण करता प्रतीत होता है। इस प्रकार कथ्य एवं रूप ने एकाकार होकर इस नाटक को रूप दिया है जिसके आधार पर इसे आधुनिक यथार्थवादी नाट्य लेखन में 'क्लासिक' की संज्ञा दी जा सकती है।

नाटक की भाषा सादी, सच्ची और एकसमान तनाव-भरी है। इसमें एक ओर जहां बोलचाल की भाषा की लय और उसकी बुनावट है, वहीं दूसरी ओर सहज प्रवाह एवं स्वत: स्फूर्तता भी है। अनुभूति की सूक्ष्मता को प्रकट करने वाले ध्वनि और मौन के समन्वय की गहरी समझ रखने वाला केवल एक श्रेष्ठ रचनाकार ही वह उपलब्ध कर सकता था जो राकेश ने किया है। संभवत: मुखर मौन में भी नाटक-तत्व अधिक रहता है- सघन संवाद की अपेक्षा अनुच्चरित विचारों में। जैसा कि संगीत में है जो मौन ध्वनि की व्यवस्था का एक भाग होता है। 'नाटकीय शब्द' के लिए राकेश का स□मोहन उनकी खोज का एक हिस्सा है- अस्तित्व के जटिल, गहरे एवं सूक्ष्म स्तरों की अभिव्यक्ति के लिए, और उस भाषा को पकड़ने के लिए, जिसमें हमारे समय के विखंडित व्यक्तियों के प्रामाणिक स्वर बोल सकें।

इस नाटक की शक्ति घोर साहित्यिक एवं कृत्रिम भाषावली से मुक्त है। यह वो सहज भाषा है जो हम रोजमर्रा की जिंदगी में बोलते हैं, किंतु जिसमें हमारे सभी अनकहे भावों की कसमसाहट मौजूद है और प्रकटत: बिना काव्यात्मक होते हुए भी जिसमें काव्य का अनुपम सौंदर्य है। संप्रेषणीयता के साथ-साथ भाषा में ध्वनियों की सजगता भी शामिल है। ध्वनियों, जैसे अशोक की कैंची की ध्वनि, टिनकटर, कप-प्लेटों की या महेंद्र के फाईल झटकने की आवाजें आदि जो एक ऐसा वातावरण निर्मित करती है जिसमें चरित्रों की आंतरिकता मुंह से बोलने की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठती है। इन आवाजों और कुछ दृश्य बिंबों के अतिरिक्त मोहन राकेश ने, अपने मंच-निर्देश के अनुसार कुछ अन्य रोजमर्रा के हाव-भावों का प्रयोग प्रतीकात्मक रूप से किया है- जैसे सावित्री टेबल कवर को खींच कर उसमें अपना मुंह छिपा लेती है या परेशान सी अपने पर्स को टटोलती है। इन भावों में चरित्र की आंतरिक वेदना एवं खोयापन अपनी पूरी शक्ति एवं समग्रता से प्रकट होता है।

गतिविधि

मोहन राकेश की प्रयोगधर्मिता पर अपने मित्रों के साथ मिलकर एक परिचर्चा का आयोजन करें।

क्या आप जानते हैं ?

मोहन राकेश को 'आधे-अधूरे' और 'आषाढ़ का एक दिन' की रचना के लिए सन् 1968 में 'संगीत नाटक अकादमी' भारत सरकार द्वारा स□मानित किया गया।

2.7 सारांश

'आधे-अधूरे' महानगरीय आधुनिक भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में व्याप्त बिखराव एवं संत्रास की कहानी है। यह स्त्री-पुरुष के बीच लगाव एवं तनाव, आसक्ति एवं विरक्ति का दस्तावेज है, जो आडंबर हीन, अकृत्रिम शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसका कथानक एक मध्यवर्गीय घर पर केंद्रित है। इस घर में एक स्त्री सावित्री, उसका पति महेंद्रनाथ तथा तीन बच्चे बिन्नी और किन्नी बेटियां तथा एक बेटा अशोक रहते हैं। ये सभी सदस्य साथ रहते हुए भी एक-दूसरे से कटे हुए, एक-दूसरे को नापसंद करते हुए, मन से दूर-दूर हैं। सावित्री इस कथा की धुरी हैं, मुख्य नायिका है। यह संघर्ष करती हुई, अकेली नौकरी करके परिवार का भरण-पोषण करती हुई सहानुभूति की पात्र लगती है लेकिन वहीं दूसरी ओर अनेक पुरुषों के साथ संबंध स्थापित करती हुई वह चारित्रिक दृष्टि कमजोर महिला दिखाई देती है। पति महेंद्रनाथ व्यवसाय में सब कुछ गंवाकर बेरोजगार घर में बैठा रहता है। लड़का अशोक भी नकारा है। वह न शिक्षा में दिलचस्पी लेता है न व्यवसाय में। एक लड़की से प्रेम करता है और घर की चीजें उठा-उठाकर उसे उपहार में दे देता है। फिल्मी पत्रिकाएं पढ़ना, तस्वीरें काटकर रखना और आवारागर्दी करना, यही उसके काम हैं। वह मां के व्यवहार से और पिता से भी असंतुष्ट खींझ से भरा दिखाई देता है। बड़ी लड़की बिन्नी मनोज नामक युवक के साथ भागकर विवाह कर लेती है। लेकिन विवाह के बाद भी उसका असंतोष और भटकन समाप्त नहीं होती। वह बार-बार भागकर मायके आ जाती है। मनोज अच्छा व्यक्ति है लेकिन पहले वह सावित्री का अर्थात बिन्नी की मां का प्रेमी या मित्र हुआ करता था। सावित्री के लिए ही घर आता था, सावित्री उस अपने से आयु में छोटे युवक के भीतर भी अपनी संतुष्टि को तलाशती थी। उसे आश्चर्य हुआ जब वह उसकी बेटी को लेकर भाग गया और फिर उसके साथ विवाह करके गृहस्थी बसा ली। बिन्नी यह नहीं समझती थी कि उसके पति के साथ उसकी मां के संबंध कैसे थे। सावित्री की अतृप्त इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं के संस्कार बिन्नी में भी है। वह भी सदैव बेचैन रहती है। मनोज चूंकि मां और बेटी दोनों के निकट रहा है इसलिए वह दोनों की असंतोषी प्रवृत्ति को जानता है। अत: बिन्नी जब भी बहस करती है, वह कहता है कि- ''तुम इस घर से ही ऐसी चीज लेकर गई हो जो तुम्हें स्वाभाविक नहीं रहने देगी।'' बिन्नी मनोज की बात को सच मानती है, वह जानना चाहती है कि वह

ऐसी क्या चीज उसके भीतर है जो उसे स्वाभाविक नहीं रहने देती। वह हर काम मनोज की इच्छा के विरुद्ध करना चाहती है ताकि उसे चोट पहुंचा सके। मनोज को दुखी देखकर, उसे चोट पहुंचाकर उसे शांति मिलती है। वह नौकरी करना चाहती है क्योंकि मनोज को यह पसंद है। वह

सावित्री से पूछती है कि- दो आदमी जितना ज्यादा साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा वे एक-दूसरे से अजनबी होते जाते हैं क्या?

छोटी बेटी किन्नी स्कूल में पढ़ती है। कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। न उसके कपड़ों, मोजे, फीस, पढ़ाई के बारे में सोचता। वह लावारिस की तरह घूमती है। भाई की पत्रिकाएं पढ़ती है। अपनी पड़ोस की, स्कूल की लड़कियों से प्रेम-संबंधों की बातें करती है। एक तरह से उसका मानसिक और बौद्धिक पतन आरंभ हो गया है। वह चाहती है, उसे आम बच्चों की तरह माता-पिता, भाई-बहन का प्यार मिले सभी उसका ध्यान रखें लेकिन यह अभाव उसे विकृत मनोवृत्ति वाला बना देता है। आर्थिक अभाव के साथ-साथ आपसी सौमनस्य का अभाव उस घर में केवल तनाव और टूटन को जन्म देता है। और दिलचस्प बात यह कि सबके आरोपों का केंद्र बिंदु सावित्री बनती है जो घर की एक मात्र कमाने वाली सदस्य है।

महेंद्रनाथ सावित्री से और अपने परिवार से बहुत प्रेम करता है। लेकिन अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह करने में वह अक्षम है। उसके पास निर्णय लेने की शक्ति नहीं है, मित्रों की बातों में आकर वह व्यावसायिक क्षेत्र में सब कुछ गंवा बैठा। वह मित्रों द्वारा ही ठगा गया, ऐसा सावित्री मानती है। मित्रों की बातों से प्रोत्साहित होकर ही वह घर में सावित्री के साथ दुर्व्यवहार करता है। वह नकारा है। गृह स्वामी होते हुए भी उसकी हैसियत घर में एक 'रबर के टुकड़े' के समान या नौकर के समान है। वह सावित्री की कमाई पर पलता है। सावित्री के पुरुष मित्रों को जानता है। और यदा-कदा उन मित्रों के साथ सावित्री के अनैतिक संबंधों की चर्चा करके मन की भड़ास निकालता रहता है। अपने चोट खाए आत्मसम्मान को बचाने के प्रयत्न में कभी-कभी घर छोड़कर चला जाता है और दो-तीन दिन तक नहीं लौटता।

सावित्री दिन भर नौकरी करने के बाद शाम को घर लौटती है तो उसे घर का सामान बिखरा हुआ, अस्त-व्यस्त मिलता है, पति और बच्चे भी घर पर उसकी प्रतीक्षा करते नहीं मिलते तो वह आहत होती है कि न बच्चे और न पति उसकी प्रतीक्षा में मिलते हैं। न घर, घर जैसा व्यवस्थित मिलता है। वह थकी हुई अवस्था में बड़बड़ाती जाती है और घर को व्यवस्थित करती है। पति और बेटे को नौकरी मिल सके इसलिए वह अपने बॉस से घनिष्ठ संबंध बनाती है, उसे घर बुलाती है और चाहती है कि घर के लोग उसका स्वागत करें। लेकिन उसके बॉस या पुरुष मित्रों का इस तरह घर आना, सावित्री के साथ घूमना बच्चों को पसंद नहीं है, न महेंद्रनाथ को। वे जुनेजा, सिंघानिया मनोज आदि के साथ सावित्री के संबंधों को अनैतिक और स्वार्थ प्रेरित मानते हैं। अशोक सावित्री से व्यंग्यात्मक वाद-विवाद करता है और स्पष्ट कर देता है कि उसके लिए कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। इन बड़े-बड़े लोगों के आने से उन्हें अपमान और हीनता का बोझ होता है।

सावित्री आहत स्त्री है। वह बेटे द्वारा की गई उपेक्षा और तिरस्कार से आहत होकर निर्णय लेती है कि वह घर छोड़कर चली जाएगी। इस घर की चिंता नहीं करेगी केवल अपने सुखों और खुशियों का ध्यान रखेगी। सावित्री एक महत्वाकांक्षी स्त्री है। जीवन से उसे अनंत और बहुमुखी अपेक्षाएं हैं। वह सब कुछ, बहुत शीघ्र और एक साथ पा लेना चाहती है। यही कारण है कि महेंद्रनाथ से विवाह करने के बाद जब वह उसकी अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा तो उसे उससे वितृष्ण हो गई। यह कभी जुनेजा में सब कुछ ढूंढ़ने लगी, कभी सिंघानिया, कभी जगमोहन और कभी मनोज में-। वह अतृप्त स्त्री है। मन की अतृप्ति उसे अमर्यादित बना देती है। पर पुरुष के साथ घूमना, उसके साथ जीवन बिताने की योजना बनाना और स्वयं को कुटिलता पूर्वक परिवार के सुख-समृद्धि का कारण बता कर उसकी आड़ लेना उसकी चारित्रिक दुर्बलता को दिखाता है। महेंद्रनाथ की बेकारी उसे और भी कटु बना देती है। एक ओर घर चलाने का असह्य बोझ है और दूसरी ओर जिंदगी में सब कुछ न पा सकने की तीखी कसक। सावित्री कहती है कि वह अपनी बची खुची जिंदगी को एक पूरे, संपूर्ण पुरुष के साथ बिताना चाहती है। लेकिन यह उसकी भूल है, क्योंकि वह नहीं जानती कि संपूर्णता की तलाश ही बेगानी है।

नाटक के अंत में जुनेजा और सावित्री के बीच का संवाद न केवल सावित्री को आईना दिखाता है बल्कि सावित्री अपनी बर्बाद गृहस्थी का आरोप जुनेजा पर मढ़ देती है। जुनेजा उससे कहता है कि- तुम्हारी महेंद्र के संबंध में जो मानसिकता है कि वह अपूर्ण पुरुष है, गलत है। तुम जिस तरह अतृप्त, असंतुष्ट हो वह सोच और भटकन तुहारी प्रवृत्ति है। तम्हारा विवाह महेंद्र से न होकर जगमोहन से, शिवजीत से, जुनेजा, सिंघानिया या मनोज किसी से भी होता, अंततः उस पुरुष के संबंध में तुम्हारी यही धारणा होती। क्योंकि तुम सब कुछ एक साथ, एक व्यक्ति में पाना चाहती हो, जो संभव नहीं है। कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता। हर व्यक्ति को हर चीज एक साथ नहीं मिलती। सब को सब कुछ नहीं मिलता लेकिन तुम सुख, शांति को अपने भीतर न तलाश कर बाहर तलाशती हो इसलिए तुम भटकती रही हो। एक पुरुष से दूसरे पुरुष और दूसरे से तीसरे तक की यात्राओं का कोई अंत नहीं है। महेंद्रनाथ सब कुछ जानते हुए भी सावित्री के पास लौट आता है। वह घर से प्रेम करता है, एक ऐसा घर जिसमें घर जैसी स्निग्धता, सुरक्षा, शांति के भावों और उष्मा का लोप है। जहां बच्चे माता-पिता का सम्मान नहीं करते। जहां पिता बच्चों को पिता जैसी सुरक्षा, प्यार और सुविधाएं नहीं दे पाता। आलसी और कायर पिता जो केवल बड़बड़ाता है, सिगरेट पीता है और घर से कई-कई दिन गायब रहता है, को बच्चे अपना अभिभावक कैसे मान सकते हैं? मां पराए पुरुषों के साथ घूमती है और 'घर का बोझ ढो रही हूं' इस बात का रोना रोती रहती है। बच्चों के जीवन उनके संस्कारों और शिक्षा की ओर उसका ध्यान ही नहीं है। घर के इस तनाव, द्वंद्व और कटुता से भरे वातावरण का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। छोटी लड़की भी बिगड़ती

जा रही है। बेटा पढ़ाई छोड़कर आवारागर्दी करता है और बड़ी बेटी ने भागकर विवाह कर लिया। छोटी-बेटी की जुबान कैंची की तरह चलती है। वह बदमिजाज होती जाती है। सावित्री को थोड़ी सहानुभूति केवल बड़ी बेटी से मिलती है।

यह घर आंतरिक स्तर पर टूटा पड़ा हुआ है। हर कोई संबंधों के स्तर पर अधूरा है। संतुष्टि और पूर्णता की तलाश में भटक रहा है। आर्थिक इस टूटन के लिए उत्तरदायित्व तो है ही साथ ही बड़ा हाथ मानसिकता का भी है। सावित्री अपनी कमजोरियों की वकालत करती है। वह स्वयं को सही सिद्ध करती है। महेंद्रनाथ के लिए उसका कथन है कि- ''आदमी होने के लिए क्या यह जरूरी नहीं कि उसमें अपना एक माद्दा, अपनी एक शख्सियत हो? जब से मैंने उसे जाना है, हमेशा हर चीज के लिए उसे किसी न किसी का सहारा ढूंढ़ते पाया है। वह खुद एक आदमी का आधा-चौथाई भी नहीं है।''

सावित्री महेंद्रनाथ से कभी संतुष्ट नहीं रही। वह कहती है कि आदमी घर बनाता है कि अपने अंदर के अधूरेपन को भरने के लिए, लेकिन महेंद्रनाथ सदा मित्रों के अधूरेपन को भरने की चीज बना रहा। व्यक्तित्वहीन पति के कारण उसके अंदर खीझ, ऊब और बेचैनी बढ़ती जाती है तथा वह महेंद्रनाथ से बेहतर इनसान खोजने के क्रम में कभी जगमोहन से निकटता बढ़ाती है, कभी सिंघानिया तो कभी जुनेजा से। महेंद्रनाथ को सावित्री के विभिन्न पुरुषों से संबंध की जानकारी है अत: समय-समय पर व्यंग्य करके वह अपनी खीझ व्यक्त करता रहता है।

मोहन राकेश ने स्त्री पात्रों को प्रमुखता दी है। महेंद्रनाथ को दब्बू और नाकारा दिखाया गया है। इस तरह घर की आर्थिक स्थिति की डोर सावित्री के हाथ में है। महानगर हों या गांव, आर्थिक समस्या मानव जीवन की प्रमुख समस्या है जो जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करती है। शिक्षा, रहन-सहन, आचार-विचार सभी इससे प्रभावित होते हैं। आधे-अधूरे के पात्रों को विकृत आचार-विचार वाला बनाने में इस समस्या की मुख्य भूमिका है। यदि महेंद्रनाथ एक जिम्मेदार कमाऊ पति होता तो सावित्री की नौकरी का उपयोग उसके मनोरंजन और ऐशो-आराम के लिए होता, घर चलाने के लिए नहीं। बच्चों की शिक्षा ठीक से हो पाती। बच्चों के भीतर अभावों से उत्पन्न क्रोध, खीज और हीनता की भावना नहीं होती। लेकिन पूरा दोष आर्थिक स्थिति को ही नहीं दिया जा सकता, क्योंकि बहुत गरीबी में जीवन बिताने वाले भी प्यार और सुख से रहते देखे जाते हैं।

दरअसल महानगरीय आधुनिक सभ्यता की देन है- असीम महत्वाकांक्षाएं, असंतोष, द्वंद्व, तनाव, कुंठा, अतृप्ति, भटकाव। यही सब कुछ सावित्री, बिन्नी, किन्नी, अशोक और महेंद्र में है। वे सभी असंतुष्ट और अधूरे हैं। सभी सुख और संतुष्टि के लिए गलत रास्तों का प्रयोग कर रहे हैं।

कथा पर दृष्टि डालें तो सावित्री का दोष अधिक दिखाई देता है, लेकिन दूसरी ओर आर्थिक स्थिति ठीक करने का संघर्ष करने वाली एक मात्र सदस्य वह है जिससे घर का कोई भी सदस्य सहानुभूति नहीं रखता, सिवाय बिन्नी के। अशोक का उस पर आरोप लगाना और कटु संवाद उसकी कृतघ्नता को दर्शाते हैं जो प्रवृत्ति वर्तमान युवाओं में अधिकतर देखी जा रही है। नाटक में पाश्चात्य संस्कृति का संक्रमण दिखाई देता है जहां सभी अपने-अपने सुख की खोज में भटक रहे हैं। मर्यादाहीन बच्चे, गरिमाहीन माता-पिता और संस्कारहीन घर, जो घर कम धर्मशाला अधिक लगता है।

आधुनिक परिवेश को अभिव्यक्ति करता यह नाटक मोहन राकेश की अनुपम कृति है जो मन पर अमिट प्रभाव छोड़ता है। तथापि विडम्बना यह है कि नाटक का एक भी पात्र ऐसा नहीं है, जिसका स्वभाव और व्यवहार अनुकरणीय हो। इन पात्रों से केवल यही सीखा जा सकता है कि मनुष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए।

2.8 मुख्य शब्दावली

- रुतबा : पदवी।
- शिकंजा : पकड़/गिरफ्त।
- महसूस : अनुभव करना।
- आत्मकेंद्रित : स्वयं में केंद्रित।
- वर्चस्व : बोलबाला।
- बदमिजाज : चिड़चिड़े स्वभाव वाला।
- अकर्मण्यता : नकारापन, निकम्मापन।
- अभिनेयता : अभिनय किये जाने योग्य।
- दिग्दर्शक : दिशाओं का ज्ञान कराने वाला।
- अभ्यागत : अतिथि, साधु-संन्यासी, सामने आया हुआ।

2.9 – 'अपनी प्रगति जांचिए के उत्तर

1 सावित्री
2 . सावित्री
.3 चार
4 असमंजस की
.5 हिन्दी रंगकर्म को
6 1958
7 मौलिक रंगदृष्टि की तलाश पर
8 हल्दी, चंदन और गेरुए
-9 . वकील
10 अधूरी जिंदगी को पूरा करने का

11 पाश्चात्य संस्कृति

12 घर से बाहर चला जाता है

13 महत्वाकांक्षी एवं अकर्मण्य

14 सावित्री

15 . पूर्णता

16 रंगमंच का

17 'रंगमंच मूलत: एक श्रव्य माध्यम है'

18 नाटकीय शब्दों की

.19 क्लासिक

20 ध्वनि और मौन का समन्वय

2.10 : अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1 रंगमंच की दृष्टि से मोहन राकेश के नाटकों की तुलना जयशंकर प्रसाद से करते हुए टिप्पणी लिखिए।

2 'आधे-अधूरे' नाटक के कथानक की बनावट पर अपने विचार को प्रस्तुत कीजिए।

3 इस नाटक की सबसे सक्रिय पात्र सावित्री के संघर्ष पर एक निबंध लिखिए।

4 'आधे-अधूरे' नाटक के आधार पर एक पति एवं पिता की भूमिका ने 'महेंद्रनाथ' के चरित्र की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

5 बिन्नी और किन्नी पात्रों के माध्यम से नाटककार क्या कहना चाहता है ? समझाइए।

6 'आधे-अधूरे' में विद्यमान युग-बोध की समीक्षा कीजिए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1 निम्नलिखित अवतरणों की सप्रसंग व्या□या कीजिए-

(क) बड़ी लड़की मेरा अपना घर इस घर में ?

(ख) असल बात इतनी है कि नजर आता और तुम

2 'आधे-अधूरे' में विद्यमान आधुनिकता बोध का समीक्षात्मक विवेचन कीजिए।

3 'नाटककार के लिए यह आवश्यक है कि वह जो कुछ लिखता है, उसे आंख मूंदकर अपनी कल्पना के रंगमंच पर घटित होते हुए भी देखें- इस कथन के परिप्रेक्ष्य में मोहन राकेश के रंगमंचीय प्रयोगों का विस्तार से विवेचन कीजिए।

4 पात्र एवं चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'आधे-अधूरे' की समीक्षा कीजिए।

5 अमिनेयता की कसौटी पर 'आधे-अधूरे' नाटक की विशेषताओं का विस्तार से विवेचन कीजिए।

6 'आधे-अधूरे' की नाट्यभाषा का विस्तार से विश्लेषण कीजिए।

7 'आधे-अधूरे' नाटक वर्तमान जीवन शैली की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। स्पष्ट कीजिए?

2.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

- डॉ. मीना पिपलापुरे, मोहन राकेश का नारी संसार, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 1987
- संपादक - नेमिचंद जैन, मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली 1999--
- डॉ. नगेंद्र, आधुनिक हिंदी नाटक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
- बच्चन सिंह, हिंदी नाटक, राधाकृष्टा प्रकाशन, दिल्ली
- गिरीश रस्तोगी, मोहन राकेश और उनके नाटक, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- डॉ. जयदेव तनेजा, राकेश रंगशिल्प और प्रदर्शन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली

इकाई 3 निबंध-I

3.0 परिचय

निबंध के माध्यम से लेखक अपनी बात पाठकों तक सीधे पहुंचा सकता है। हिंदी निबंध लेखन का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से माना जाता है। निबंध लेखन के प्रारंभिक काल में भारतेंदु युग के लेखकों का विशेष महत्व है। उन्होंने विषय, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर निबंधों में नये प्रयोग किये किंतु निबंधों का प्रौढ़ रूप द्विवेदी युग में ही प्राप्त हुआ। इस दौर में जहां एक ओर भाषा का मानक रूप निर्मित हुआ, वहीं दूसरी ओर चिंतन में प्रौढ़ता और शैली में परिष्कार भी हुआ। हिंदी निबंध के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का केंद्रीय महत्व रहा है। उन्होंने विचार, शैली और भाषा तीनों स्तरों पर हिंदी निबंध को उच्च स्तरीय स्वरूप प्रदान किया। इस इकाई में चार प्रमुख निबंधकारों बालकृष्ण भट्ट, रामचंद्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी और विद्यानिवास मिश्र के चयनित निबंधों को प्रस्तुत किया जा रहा है। ये निबंधकार अपने-अपने युग के हस्ताक्षर रहे हैं।

बालकृष्ण भट्ट अपने युग के प्रमुख निबंधकारहैं। उन्होंने लगभग एक हजार निबंध लिखे हैं। उन्होंने समाज, साहित्य, धर्म, संस्कृति, रीति, प्रथा, भाव, कल्पना सभी क्षेत्रों से विषयों का चयन किया है। भट्ट जी के निबंधों में हास्य-विनोद के साथ कल्पना, भावना और वैचारिकता भी पाई जाती है। उनकी भाषा प्रायः बोलचाल के समीप है। उन्होंने *'चारुचरित्र' 'साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है', 'चरित्रपालन', 'प्रतिभा', 'आत्मनिर्भरता'* जैसे विचारात्मक निबंध, *'आंसू', 'मुग्ध माधुरी', 'पुरुष अहेरी की स्त्रियां अहेर हैं', 'प्रेम के बाग का सैलानी'* आदि भावात्मक निबंध, *'ससार-महानाट्य शाला', 'चंद्रोदय', 'शंकराचार्य'* और *'नानक'* जैसे वर्णनात्मक निबंध, *'आंख', 'नाक', 'कान', 'बातचीत'* जैसे सामान्य विषयों तथा *'इंगलिश पढ़ै सो बाबू होय', 'दंभाख्यान', 'अकिल अजीरन रोग'* जैसे व्यंग्य-विनोदपरक निबंध लिखे। सामाजिक समस्याओं पर लिखे गए निबंध हैं- *'बालविवाह', 'स्त्रियां और उनकी शिक्षा', 'महिला स्वातंत्र्य'* आदि। यहां उनके द्वारा रचित *'हृदय'* निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध-साहित्य को एक नई दृष्टि और नया जीवन प्रदान किया। वे अपने युग के प्रतिनिधि निबंधकार हैं। शुक्ल जी हिंदी भाषा के बेजोड़ पारखी थे। शब्द और अर्थ के पारस्परिक संबंधों को वे अच्छी तरह समझते थे। शुक्ल जी ने विचारों के संप्रेषण के लिए संस्कृत, फारसी-उर्दू और बोलचाल की शब्दावली अपनाई है। उन्होंने लोकोक्तियों, मुहावरों तथा लक्षणओं के नूतन एवं बहुविध प्रयोगों द्वारा एक ओर हिंदी गद्य को व्यंजक बनाया और दूसरी ओर चित्र-विधान में सहायता देने वाली समर्थ भाषा का निर्माण किया। शुक्ल जी ने विषय, भाषा और शैली, सभी दृष्टियों से हिंदी निबंधों को उत्कृष्ट बनाया। शुक्ल जी ने विभिन्न विषयों पर निबंध लिखे जो 'चिंतामणि' के तीन भागों में संकलित हैं। उनकी प्रवृत्ति गंभीर

विवेचन और तीखे व्यंग्य की रही है। यही कारण है कि निबंधों में उनका चिंतक और मानवतावादी रूप उभरा है। उन्होंने *'भय', 'क्रोध', 'श्रद्धा' और 'भक्ति', 'घृणा', 'करुणा', 'लज्जा' और 'ग्लानि', 'लोभ' और प्रीति', 'ईर्ष्या', 'उत्साह'* आदि विभिन्न मनोभावों पर दस निबंध लिखे जिनमें उन्होंने इन मनोभावों के सामाजिक पक्ष का विश्लेषण किया। शुक्ल जी ने साहित्य के गंभीर पक्षों पर भी लिखा। जैसे- *'कविता क्या है', 'साधारणीकरण', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', 'व्यक्तिवैचित्र्यवाद', 'रसात्मक बोध के विविध रूप'* आदि। ऐसे निबंधों में गंभीर चिंतन, सैद्धांतिक विवेचना और तर्कपूर्ण व्याख्या तो मिलती ही है, भावुक हृदय के दर्शन भी होते हैं। यहां उनके द्वारा रचित 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का ललित निबंधकारों में प्रमुख स्थान है। ललित निबंधकार की भाषा में तरलता रहती है। वह गहरे विश्लेषण, उबाऊ वर्णन, जटिल वाक्य-रचना से बचता है। ललित निबंधों में रचनाकार के व्यक्तित्व की छाप रहती है। द्विवेदी जी के निबंधों में मानवतावादी जीवनदर्शन और भावुक हृदय के दर्शन होते हैं। वे अध्ययनशील प्रवृत्ति के थे। उन्होंने संस्कृत के प्राचीन साहित्य के साथ-साथ अपभ्रंश और बांग्ला भाषाओं के साहित्य तथा मध्यकालीन हिंदी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था, लेकिन उनकी दृष्टि आधुनिक थी। इसीलिए उनके निबंधों में पांडित्य के साथ-साथ नवीन चिंतन दृष्टि भी मिलती है। द्विवेदी जी ने अपनी रचना को विचारों से बोझिल होने नहीं दिया बल्कि भावानुकूलता के आवेग में विचारों को प्रस्तुत कर उसे नया रूप प्रदान किया है। उनकी खूबी यह है कि विचार, तर्क और भाव के गठन में कहीं भी बिखराव और शैथिल्य नहीं आ पाता। द्विवेदी जी ने अपनी रचना प्रणाली द्वारा व्यक्तिपरक निबंधों का स्वरूप संगठित किया। उनके निबंधों की भाषा लचीली है। वे देशज शब्दों के साथ संस्कृत के प्रचलित और अप्रचलित शब्दों का सामंजस्य भी बैठा लेते हैं। उनका वाक्य-विन्यास भी ललित एवं भावपूर्ण गद्य के अनुरूप है। उनके प्रमुख निबंध-संग्रह 'अशोक के फूल', 'विचार और वितर्क', 'कल्पलता' आदि हैं। द्विवेदी जी के निबंधों के विषय समाज के बीच से लिए गए होते हैं और उनकी चिंता राष्ट्रीय होती है। यहां उनके द्वारा रचित 'साहित्यकारों का दायित्व' निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

विद्यानिवास मिश्र संस्कृत भाषा और साहित्य के विद्वान हैं। किंतु लोक संस्कृति और लोक साहित्य में भी वे गहरी पैठ रखते हैं। इसलिए उनके निबंधों में पांडित्य (शास्त्र ज्ञान) के साथ-साथ लोक संस्कृति का भी सम्मिलन हुआ। निबंधों की शैली भावपूर्ण और काव्यमय है तथा भाषा भी वैसी ही काव्यमय और सरस है। भाषा में संस्कृत के ललित शब्दों का प्रयोग हुआ है।

विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख निबंध संग्रह हैं- *'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से', 'संचारिणी', 'लागौ रंग हरि'* आदि। यहां उनके द्वारा रचित *'जीवन अपनी देहरी पर'* निबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण किया जा रहा है।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अनेकानेक निबंधकारों की निबंध लेखन शैली से परिचित हो पाएंगे,
- बालकृष्ण भट्ट रचित निबंध 'हृदय' की विशेषताओं की व्याख्या कर पाएंगे,
- रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रणीत काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था को परिभाषित कर पाएंगे,
- हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्देशित साहित्यकारों के दायित्वों से परिचित हो पाएंगे,
- विद्यानिवास मिश्र द्वारा प्रस्तुत जीवन अपनी देहरी पर सत्य से परिचित हो पाएंगे।

3.2 हृदय - बालकृष्ण भट्ट

'हृदय' निबंध की रचना बालकृष्ण भट्ट ने की। 'हृदय' को जानने से पहले जानते हैं भट्ट जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

4.2.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

भारतेंदु युग के प्रतिभाशाली लेखक तथा श्रेष्ठ निबंधकार पंडित बालकृष्ण भट्ट का जन्म 23 जून, 1844 को अहियापुर मुहल्ला, प्रयाग इलाहाबाद में हुआ। सांदीपनि गुरु के वंशज भट्ट जी के पिता का नाम बेनीप्रसाद भट्ट तथा माता पार्वती देवी थी। भट्ट जी के पिता व्यापारी थे अत: घर में समृद्धि थी। नाना अनंतराम वैद्य थे, पुरोहिताई करते थे, वे भट्ट जी को 'फुशुन' कहकर पुकारते थे। मां शिक्षित एवं समझदार महिला थीं। वे भट्ट जी को संस्कृत पढ़ाती थीं। मां एवं नाना के संस्कारों ने भट्ट जी को प्रभावित किया। वे व्यापार में अरुचि दिखाते एवं शिक्षा की ओर आकृष्ट होते रहे। 12 वर्ष की आयु में ही भट्ट जी ने अमरकोष एवं लघु सिद्धांत कौमुदी कंठस्थ कर ली थी। वे कुशाग्र बुद्धि और विनोदी प्रकृति के थे। कथा सुनना, कबूतर पालना, बागवानी करना उन्हें प्रिय था। 12वर्ष की आयु में ही इनका विवाह रमा देवी (रमदेई) से हो गया। इन्होंने कई भाषाएं सीखीं, ज्योतिष का अध्ययन किया। जीवन भर बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देते रहे और हानिकर परंपराओं एवं रुढ़ियों का विरोध करते रहे। हिंदी एवं संस्कृत के प्रकांड विद्वान होने के साथ-साथ भट्ट जी स्वाधीन विचारक, सचेत चिंतक भी थे। उन्होंने हिंदी गद्य के विकास के लिए तथा पत्रकारिता के विकास के लिए अमूल्य योगदान किया। भट्ट जी ने आर्थिक कठिनाइयों एवं विपरीत परिस्थितियों से जूझते हुए 32 वर्षों तक हिंदी प्रदीप पत्र निकाला। 20 जुलाई, 1914 को इस महान निबंधकार का देहांत हो गया।

पं. बालकृष्ण भट्ट को आधुनिक हिंदी निबंध, पत्रकारिता एवं आलोचना का जनक माना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न थे। अनेक विधाओं में उनकी पैठ थी। उन्होंने नाटक, कविता, कथाएं, अनुवाद के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के जौहर दिखाए। वे अच्छे संपादक एवं समाजसेवी मनुष्य थे। उनके विचारों में प्रगतिशीलता, निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता दृष्टिगोचर होती थी। संस्कृत, अंग्रेजी के साथ अरबी, फारसी पर भी उनका अधिकार था। विनम्र, परोपकारी एवं सहनशीलता पं. भट्ट धर्मनिष्ठ वैष्णव थे। शास्त्रार्थ करने में उनकी गहन रुचि थी। उनकी वैचारिक दृढ़ता गहन अध्ययनशीलता का परिचायक थी। उन्होंने वर्ण व्यवस्था, जाति-पांति का विरोध किया। ज्ञान को व्यापक और गहन बनाने के लिए वे विदेश यात्राओं का समर्थन करते थे। वे सीमित संख्या में संतानोत्पत्ति के पक्षधर थे। बहुत-सी संतानें उत्पन्न करके उन्हें शिक्षित, संस्कारित कर श्रेष्ठ मनुष्य बनाना कठिन है, ऐसा वे मानते थे। पाखंड और अंधविश्वासों पर कुठाराघात करते हुए उन्होंने कर्मकांडी ब्राह्मणों के पाखंड का विरोध किया। भट्ट जी तीर्थयात्रायों पर जाना पसंद नहीं करते थे। उन्होंने दहेज प्रथा, बेमेल विवाह तथा पर्दा-प्रथा का विरोध किया। वे शांत, विनम्र, स्नेहशील होने के साथ क्रांतिकारी विचारक थे जो कबीर की तरह आवश्यकता पड़ने पर फटकार लगाना जानते थे। भट्ट जी संवेदनशील मनुष्य थे। अपने युग के यथार्थ को समझकर तदनुसार परिवर्तन लाने के लिए उन्होंने अपने लेखन को धारदार एवं सशक्त बनाया। उनकी वाक्चातुरी हास्य एवं मस्ती ने उन्हें लोकप्रिय बनाया तथा उन्हें जीवन को भरपूर जीवंतता के साथ जीने की शक्ति भी दी।

बालकृष्ण भट्ट का रचना कर्म

भट्ट जी अपने युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार थे। हिंदी निबंध लेखन में वे प्रथम पंक्ति के लेखक माने जाते हैं। भट्ट निबंधावली में परिचय के अंतर्गत उनके पौत्र धनंजय भट्ट सरल में लिखा है कि - ''भट्ट जी हिंदी में बचपन से ही लिखने लगे थे। स्कूल में वाद-विवाद एवं निबंध रचना में सदैव भाग लेते एवं प्रथम रहते।'' संभवतः सन् 1872 ई. में इन्होंने प्रथम लेख 'कलिराजा की समां' लिखा जो भारतेंदु जी की 'कवि-वचन सुधा' में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात 'रेल का टिकट खेल' 'स्वर्ग में सब्जेक्ट कमेटी आदि लेख 'कवि-वचन सुधा' में छपे। इन लेखों से भट्ट जी को प्रसिद्धि मिली तथा उनके लेख 'काशी पत्रिका', 'बिहार बंधु' में भी प्रकाशित होने लगी। उनके अधिकांश लेख 'हिंदी प्रदीप' में छपे, जिसका संपादन उन्होंने फ्ख वर्षों तक किया। उन्होंने हजारों निबंध लिखे, ऐसा माना जाता है।

भट्ट जी का पहला निबंध संग्रह 'साहित्य सरोज' 1920 में प्रकाशित हुआ, जिसका संपादन पं. लक्ष्मीनारायण भट्ट ने किया। अन्य निबंध संग्रहों में 'साहित्य सुमन', 'भट्ट निबंधावली' भाग-1 2 'भट्ट निबंधमाला' भाग-1 2 'भट्ट निबंधावली' भाग-3 'बालकृष्ण भट्ट के निबंदों का संग्रह, 'बालकृष्ण भट्ट प्रतिनिधि संकलन' तथा 'बालकृष्ण भट्ट' के श्रेष्ठ निबंध थे।

3.2.2 हृदय–मूल पाठ

हमारे अनुमान से उस परम नागर की चराचर सृष्टि में हृदय एक अद्‌भुत पदार्थ है। देखने में तो इसमें तीन अक्षर हैं पर तीनों लोक और चौदहों भुवन इस तिहर्फी (अक्षर) शब्द के भीतर एक भुनगे की नाई दबे पड़े हैं। अणु से लेकर पर्वत पर्यन्त छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा कोई काम क्यों न हो बिना हृदय लगाए वैसा ही पोच रहता है जैसा युगल–दंत की शुभ्रज्ज्वल खूँटियों से शोभित श्याम मस्तक वाले मदश्रावी मातंग को कच्चे सूत के धागे से बांध रखने का प्रयत्न अथवा चंचल कुरंग को पकड़ने के लिए भोले कछुए के बच्चे को उद्यत करना। आँख न हो मनुष्य हृदय से देख सकता है पर हृदय न होने से आँख बेकार है। कहावत भी तो है 'क्या तुम्हारे हिए की भू फुटी है' हृदय से देखो, हृदय से पूछो, हृदय में रखो, हिए–जिए से काम करो, हृदय में कृपा बनाए रखो। किसी का हृदय मत दुखाओ। अमुक पुरुष का ऐसा नम्र हृदय है कि पराया दुख देख कोमल कम की दंडी–सा झुक जाता है। अमुक का इतना कठोर है कि कमठ पृष्ठ की कठोरता तक को मात करता है। कितनों का हृदय वज्राघात सहने को भी समर्थ होता है। कोई ऐसे भीरू होते हैं कि सगर सन्मुख जाना तो दूर रहा कृपाण की चमक और गोले की धमक के मारे उनका हृदय सिकुड़ कर सोंठ की गिरह हो जाता है। किसी का हृदय रणक्षेत्र में अपूर्व विक्रम और अलौकिक युद्ध कौशल दिखाने को उमगता है। एवं किसी का हृदय विपुल और किसी का संकीर्ण किसी का उदार और किसी का अनुदार होता है। विभव के समय यह समुद्र की लहर से भी चार हाथी अधिक उमड़ता है और विपद–काल में सिमट कर रबड़ की टिकिया रह जाता है। सतोगुण की प्रवृत्ति में राज–पाट तक दान कर संकुचित नहीं होता, रजोगुण की प्रवृत्ति में बाल की खाल निकाल झींगुरों की मुस्कें बाँधता है। फलतः प्रेम, करुणा, प्रीति, भक्ति, माया, मोह आदि गुणों की प्रकृति–दशा में कभी–कभी ऐसा प्रभाव होता है कि उसका वर्णन कहने को अशक्य होता है। यदि यह बात नहीं है तो कृपा कर बताइए चिर–काल के बिछुरे प्रेमपात्रों के परस्पर सम्मिलन और एकटक अवलोकन में हृदय को कितनी ठंडक पहुंचती है या सहज अधीर, स्वभावतः चंचल, मृदु बालक जब बड़े आग्रह से मचल कर धूलि में लौटते हैं या किसी नई सीखी बात को बाल स्वभाव से दुहराते हैं उस काल उनके मुँह–मुकुर पर जो मनोहर छवि छाती है वह आपके हृदय पर कितना प्रेम उपजाती है या जिसको हम चाहते हैं वह गोली भर टप्पे से हमें देख कतराता है तो उसकी रुखाई का हृदय पर कितना गंभीर घाव होता है? अथवा बहु–कुलीन महादुखी जब परस्पर असंकुचित चित्त मिलते और अत्रुटित बातों में अपना दुखड़ा कहते हैं उस समय उनके आश्वासन की सीमा कहीं तक पहुँचती है। शुद्ध एवं संयमी, नारायण–परायण को प्रभु–कीर्तन और भजन में जो अपूर्व आनंद अलौकिक सुख मिलता है व प्राकृतिक शोभा देखा कवि का हृदय जो उल्लास,

शांति और निस्तब्ध भाव धारण करता है उसका तारतम्य कितना है पाठक! हमारे लिखने के वे सब सर्वथा बाहर हैं, अपने आप जान सकते हैं।

भक्तिरस पगे हुए महात्मा तुलसीदास जी राघवेंद्र राघव की प्रशंसा में कहते हैं-

'चितबनि चारु मारु मदहरनी। भावत हृदय जाय नहिं बरनी॥'

इससे जान पड़ता है कि हृदय एक ऐसी गहरी खाड़ी है जिसकी थाह विचारे जीव को उमसें रहने पर भी कभी-कभी उस भाँति नहीं मिलती जैसे ताल की मछलियाँ दिन-रात पानी में बिलबिलाया करतीं हैं पर उसकी थाह पाने की क्षमता नहीं रखतीं। जब अपने ही हृदय का ज्ञान अपने को नहीं है तो दूसरे के मन की थाह ले लेना तो बहुत ही दुस्तर है। तभी तो असाधारण धीमानों की यह प्रार्थना है 'अनक्तमप्यूहति पंडितों जन' कि बिना कहे वे दूसरे के हृदय की थाह लगाना बड़ा दुरंत है। न जाने इस हृदयागार का कैसा मुँह है, पंडित लोग कुछ ही कहें हमारी जान तो इसका स्वरूप स्वच्छ स्फटिक की नाई हैं। इसी से हर चीज का फोटु इसमें उतर जाता है। जिस भाँति सहस्त्रांश की सहस्त्र-सहस्त्र किरणें निर्मल बिल्लौर पर पड़कर उसके बाहर निकल जाती है इसी तरह सैकड़ों बातें, हजारों विषय जो दिन-रात में हमारे गोचर होते हैं हृदय के शीशे के भीतर धँसते चले जाते हैं और समय पर ख्याल के, कागज में तस्वीर बन सामने आ जाते हैं। इसमें कोई जल्द फहम होते हैं, कोई सौ-सौ बार बताने पर नहीं समझते। उनका हृदय किसी ऐसी चिंता-कीट से चेहटा रहता है कि वह आवरण होकर रोक करता है, जिस तरह अक्स लेने के लिए शीशे को पहले खूब धो-धुवाकर साफ कर लेते हैं इसी भाँति सुंदर बात को धारण के लिए हृदय की सफाई की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

राजर्षि भर्तृहरि का वाक्यहै। 'हृदिस्वच्छावृत्तिः श्रुतमधिगतैकवृतफलम' अर्थात हृदय स्वच्छवृत्ति से अत्त काम शास्त्र-श्रवण से बड़ाई के योग्य होते हैं। यह स्वच्छ थैली जिनके पास है वही सदाशय हैं, वही महाशय हैं और वह गंभीराशय हैं उन्हें चाहे जिन शुभ नामों से पुकार लीजिए। और जिनकी उदरदरी में इसका अभाव है वे ही दुराशय, क्षुद्राशय, नीचाशय, ओछे, छोटे और पेट के खोटे हैं। देखी सहृदय के उदाहरण ये लोग हुए हैं। सूर्यवंश-शिरोमणि दशरथात्मज रामचंद्र को कराली कैकेयी ने कितना दुःख दिया था। बारह वर्ष के वन के असीम आपदों का क्लेश, नयन ओट न रहने वाली सती सीता का विरहजन्य शोक, स्नेह-सागर पिता का सदा के लिए वियोग, ये सब सहकर उनका शुद्ध हृदय उस सौतेली माँ से पुनर्मिलन में समर्थ हुआ। आज कल के ओछे पात्र माँ-बाप की तिरछी आँख की आँच न सहकर कह बैठते हैं कि हमारा तो उनकी तरफ से हिरदै फट गया। प्रिय पाठक, श्री स्वामी दयानंद सरस्वती जी महाराज भी एक बड़े विशद और विशाल हृदय के मनुष्य थे, जिन्होंने लोगों की गाली-गलौज, निंदा-चुगली आदि अनेक असह्य बातों को सह कर उनके प्रति उपकार से मुँह न मोड़ा। आज जिनका विपुल हृदय मानो निकल कर सत्यार्थप्रकाश बन गया है। एक बार यहाँ के चंद लोगों ने कहा कि वह नास्तिक मुँह देखने योग्य नहीं है। यह सुनकर कुछ भी उनकी मुखश्री मलिन न हुई और किसी भाँति माथे पर सिकुड़न न आई। गंभीरता से उत्तर दिया कि यदि मेरा मुँह देखने में पाप लगता है तो मैं मुँह ढाँप

लूँगा पर दो-दो बातें तो मेरी सुन लें। बस इसी से आप उनके वृहत् हृदय का परिचय कर सकते हैं। किसी ने सच कहा है-

''सज्जनस्य हृदयनवनीतं यहृदन्ति कवयस्तदलीकम्।
अन्यतेहबिलसत्परितापात्सज्जनो द्रवतिननवनीतम्॥''

एक सहृदय कहता है कि कवियों ने जो सज्जनों के हृदय की उपमा मक्खन से दी है वह बात ठीक नहीं है। क्योंकि सत् पुरुष पराया दु:ख देख पिघल जाते हैं और मक्खन वैसा ही बना रहता है। बस प्यारे, यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार हृदयों का अनुकरण करो, ऐसे ही हृदय दूसरों में क्षमा, दया शांति, तितिक्षा, शील, सौजन्यता, सच्ची आस्तिकता और उदारता का वीर्यारोपण करने में योग्य होते हैं और सच्चे सुहृदय कहते हैं।

3.2.3 बालकृष्ण भट्ट की निबंध शैली

पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंधों में पर्याप्त विषय वैविध्य, व्यापकता, उदारता एवं व्यंग्यात्मकता के दर्शन होते हैं। इन्होंने विषय प्रधान तथा व्यक्ति प्रधान दोनों प्रकार के निबंधों की रचना की। विवरणात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक एवं विचारात्मक सभी प्रकार की शैलियों में लिखे गए निबंध अपना विशेष महत्व रखते हैं। समाज का विकास एवं जाग्रत, विकसित राष्ट्र का निर्माण इनका उद्देश्य था जिसे इन्होंने कसौटी बनाया तथा समाज, साहित्य, मनोविज्ञान, धर्म दर्शन और उन निबंधों को अपनी कसौटी पर परखा। गहन चिंतक होने के कारण भट्ट जी की विवेचन शैली विचार गांभीर्य से परिपूर्ण होती है। इस दृष्टि से समीक्षा करने पर भट्ट जी भारतेंदु युग के अग्रगण्य निबंधकार ठहरते हैं। श्रेष्ठ निबंधकार होने के साथ वे श्रेष्ठ समीक्षक भी थे। उन्होंने तुलनात्मक समालोचना की नींव रखी, जिस पर बाद में पं. पद्मसिंह शर्मा ने तुलनात्मक समालोचना का भव्य महल खड़ा कर समालोचना का मार्ग प्रशस्त किया।

पं. बालकृष्ण भट्ट की भाषा और शैली के विविध रूप उनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। वे विविध भाषा के शब्दों का प्रयोग कर ऐसी भाषा का निर्माण करते हैं, सर्व स्वीकृति और सपाठ्य हो। कहीं वे उर्दू, फारसी, अंग्रेजी के शब्द ही नहीं, पूरा-पूरा का वाक्य ही लिख देते हैं जिससे भाषा रोचक एवं प्रभावशाली बन जाती है। कहीं-कहीं उनकी भाषा काव्यात्मक भावुकता से परिपूर्ण होती है जो सरसता एवं जीवंतता की मिसाल बन जाती है। निबंधों के शीर्षक कभी उर्दू और कभी शुद्ध संस्कृत ढंग से से रखते हैं, जैसे- जबान, जी, चंद्रोदय, धिक्काराष्ट्रकम आदि। भारतेन्दु युग हिंदी गद्य का आरंभिक काल था। उस समय खड़ी बोली हिंदी में भट्ट जी ने अत्यंत सशक्त एवं सुंदर रचनाओं को जन्म दिया। किस शब्द को कहां प्रयोग करना है वे भली-भाँति जानते ही नहीं थे बल्कि अत्यंत कुशलता से शब्द और वाक्यों का प्रयोग करते थे इसलिए तत्कालीन निबंध साहित्य पर दृष्टि डालें तो भट्ट जी की भाषा जैसा अनोखापन अन्यंत्र नहीं मिलता। उन्होंने गहन, गूढ़ अर्थों के साथ सशक्त व्यंग्योक्तियां कीं, जो सोद्देश्य होती थीं। भट्ट जी की रचनात्मकता पर विचार प्रकट करते हुए सुधाकर जी लिखते हैं- ''अपने व्यक्तित्व से उन्होंने अनेक निबंधों की केवल सर्जना ही नहीं की, अपितु उनमें आत्मा का प्रकाश भी भरा है।

इसलिए उनके निबंध केवल रूपवान ही नहीं, बल्कि सुंदर भी हैं और हमारे हिंदी के साहित्य को उन्होंने ऐसा ऐतिहासिक मोड़ दिया है जहां से आगे की संभावनाएं सहज ही केवल जानी-पहचानी ही नहीं जा सकतीं, अपितु उनके विविध रंजक और मनोहारी रूपों का बोध सहज ही किया जा सकता है। साहित्य की धारा में निबंध की नदी के वे ऐसे बंध हैं, जिसमें सतत प्राण के प्रवाह का रसस्नात् जल है। वे हिंदी साहित्य में निबंध के ऋषिकेश हैं।''

भट्ट जी के निबंधों में उनके परिपक्व अनुभव एवं अगाध पांडित्य के दर्शन होते हैं। यह उल्लेखनीय है कि जब भट्ट जी ने लेखन आरंभ किया था तब हिंदी का विकास नहीं हुआ था। वह हिंदी के विकास एवं हिंदी गद्य के विकास का संघर्ष काल था। अत: उनके चिंतन में हिंदी की चिंता भी थी। वे हिंदी में उत्कृष्ट रचनाओं के अभाव को अनुभव कर रहे थे। भट्ट जी भारतेंदु जी की तरह भाषा को सरल, सहज, सरस बनाकर जनता की भाषा के रूप में प्रस्तुत करना पसंद करते थे। अत: क्लिष्ट संस्कृत के शब्दों पंडिताऊपन से हटकर उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और लोक भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते थे। यह अवश्य है कि साहित्य, धर्म और संस्कृति प्रधान निबंधों की रचना करते हुए उन्होंने संस्कृत शब्दों एवं संस्कृत के श्लोकों का आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जिससे विषय के अनुरूप निबंधों की गरिमा में वृद्धि हुई। जब निबंधों में व्यंग्योक्तियों का समावेश होता है, विषय समाज एवं मनुष्य के जीवन से जुड़े सहज और सरल भावपूर्ण होते हैं तब उनमें ग्राम्य जीवन से जुड़ी या लोक में प्रचलित कहावतों एवं मुहावरों का उपयोग कर वे विषय को संप्रेषणीय और ग्राह्य बना देते हैं। बालकृष्ण भट्ट जी की भाषा शैली पर टिप्पणी करते हुए धनंजय भट्ट 'हिंदी की दशा और पत्रकारिता' की भूमिका में लिखते हैं- ''इनके निबंध बहुत ही उच्चकोटि के सुंदर, गंभीर और साहित्यिक सौरभ से युक्त हैं। इनका प्रत्येक निबंध भाषा की सजीवता, रोचकता और स्थान-स्थान पर सुंदर मुहावरों की लड़ी से गुंथा हुआ एक सुंदर गुलदस्ता मालूम होता है।''

वे मानते हैं कि 'साहित्य जनमानस के हृदय का विकास है।' उन्होंने वेदों से लेकर वर्तमान (तत्कालीन) साहित्य का अनुशीलन किया था। तदनुसार रचनाएं कीं। उनकी समस्त रचनाओं पर दृष्टि डालें तो भाव एवं भाषा के, शैली के रंग-रूप दृष्टिगोचर एवं अनुभूत होते हैं। कहीं वीरता का गर्व, कहीं प्रेम का उच्छवास, कहीं क्रोधपूर्ण गर्जन, कहीं शोक, हर्ष, करुणा और भक्ति, कहीं अश्रुपात और निवेदन...। भट्ट जी की भाषा शैली विषय को जीवंत बना देने में सक्षम है। 'हिंदी की दशा और पत्रकारिता' में दो शब्द लिखते हुए सुंदरलाल जी ने भट्ट जी की सरस रचनात्मकता पर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं- ''हिंदी के दो खास लेखक अपने-अपने ढंग से प्रसिद्ध थे- एक पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी और दूसरे पं. बालकृष्ण भट्ट। मेरी और मेरे जैसे बहुओं की निगाह में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा व्याकरण की दृष्टि से निर्दोष होती थी किंतु भाषा में रस लगभग नदारद। दूसरी ओर पं. बालकृष्ण भट्ट अपनी भाषा में व्याकरण की बहुत अधिक परवाह नहीं करते थे, किंतु उनकी भाषा बढ़िया-से-बढ़िया रसगुल्लों की तरह रस से भरी हुई होती थी। भट्ट जी अपनी भाषा में फारसी, अंग्रेजी और अरबी तक के चालू और आमफहम शब्द और

मुहावरे नगीनों की तरह जड़ देते थे।'' व्याकरण की चिंता से मुक्त होकर भावों के मक्त प्रवाह की निरंतरता बनी रहने के कारण बालकृष्ण भट्ट के निबंध जीवन के निकट और जीवंत बन पड़े हैं।

भट्ट जी ने राजनैतिक, सामाजिक, नारी विषयक, धर्म विषयक, भाषा साहित्य एवं साहित्यकार विषयक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, नैतिक आदि विविध विषयों पर विविध शैलियों में निबंध रचना की। उनके चिंतन प्रधान, विवरणात्मक, समालोचनात्मक, व्यंग्यात्मक निबंधों के अतिरिक्त ललित निबंधों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ललित निबंधों की रचना करते हुए जिस हल्केपन के आ जाने का खतरा होता है उससे बचते हुए उन्होंने रोचक एवं सशक्त ललित निबंधों की रचना की। भाषा एवं शैली के प्रति वे अत्यंत अधिकारपूर्ण सजगता से काम लेते हैं। यही कारण है कि ललित निबंधों में भी उनकी बौद्धिकता भारीपन और उबाऊपन उत्पन्न करने के स्थान पर अपनी सूक्ष्म प्रसारता के साथ रोचकता उत्पन्न करती है।

'हृदय' ऐसा ही ललित निबंध है जिसमें बौद्धिकता एवं भावनाओं का अद्‌भुत संगम है। हृदय की विशेषताएं बताते हुए उसकी श्रेष्ठता और सार्थकता को बेहद रोचक भाषा एवं शैली में अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है। उनके अनेक ललित निबंध विविधता एवं रोचकता से परिपूर्ण अनेक शैलियों में लिखे गए हैं जिनमें व्यंग्य की फुहारें, मुक्त हास्य, चुटकी लेने वाला भाव, अनौपचारिकता यानी बेतकल्लुफी के दर्शन होते हैं। इन छटाओं से युक्त निबंध पाठकों के अंतर्मन को छू लेने वाला प्रभाव रखते हैं। 'रस में फीकापन कब आता है', 'रूपवानों के रूप का रहस्य, हिंदुस्तान के रईस, 'खटका', 'जबान', 'आंसू' आदि ऐसे निबंध हैं जिनमें व्यंग्यात्मकता के साथ भाषा की कसावट से जादुई रोचकता उत्पन्न हो गई है। 'खटका' जैसे छोटे शब्द पर किया गया गहन चिंतन रंग-बिरंगे फूलों की माला की तरह आकर्षक और मनोरंजक बनकर सामने आता है। इनमें लेखक के निर्भीक व्यक्तित्व, उन्मुक्त भाव और सशक्त भाषा शैली के दर्शन होते हैं। 'बातचीत', 'परिचित्तानुरंजन', 'मेला-ठेला', 'ढोल के भीतर पोल' आदि अत्यंत सुगठित एवं विचार प्रधान शैली में लिखे गए सुचिंतित निबंध है। 'आशा' निबंध में वे निराशा से आशा की ओर ले जाते हुए शुभचिंतक और सलाहकार प्रतीत होते हैं। भट्ट जी ने कुछ निबंधों में नाटकीय शैली का भी उपयोग किया है। जैसे- 'एकांत ज्ञान', 'हिंदुस्तान और अफगानिस्तान', 'मधुप' आदि। स्व-कथन की शैली में लिखे गए 'एकांत ज्ञान' नामक ललित निबंध में ऐसे दुर्भावनायुक्त स्वार्थी पंडित का चरित्र अनावृत्त किया गया है जो अपने को बेहद ज्ञानी और पंडितराज समझता है।

भारतेंदु युगीन ललित निबंधों की रचनात्मकता रोचकता एवं उद्‌देश्य से परिपूर्ण थी। इसकी रोचकता का एक कारण तत्कालीन प्रचलित स्तोत्र शैली भी थी। इसके अंतर्गत हास्य-व्यंग्य और चुटकी लेने की सूक्ष्म कला का प्रभाव होता था। बालकृष्ण भट्ट जी ने इस शैली में अनूठे व्यंग्य निबंधों की रचना की जो सामाजिक व्यंग्य कहे जा सकते हैं तथा मार्मिकता की दृष्टि से समृद्ध हैं। उनके इस शैली में लिखे गए निबंधों में- कंकड़ स्तोत्र, अंग्रेज स्तोत्र, हाकिम और उनकी हिकमत,

म्युनिसिपैलिटी स्तोत्रम्, हुक्कास्तवम्, ग्राहक स्तुति आदि हैं। उन्होंने समाज, वस्तु, व्यक्ति, स्त्री, पुरुष सभी को विषय बनाकर स्तोत्र शैली में अद्वितीय निबंध लिखें। भट्ट जी ने चरित्र प्रधान ललित निबंध भी लिखे। कथा शैली में लिखे गए निबंधों में- 'देवताओं से हमारी बातचीत', 'एक अनोखा स्वप्न', 'धूमकेतु' जैसे निबंध लिखे। हिंदुओं में व्याप्त अंधविश्वास, रुढ़िवादिता, पाखंड, छल-छद्म आदि विकारों को दूर करने के लिए उन्होंने संवाद शैली में भी कुछ प्रभावशाली निबंधों की रचना की। जैसे 'पंच महाराज', 'पंचों की सोहबत', 'पंची की एक उमंग', 'पंचों का प्रपंच' आदि।

विषय प्रधान निबंधों में उन्होंने राजनीति, सामाजिक, साहित्यिक विषयों पर निबंध लिखे जिसमें उनका समाज सुधारक का, मार्ग निर्देशक का रूप उभर कर आता है। इन निबंधों में बाल विवाह का विरोध, विधवा विवाह को प्रोत्साहन, पर्दा प्रथा का विरोध, स्त्री शिक्षा को बढ़ावा, जात-पांत, छुआछूत का उन्होंने घोर विरोध किया। भट्ट जी समस्या के साथ उसका निदान भी प्रस्तुत करने वाले आशावादी व्यक्ति थे। वे किसी भी धर्म के अंधे समर्थक नहीं थे। वे संतुलित विचारों वाले समन्वयवादी व्यक्ति थे। उन्होंने धार्मिक, नैतिक, काव्यशास्त्रीय रस, छंद, अलंकारों पर भी निबंध लिखे। भट्ट जी बहुज्ञ थे। उनकी दृष्णि एकांगी नहीं थी। वे अतीत एवं वर्तमान को दृष्टि पथ में रखते हुए विषय की समीक्षा किया करते थे। 'शब्दों की आकर्षण शक्ति' नामक लेख में वे 'शब्दों की आकर्षण शक्ति न्यूटन की आकर्षण शक्ति से लवमात्र भी कम नहीं कही जा सकती' ऐसा लिखते हैं। कहते हैं- 'केवल शब्द की मधुर ध्वनि में जब इतना प्रलोभन हो तब यदि उन शब्दों में अर्थचातुरी भी भरी हो तो वह कितना मन को खींचने वाला न होगा।'

अंतत: यही कहा जा सकता है कि पं. बालकृष्ण भट्ट के निबंधों की सं□या जो हजारों में हैं उनमें विषय वैविध्य, शैली विविध्य, भाषा एवं भावों का सरस, सहज, सरल प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। वैचारिक समृद्धि के साथ इन निबंधों में शब्दो वाक्यों, भावों का सुसंयोजन दिखाई पड़ता है। भट्ट जी का उद्देश्य स्पष्ट था- जनता को शिक्षित, सचेत और नवजागरण का पाठ पढ़ाकर कर्मठ बनाना। वे उन्नत शिक्षित भारतीय समाज की कल्पना करते थे जिसमें स्त्री-पुरुष, ग्रामीण एवं नागर जन, हर जाति और वर्ग के लोग सम्मिलित हों, इसलिए इन सबसे स्पष्ट, सुचारू संवाद बनाए रखने के लिए उन्होंने समयानुकूल, विषयानुकूल भाषा और शैली का उपयोग किया। लोकमंगल की कामना से लिखे गए निबंधों में बोझिलता और धुंधलापन नहीं बल्कि उज्ज्वल आलोक झलकता है। इन निबंधों में स्वतंत्र भारत के सुखों के लिए प्रार्थना करने वाले साधक पं. बालकृष्ण भट्ट का व्यक्तित्व झलकता है।

]3.2.4 हृदय : प्रतिपाद्य

पं. बालकृष्ण भट्ट इस ललित निबंध में हृदय की विशेषताएं बताते हुए इस परमात्मा की चर-अचर, जड़-चेतन से युक्त सृष्टि का सर्वाधिक, सर्वोच्च ही नहीं, बल्कि एक अकेला ऐसा अद्‌भुत पदार्थ प्रतिपादित करते हैं, जो है तो केवल तीन अक्षरों का, लेकिन इस छोटे से धड़कते मांस-पिंड में तीनों लोक और चौदहों भुवन समा जाते हैं और समा कर किसी भुनगे की तरह दबे पड़े रहते हैं। जैसे हजारों किताबों के ढेर के नीचे दबी किसी किताब में कोई मक्खी, मच्छर या पंखेरू दबा पड़ा हो किसी को पता नहीं चलता, उसी तरह इस छोटे से हृदय में सागर सी गहनता और हिमालय सी ऊँचाई एवं अनंत आकाश का विस्तृत विस्तार है जिसमें सारी सृष्टि समाहित रहती है। इसमें कितनी स्मृतियां, कितने रहस्य छिपे हैं कोई नहीं जान सकता। मनुष्य का जीवन कर्म से बंध है किंतु कर्मरत शरीर का हर प्रयत्न हृदय के अभाव में निष्प्राण एवं नीरस होता है। अणु से लेकर पर्वत तक यानी छोटे से छोटा काम हो या बड़े से बड़ा- उसे हृदय अर्थात दिल लगाए बगैर करने से वह सफलतापूर्वक संपन्न हो सकेगा, इसमें संदेह रहता है। ऐसा कार्य या तो बिगड़ जाता है या पूर्णत: ठीक न होकर कुछ और हो जाता है। पं. भट्ट जी कहते हैं हृदय लगाए बिना कार्य की सफल पूर्णता की आशा करना वैसा ही है जैसे युगल श्वेतदंत यानी दो सफेद चमकते लंबे सुंदर दांतों वाले मदमस्त हाथी को जिसका काला मस्तक है पकड़ने के लिए या बांधे रखने के लिए कच्चे सूती धागे का उपयोग करना जो कि असंभव होगा...। कच्चे सूत से किसी हाथी को बांधकर नहीं रखा जा सकता। इसी तरह चंचल घोड़े या हिरन को पकड़ने के लिए कछुए जैसी धीमी गति से चलने वाले प्राणी को भेजना...। तात्पर्य यह कि हृदय ही शरीर को कार्य की सही दिशा की ओर प्रेरित करता है, कार्य करने का उत्साह बढ़ाता है और शारीरिक शक्ति और श्रम को साधकर सफल बनाता है। भट्ट जी कहते हैं हृदय की जीवंतता का केंद्र है। आंख न हो तो हृदय से देखकर, अनुभव के आधार पर देखा समझा जा सकता है लेकिन हृदय न हो आंख शरीर रूपी मशीन का एक पुर्जा भर है यानी उसका होना न होने के बराबर है। इसलिए एक कहावत है कि 'क्या मन की आंखें भी फूट गई हैं' क्योंकि हृदय ऐसा संवेदनशील अंग है जिसमें अनुभव के द्वारा देखा जा सकता है। बोला जा सकता है।

लोग कहते हैं अपने हृदय से पूछो क्योंकि वो सच बोलता है। बात हृदय में रखो तथा हृदय से यानी मन लगाकर काम करो। अपने हृदय में दूसरों के लिए सद्‌भावना, कृपा बनाए रखो। किसी का हृदय मत दुखाओ। उदाहरण दिया जाता है कि फलां व्यक्ति का हृदय अन्यंत कोमल है, विनम्र है। वह दूसरों का दुख देखकर दुखी हो जाता एवं कमल नाल की तरह झुक जाता है। कठोर हृदय वाले लोगों के लिए कहा जाता है कि इसका हृदय कछुए की पीठ की तरह कठोर है। कुछ लोगों का हृदय अत्यंत सहनशील एवं सशक्त होता है जो वज्र (चट्टान) की तरह बड़े-बड़े आघात सह

लेता है अर्थात् बड़े-बड़े दुख सहते हुए भी विचलित नहीं होता, लेकिन कुछ लोग भीरू अर्थात डरपोक होते हैं। कमजोर हृदय वाले ऐसे लोग युद्ध में जाना तो दूर तलवार की चमक एवं गोले-बारूद की धमक ध्वनि सुनकर ही सहमकर सूखी सोंठ की तरह हो जाते हैं। डर के कारण उनके चेहरे का रंग उड़ जाता है और शरीर ऐंठ जाता है। कुछ लोगों के हृदय में साहस एवं वीरता का ज्वार उमड़ता रहता है और वे युद्ध क्षेत्र में अद्‌भुत, अपूर्व कौशल एवं पराक्रम प्रदर्शित करने के लिए सदैव उत्साहित रहते हैं। ऐसे लोग देश के लिए मर-मिटने करल तैयार रहते हैं तथा सदियों तक याद किये जाते हैं। किसी के हृदय की संकीर्णता उसे आत्मकेंद्रित बना देती है वह स्वार्थी के रूप में जाना जाता है और किसी के हृदय की व्यापकता उसे महान पुरुषों की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देती है। ऐसे महापुरुष मानव के कल्याण के लिए जीते-मरते हैं। किसी के हृदय में उदारता कूट-कूट कर भरी होती है कि वे मरते हुए व्यक्ति को पानी पिलाने में भी कंजूसी करते हैं। ऐसा हृदय सदैव उपेक्षा का पात्र बनता है।

अपनी विशेषताओं के कारण हृदय अद्‌भूत है। इसकी माया और लीला का प्रसार व्यापक और अज्ञेय है कि यह कब क्या कर बैठेगा। जब विपत्ति आती है तो यह सूखकर, सिमटकर रहबर की तरह हो जाता है अर जब यह सुखी, प्रसन्न एवं समृद्ध होता है तो वैभव के इस काल में इसकी उमंगी की ऊंचाई समुद्र की लहरों से भी ऊंची होती है। मनुष्य के हृदय में तीनों गुण- सतो गुण, रजो गुण एवं तमो गुण उपस्थित रहते हैं। शिक्षा एवं संगति के आधार पर यह परिष्कृत होते हैं। अच्छी शिक्षा, संस्कार एवं संत्सगति से सत्व (सतो) गुण परोपकारी होना सत्व गुण के लक्षण है। जब रजो गुण परिष्कृत होता है तब व्यक्ति क्षत्रिय की तरह अधिकारों के लिए लड़ता है, बाल की खाल निकालता है अर्थात तर्कशील बनकर सत्य का पता लगाता है एवं 'झींगुर की मुस्कें' बांधता है यानी असंभव कार्य को संभव बनाने का प्रयत्न करता है। तमो गुणी व्यक्ति का हृदय अमानवीयता से भरा, कठोर, झूठा और मक्कार होता है। ऐसे पतित हृदयों से समाज की हानि होती है। मनुष्य का हृदय भावनाओं का खजाना होता है इसलिए प्राकृतिक दशा में हृदय पर प्रेम, करुणा, भक्ति, मोह-माया आदि का जो प्रभाव होता है उससे वह भावनाओं की चरम एवं गहन स्थिति को प्राप्त हो जाता है जिसका वर्णन सामान्य मनुष्य नहीं कर सकता। कभी-कभी यह वर्णन कवियों की सामर्थ्य से भी बाहर हो जाता है। इसे केवल अनुभव किया जा सकता है, कहा नहीं जा सकता। हृदय के कुछ विशिष्ट अनुभवों को शब्द दे सके। उदाहरण के लिए जब दो बिछुड़े हुए प्रेमी वर्षों बाद मिलते हैं तो वे एकटक एक-दूसरे की ओर देखते ही रह जाते हैं। उनकी आंखें एक-दूसरे बात करती हैं, हृदय-हृदय से बातें करते हैं और शीतलता, शांति का अनुभव करते हैं। उस समय के उन हृदयों के अनुभवों को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसी तरह चंचल

बच्चे जब मचल कर धूल में लोटते हैं तो उनके कोमल मुख के निर्मल सौंदर्य का वर्णन करना कठिन होता है। वह सुख अनिवर्चनीय होता है। नई सीखी बात को तुतलाते हुए, मासूमियत से दोहराते बच्चे की शोभा और उस समय उन बातों को सुनकर जो सुख मिलता है उसे केवल हृदय हृदय अनुभव करता है, बताया नहीं जा सकता। उस समय उस बच्चे के लिए हृदय में प्रेम का सागर उफनता है जिसे हृदय ही जानता है। हृदय पर प्रेम का जितना प्रभाव होता है, प्रेम करता है वह अगर उस व्यक्ति के बिल्कुल समीप आकर भी उसे देखे और उपेक्षा करके चला जाए तो तो हृदय पर गंभीर आघात लगता है। इस घाव की पीड़ा को हृदय ही जानता है। इसी तरह लंबे समय से दुखी लोग जब मिलते हैं तब वे नि:संकोच भाव से खुले शब्दों में एक-दूसरे को अपना-अपना दुखड़ा सुनाते हैं तथा एक-दूसरे को मीठे शब्दों में आश्वासन देते हैं। तब उन दोनों को कितनी राहत कितनी तसल्ली मिलती है यह उनके हृदय ही जानते हैं।

पं. बालकृष्ण भट्ट हृदय की विशेषता बताते हुए जन स्थितियों का वर्णन भी करते हैं जिनमें हृदय को सुख मिलता है। भगवान का नाम जप करने वाले शुद्ध आचरण वाले संयमी मनुष्य को भजन-कीर्तन में जो अपूर्व आनंद प्राप्त होता है, अलौकिक सुख प्राप्त होता है उसे शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। प्रकृति का सौंदर्य ईश्वर की अनुपम सृष्टि है। वह ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव करती है। कवि का हृदय इस प्राकृतिक सुंदरता को देखकर निस्तब्ध होता है और इस सुख, उल्लास का अनुभव कर उसका हृदय शांत और आत्मलीनता के जिस सरोवर में डूबता जाता है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। तुलसीदास राम के अनन्य भक्त हैं। उन्होंने लिखा कि- राम का सौंदर्य अद्‌भुत है। नन्हें बालक के रूप में ठुमक-ठुमक कर चलते हैं और जब पलटकर तिरछी चितवन से देखते हैं तो उनका सौंदर्य अत्यंत मारक हो उठता है जो हृदय के सारे मद को, अहंकार एवं अभिमान को मारकर मन को शुद्ध, शांत बना देता है। राम का यह सौंदर्य उनके हृदय को मोहित कर लेता है, लेकिन अपने हृदय के इस अनुभव का वे वर्णन नहीं कर सकते। उनका यह सुख अकथनीय है।

तुलसीदास जी के इस अनुभव को उद्धृत करते हुए पं. बालकृष्ण भट्ट कहते हैं कि हृदय एक ऐसी गहरी खाई या खाड़ी की तरह प्रतीत होती है जिसकी गहराई और रहस्यों का पता उसमें जीवन भर रहने वाले प्राणी को भी नहीं चलता। जिस तरह तालाब और बड़े सरोवरों में रहने वाली मछलियां रात-दिन उसमें तैरती रहती हैं, लेकिन वे उस ताल और सरोवर की गहराई नहीं जान पातीं। उसी तरह मनुष्य जब जीवन भर अपने ही हृदय को पूरी तरह नहीं जान पाता तो दूसरे के हृदय की गहराई और रहस्यों को कैसे जान सकता है। तात्पर्य, हृदय ईश्वर का अनोखा उपहार है। जैसे ईश्वर को जानना कठिन है वैसे ही हृदय को जानना भी कठिन है। वे असाधारण और दैवीय कृपा प्राप्त लोग होते हैं जो दूसरे के कहे बगैर उसके हृदय की बात जान लेते हैं। उनकी इच्छाओं

और सपनों को पढ़ लेते हैं। भट्ट जी कहते हैं कि मैं नहीं जान पाता हूं कि इस हृदयागार यानी हृदय रूपी खजाने का मुंह किस तरह का और किस ओर है कि उसमें प्रवेश किया जा सके। भट्ट जी को यह स्पटिक की तरह लगता है। इसमें हर दृश्य, हर स्मृति का चित्र सदैव बना रहता है। जैसे बिल्लौरी निर्मल पारदर्शी हीरे पर पड़ी हुई सूर्य की किरणें उसके आर-पार हो जाती है उसी तरह इस हृदय रूपी शीशे (आईने) में प्रतिक्षण की सैकड़ों बातें, सहस्त्रों विषय समा जाते हैं और यथासमय प्रकट होकर सुख-दुख का अनुभव कराते हैं। स्मृतियों का दस्तावेज बन जाते हैं। इनमें कुछ स्मृतियां, बातें जल्दी समझ में आती हैं और कुछ बार-बार समझाने पर भी स्पष्ट नहीं होती। कारण यह कि हृदय पर जब चिंता रूपी कीट चिकता रहता है तो वह विवेक को भी कुंठित कर देता है और बात समझने में मानव बुद्धि और स्वयं हृदय भी अशक्त तथा असमर्थता का अनुभव करते हैं। इसलिए जैसे प्रतिबिंब देखने के लिए हम आईने को धो-पोंछकर साफ कर लेते हैं उसी तरह सुंदर बातों और भावनाओं को धारण करने के लिए हृदय से चिंता तथा दुर्भावनाओं को हटा देना चाहिए।

भट्ट जी अपनी सीख को प्रतिपादित करने के लिए राजर्षि भर्तृहरि के कथन को उद्धृत करते हैं कि ''हृदय वही सराहनीय होता है जो स्वच्छ वृत्ति वाला हो यानी जिसमें सतो गुण हो, सद्भावना हो तथा कान का होना तभी सार्थक होता है जब वे शास्त्रों को सुनकर उसे हृदय तक पहुंचाए।'' भट्ट जी कहते हैं- हृदय एक स्वच्छ थैली है। यह जिसके पास होता है वही सदाशय यानी उच्च श्रेष्ठ आशय को धारण करने वाला तथा महाशय होता है। वही गंभीराशय है क्योंकि जीवन के सत्य को समझकर वह मानवता की प्रतिष्ठा के लिए गंभीरता से विचार करता है। और जिनके पास यह स्वच्छ थैली अर्थात निर्मल हृदय नहीं है वे उथले पेट वाले लोग हैं जिन्हें मानवता के मार्ग से भटका और पतित हुआ नीच, क्षुद्र आशय वाला मनुष्य कह सकते हैं। जो दुराचारी एवं अमानवीय होता है अपना पेट भरने वाला ओछा, स्वार्थी एवं कपटी, झूठा मनुष्य कह सकते हैं। वे सहृदय, सदाशयी लोगों का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि दशरथ के पुत्र राम के कैकेयी के वर के कारण चौदह वर्ष का वनवास पाया, पिता को खोया, जंगल में भटके, पत्नी का विरह सहा, लेकिन जब लौटकर आए, कैकेयी से अत्यंत प्रेम एवं विनम्रता से मिले। जबकि आजकल की संतान माता-पिता की कड़ी नजर नहीं सह सकती और वे कह बैठते हैं कि मां-बाप की ओर से हमारा हृदय फट गया है।

भट्ट जी नयी पीढ़ी को रामचंद्र जी की तरह सहनशील, मर्यादावान बनने का उपदेश दे रहे हैं। वे चाहते हैं, नयी पीढ़ी सदाशयी बने। भट्ट जी स्वामी दयानंद सरस्वती जी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि उनके जैसे महामना और विशाल हृदय के सदाशयी व्यक्ति को भी लोगों की गालियां खानी पड़ी। उन्होंने लोगों द्वारा निंदा किये जाने, दुर्व्यवहार किये जाने पर भी धैर्य और साहस नहीं खोया। सब कुछ सहन करते हुए भी लोगों की सेवा करते रहे। परोपकार करते रहे और

सत्यार्थप्रकाश के रूप में अमर हो गए। लोगों ने कहा है कि उनका मुंह नहीं देखना चाहते तो उन्होंने बिना किसी दुख या निराशा के कहा कि ठीक है मैं अपना मुंह ढंक लूंगा लेकिन आप मेरी बातें ध्यान से सुन लें। स्वामी जी का हृदय विशाल था एवं उसमें मानव मात्र के प्रति प्रेम का सागर लहराता था।

पं. बालकृष्ण भट्ट ने किसी महापुरुष के आप्त वचन को उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत किया है कि ''एक सहृदय कहता है कि कवियों ने जो सज्जनों के हृदय की उपमा मक्खन से दी है यह बात ठीक नहीं है।'' भट्ट जी कहते हैं कि यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार, विशाल हृदय वाले सत्पुरुषों का अनुकरण करो जो दूसरों को दया, क्षमा, शांति, त्याग, सदाचार, परोपकार करने की शिक्षा देते हैं। शिक्षा अपने आचरण से देते हैं जैसे गांधी जी का व्यक्तित्व और कृतित्व ही उनकी सीख थी। उदारता और आस्तिकता के बीज पड़े तो सहृदय व्यक्ति सबका सुहृद यानी निकट का प्रिय पात्र, प्रेम का पात्र बन जता है।

भट्ट जी ने इस निबंध के माध्यम से संवेदनशील एवं सहृदय होने की शिक्षा दी है और यह प्रतिपादित किया है कि सहृदय होने की क्या-क्या विशेषताएं हैं। यह कालातिक्रम करने वाला प्रासंगिक निबंध है। वर्तमान आधुनिक वैज्ञानिक युग में हृदय ही अप्रासंगिक होता जा रहा है, मनुष्यता समाप्त होकर यांत्रिकता में परिवर्तित हो गई है, माता-पिता, गुरु-शिष्य की मर्यादा खत्म हो गई है। मनुष्य स्वार्थी, आत्मकेंद्रित और एकांतजीवी होता जा रहा है। ऐसे समय में निबंध अत्यंत उपयोगी एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हृदय के होने की तथा उसके अच्छे और बुरे होने की प्रतिक्रिया एवं परिणाम से परिचित कराकर इस युग की यांत्रिक पीढ़ी को सावधान कर सकता है कि वे सहृदय बनें। सहृदय बने बिना वे जीवन का सच्चा आनंद नहीं ले सकते। भौतिक वस्तुओं से प्राप्त सुख क्षणिक होता है किंतु मानवीय संवेदनाओं से बने रिश्ते और किये गए कार्य अपार, स्थिर सुख और आनंद देते हैं। सहृदय होकर सहा गया दुख भी सुख है जो जीवन की सार्थकता का द्योतक है। भट्ट जी सहृदय को ईश्वर की तरह रहस्यमयी प्रतिपादित करते हैं। जैसे निश्छल मन से की गई सहज भक्ति से ईश्वर को जाना और पाया जा सकता है वैसे ही निश्छल होकर हृदय के रहस्यों से परिचित हुआ जा सकता है। हृदय की प्रकृति ही मनुष्य को यश, मान और समृद्धि दिलाती है तथा हृदय की तमोगुणी प्रवृत्ति ही उसे मानवता के धरातल से गिराकर अपमानित करती है। अत: मनुष्य को सत्संगति कर, शास्त्री का अध्ययन कर सहृदय बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यह निबंध अपनी उद्देश्य पूर्ति में सफल हुआ है।

3.2.5 हृदय : समीक्षात्मक अध्ययन

ललित निबंधों की परंपरा में पं. बालकृष्ण भट्ट का नाम प्रथम पंक्ति में लिखा जाता है। दिविक रमेश 'निबंधों की दुनिया' की भूमिका में लिखते हैं कि 'पंडित बालकृष्ण भट्ट' ने ललित निबंध पर्याप्त लिखे हैं जिसमें भरपूर रोचकता है। भट्ट जी का ललित निबंधकार रूप भी बहुत सशक्त है। ललित निबंधों में हल्कापन आने का खतरा बना रहता है लेकिन बालकृष्ण भट्ट उससे बचे हैं। सच कहें तो ऐसे निबंधों में किसी भी समर्थ लेख का भाषा और शैलीगत अधिकार भी देखने को मिलता है। भट्ट जी एक सजग चिंतक थे, अत: उनके ललित निबंध भी बौद्धिकता की इसूक्ष्म परतों से संपन्न हैं।''

भट्ट जी का यह 'हृदय' निबंध ललित निबंधों की कोटि में आता है। इसमें लोकप्रिय का गुण है, प्रवाह है, सहजता से गूढ़ार्थ को अभिव्यक्ति मिली है। ललित निबंधों की कसौटी पर यह खरा उतरता है या नहीं, यह परखने के लिए डॉ. शशिप्रभा पांडेय द्वारा 'निबंध तथा अन्य विधाएं' में भूमिका के अंतर्गत दी गई ललित निबंधों की विशेषताओं पर एक दृष्टि डाली जा सकती है। वे लिखती हैं- 'ललित निबंधों में में इतिहास, पुरातत्व, दर्शन, वनस्पति, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि से संबंधित गूढ़, गंभीर एवं सरस, मनोरंजक विषय के विवेचन के साथ ही साथ विचारणा एवं भावना को कल्पना के माध्यम से इस भांति एकरस कर दिया जाता है कि एक के अंत और दूसरे के अथ का कहीं कोई पता ही नहीं चलता। ललित निबंधों की प्रमुख विशेषता उनके लालित्यपूर्ण पद विन्यास तथा लयात्मक भाव और विचार में देखी जा सकती है। व्यक्तित्व की अभिव्यंजना ललित निबंधों का प्राण तत्व है। इसी वैशिष्ट्य के कारण शिल्प या संरचना और पठन आदि की दृष्टि से ये निबंध साहित्य की अन्य विधाओं से पूर्णत: अलग माने जाते हैं।'' इस दृष्टि से 'हृदय' निबंध की समीक्षा करें तो यह ललित निबंधों की कोटि में आएगा तथा इस कसौटी पर खरा उतरता है।

'हृदय' निबंध में पं. बालकृष्ण भट्ट का पांडित्य झलकता है। उन्होंने इसमें कोमलकांत पदावली, गूढ़, शब्द गुम्फित भाषा का प्रयोग किया है। उन्होंने विषय को स्पष्ट करने के लिए सुंदर उदाहरणों का प्रयोग किया है। जैसे- ''सहज अधीर, स्वभावत: चंचल मृदु बालक जब बड़े आग्रह से मचल कर धूलि में लौटते हैंया किसी नई सीखी बात को बाल स्वभाव से दुहाराते हैं उस काल उनके मुंह-मुकुर पर जो मनोहर छवि छाती है वह आपके हृदय पर कितना प्रेम उपजाती है।''

पं. भट्ट जी की भाषा में संस्कृत, हिंदी एवं लोक भाषा के शब्दों का समन्वय है इसलिए यह अत्यंत रोचक, सहज एवं सुबोध लगती है। वाक्यों में सरसता है अत: पाठक इस रस के प्रवाह के साथ चलता है। भट्ट जी ने 'हृदय' जैसे अत्यंत गूढ़ और अत्यंत सहज दो विरोधी गुणों के

समन्वित अद्‌भुत पदार्थ को व्या□यायित करने के लिए लोक से वेदों तक की यात्रा की है। वे सुस्पष्ट तर्क एवं उदाहरण देकर अपनी बात की सत्यता को सिद्ध करते हैं। संस्कृत के वा**क्यों**ं एवं श्लोकों का प्रयोग उनके बहुपठ होने के तथ्य को स्पष्ट करता है साथ ही विषय की की गरिमा में वृद्धि करता है। पं. बालकृष्ण भट्‌ट 'हृदय' निबंध में भर्तृहरि के वा**क्य** 'हृदिस्वच्छावृ**त्ति**' श्रुतमधिगतैकवृ**त्त**फलम' को उद्धृत कर प्रशंसा पाने वाले स्वच्छ हृदय एवं कान की विशेषता बताते हैं। उन्होंने संस्कृत के साथ अंग्रेजी, तद्‌भव, उर्दू, देशज श**ब्दों** का प्रयोग करके कथ्य की रोचकता में वृद्धि की है। जैसे- फोटू उतर जाना, धो-धुवाकर, जल्द फहम्, चिंता-कीट, बिछुरे आदि श**ब्द** भाषा वैविध्य को दर्शाते हैं।

पं. बालकृष्ण भट्‌ट ने ललित निबंध की रचना का जब श्रीगणेश किया तब ललित निबंधों की कोई कसौटी या पैमाना गठित नहीं था। यह युग हिंदी भाषा के हिंदी गद्य के आरंभ का युग था। अत: हिंदी भाषा और गद्य का परिष्कृत लेखन करते हुए भट्‌ट जी ने 'हृदय' निबंध में या अन्य ललित निबंधों में जो भी प्राचीन एवं नवीन सिद्धांतों का प्रयोग किया, जिस तरह की सरसता, प्रवाहमयता के साथ गूढ़ वैचारिक दृष्टिकोणों को सरलता से प्रस्तुत किया वे स्वयं आगामी रचनाओं के लिए एवं रचनाकारों के लिए कसौटी बन गए। भट्‌ट जी का मानवीय दृष्टिकोण तथा लोकहित, देशहित, उद्‌देश्य था। अत: वे जो भी लिखते उसके केंद्र में मनुष्य जीवन का सुख और सौन्दर्य ही होता था, अत: कोमलकांत पदावली वा**क्य**ावलि का आना स्वाभाविक था। वे भारत के सांस्कृतिक गौरव, सामाजिक परंपराओं, नैतिक एवं धार्मिक पक्ष की प्रतिष्ठा पर विशेष ध्यान देते थे। यह बात हृदय निबंध की उपदेशात्मकता से सिद्ध हो जाती है। वे दशरथ पुत्र रामचंद्र जी के सौंदर्य का उदाहरण रामचरितमानस से देते हैं तथा आगे उनकी विनम्रता, सहनशीलता एवं मर्यादा का का उदाहरण देते हुए नयी पीढ़ी को उनके जैसे माता-पिता का आज्ञापालक एवं मर्यादावान बनने की सीख देते हैं। उन्होंने दयानंद सरस्वती जैसा परोपकारी बनाने की भी अपेक्षा नयी पीढ़ी से की है व हृदय को समस्त अच्छे-बुरे गुणों का आगार मानते हुए यह सिद्ध करते हैं कि सतोगुणी हृदय वाला सदाशयी होकर यश प्राप्त करता है एवं सदाशयी मनुष्यों का ही जीवन सार्थक होता है। भट्‌ट जी मनुष्य का अपने ही 'हृदय' से परिचय कराते हैं। आत्मावलोकन के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी भाषा में गहन अनुसंधान के दर्शन होते हैं तथा वे जमीन से जुड़े सच्चे धरती पुत्र भी दिखाई देते हैं।

'हृदय' निबंध का लालित्य सुंदर कहावतों एवं मुहावरों के प्रयोग से बढ़ गया है। जैसे- **क्य**ा तु**म्ह**ारे हिए की भी फूटी है', 'हृदय सिकुड़ कर सोंठ की गिरह हो जाना', 'बाल की खाल निकाल कर झींगुरों की मुस्कें बांधना' आदि निबंध की रोचकता को बढ़ाते हैं। 'हृदय' की

विशालता को व्यक्त करने के लिए उनका कहना है- देखने में तो इसमें तीन अक्षर हैं पर तीनों लोक चौदहों भुवन इस तिहर्फी (अक्षर) शब्द के भीतर एक भुनगे की नाई दबे पड़े हैं। यह वाक्य 'हृदय' की महिमा को अत्यंत सटीक एवं मनोरंजकता के साथ सुस्पष्ट करता है। भट्ट जी ने यह निबंध अत्यंत तन्मयता के साथ लिखा है, इसमें रस, भाव, कल्पना और व्यावहारिकता का सुंदर समन्वय है। भट्ट जी के निबंधों का लालित्य उनकी व्यंग्यात्मकता, स्पष्टवक्तृा होने के गुण और लोक जीवन के प्रति उनकी गहन-सूक्ष्म दृष्टि को उजागर करता है। मौलिकता और ताजगी उनके निबंधों की विशेषता है। उनकी व्यापक जीवन सृष्टि और काल की गति पर उनका चिंतन, जीवन की शाश्वत और नश्वर उपलब्धियों पर उनका चिंतन उनके उदार हृदयी होने को दर्शाता है। भट्ट जी का व्यक्तित्व उनके निबंधों में, उनकी स्थापित मान्यताओं में दिखाई देता है। भारतेंदु युग में सबसे बड़ी आवश्यकता जन-जागरण की थी। अंग्रेजों की पराधीनता से छुटकारा पाने के लिए जनता को शिक्षित एवं संस्कारित कर सदाशयी बनाना था। ऐसे में 'हृदय' निबंध की रचना का महत्व इसलिए बढ़ जाता है कि यह सामान्य जन को भी 'हृदय' को सतोगुण, रजोगुण से संपन्न कर उदार एवं कर्मशील बनाने को प्रेरित करता है। राम का उदाहरण स्मरण कराता है कि रावण रूपी अंग्रेज से लोहा लेना है। पराधीनता में जब अपनों से भी स्पष्ट बात करने का अवसर न हो तब संकेतों में समझाना ही एक मात्र उपाय होता था। यह निबंध इस उद्देश्य को सफलतापूर्वक संपन्न करता है। इसकी प्रासंगिकता इस इक्कीसवीं सदी में भी उतनी ही है जितनी इसके रचनाकाल में थी।

पं. बालकृष्ण भट्ट की रचनात्मकता सराहनीय, सार्थक एवं उपयोगी है। उनके ललित निबंधों में प्राकृतिक माधुर्य है। अकृत्रिम भाव-भंगिमा ने इन्हें रमणीय बना दिया है। जब वे 'चंचल कुरंग को पकडने के लिए भोले कछुए के बच्चे को छोड़ने की बात करते हैं तब हृदय की गति का भान तीव्रता से होता है। मन की, हृदय की गति को, तीव्रता को भला कोई जान पाया है। यह असंभव तथ्य वाक्यों से स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह- 'युगल दंत की शुभ्रोज्ज्वल खूंटियों से शोभित श्याम मस्तक वाले मद्श्रावी मालंग को कच्चे सूत के धागे से बांध रखने का प्रयत्न करना।' अत्यंत रोचक उदाहरण है। भट्ट जी की हास-परिहास की प्रवृत्ति, चुटकी लेने की प्रवृत्ति तथा बातों-बातों में झलकता गहन पांडित्य के दर्शन कराती है। पं. बालकृष्ण भट्ट अपने समकालीन निबंधकारों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनका चिंतन पक्ष परवर्तियों के िलए प्रेरणा बना। तत्कालीन ललित निबंधों में 'हृदय' निबंध का विषय महतव का स्थान है- ''बस प्यारी, यदि तुम सहृदय होना चाहते हो तो ऐसे उदार हृदयों का अनुकरण करो, ऐसे ही हृदय दूसरों के हृदय में क्षमाल, दया, शांति, तितिक्षा, शील, सौजन्यता, सच्ची आस्तिकता और उदाहरण का वीर्यारोपण करने में योग्य

होते हैं और सच्चे सुदृढ़ कहाते हैं।'' पं. बालकृष्ण भट्ट एक सफल ललित निबंधकार माने जाते हैं।

3.3 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था - रामचंद्र शुक्ल

'काव्य में... का प्रणयन आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने किया है। इस निबंध का अध्ययन करने से पहले उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के बारे में जानते हैं-

3.3.1 व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य पंडित रामचंद्र शुक्ल का जन्म सन् 1884 ई. में उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना गांव में हुआ था। बाल्यकाल में ही शुक्ल जी ने संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया था। जब इंटरमीडिएट कर रहे थे तब अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। इसी दौरान आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियां जागीं। छब्बीस वर्ष की आयु में 'हिंदी शब्दसागर' के सहकारी संपादक नियुक्त हुए तथा सौ वर्षों तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संपादक भी रहे। आचार्य शुक्ल हिंदू विश्वविद्यालय, काशी में हिंदी विभाग के अध्यापक नियुक्त हुए तथा बाद में विभागाध्यक्ष भी बना दिए गए। सन् 1937 तक आप हिंदू विश्वविद्यालय में रहे। तत्पश्चात अवकाश ग्रहण कर साहित्यिक सेवा में जीवन समर्पित कर दिया। सन् 1940 में छप्पन वर्ष की आयु में शुक्ल जी का देहावसान हुआ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल निबंधकार, इतिहासकार, कवि, कोषकार एवं अनुवादक भी थे। उन्होंने हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में आचार्यवत् योगदान किया। इनकी रचनाओं में पांडित्य, गंभीरता औरर मननशीलता के दर्शन होते हैं। शुक्ल जी ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। जैसे- सूरदास, गोस्वामी तुलसीदास, मलिक मुहम्मद जायसी पर निबंधात्मक आलोचनाएं अत्यंत सतर्क एवं मनोवैज्ञानिक हैं। बुद्ध चरित, हिंदी साहित्य का इतिहास, हिंदी काव्य में रहस्यवाद, चिंतामणि भाग-एक, दो आदि शुक्ल जी की मुख्य कृतियां हैं जो साहित्य जगत में विशिष्ट स्थान रखती हैं। शुक्ल जी ने समीक्षा के जो मानदंड निर्धारित किये हैं वे आज भी प्रासंगिक हैं और भविष्य में रहेंगे। आचार्य शुक्ल के व्यक्तित्व में उनका अध्यापकीय रूप झलकता है। उन्हें हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, अरबी, फारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। वे बहुपठ थे। जीवन, प्रकृति एवं साहित्य के उपासक थे। मानवतावादी शुक्ल जी की लोकमंगल की भावना उनकी रचनाओं में दिखाई देती है। वे कवि हृदय होने के कारण अत्यंत भावुक व्यक्ति थे। देश प्रेम

प्रकृति प्रेम उनमें कूट-कूट कर भरा था। वे समन्वयवादी दृष्टिकोण रखते थे। विवेकशील, तर्कशील होने के साथ वे स्वच्छंद चिंतन परक मनुष्य थे। लोक कल्याण, लोकमंगल के लिए ही उनका संपूर्ण लेखन समर्पित था।

3.3.2 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था-मूल पाठ

(तदेजति तन्नैजति-ईशावस्योपनिषद्)

आत्मबोध और जगद्बोध के बीच ज्ञानियों ने गहरी खाई खोदी पर हृदय ने कभी उसकी परवाह न की, भावना दोनों को एक ही मानकर चलती रही। इस जगत् के बीच जिस आनंद-मंगल की विभूति का साक्षात्कार होता रहा उसी दृश्य के स्वरूप को नित्य और चरम भावना द्वारा भक्तों के हृदय में भगवान् के स्वरूप की प्रतिष्ठा हुई। लोक में इसी स्वरूप के प्रकाश को किसी ने 'राम-राज्य' कहा कहा किसी ने 'आसमान की बादशाहत'। यद्यपि मूसाइयों और उनके अनुगामी ईसाइयों की धर्म-पुस्तक में आदम को खुदा की प्रतिमूर्ति बताया गया, पर लोक के बीच नर में नारायण की दिव्य कला का सम्यक दर्शन और उसके प्रति हृदय का पूर्ण निवेदन भारतीय भक्तिमार्ग में ही दिखाई पड़ा।

सत्, चित् और आनंद-ब्रह्म के उन तीन स्वरूपों में से काव्य और भक्ति-मार्ग, 'आनन्द' स्वरूप को लेकर चले। विचार करने पर लोक में इस आनन्द की अभिव्यक्ति की दो अवस्थाएं पाई जाएंगी - साधनावस्था और सिद्धावस्था। अभिव्यक्ति के क्षेत्र में ब्रह्म के 'आनन्द' स्वरूप का सतत आभास नहीं रहता, उसका आविर्भाव और तिरोभाव होता रहता है। इस जगत् में न तो सदा और सर्वत्र लहलहाता वसंत-विकास होता है, न सुख-समृद्धि-पूर्ण हास-विलास। शिविर के आतंक से सिमटी और झोंके झेलती वनस्थली की खिन्नता और हीनता के बीच से ही क्रमशः आनन्द की अरुण आभा धुँधली-धुँधली फूटती हुई अंत में वसंत की पूर्ण प्रफुल्लता और प्रचुरता के रूप में फैल जाती है, इसी प्रकार लोक की पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार के बीच दबी हुई आनन्द-ज्योति भीषण शक्ति में परिणत होकर अपना मार्ग निकालती है और फिर लोकमंगल और लोकरंजन के रूप में अपना प्रकाश करती है।

कुछ कवि और भक्त तो जिस प्रकार आनंद-मंगल के सिद्ध या आविर्भूत स्वरूप को लेकर सुख-सौन्दर्यमय, माधुर्य, सुषमा, विभूति, उल्लास, प्रेम-व्यापार इत्यादि उपभोग-पक्ष की ओर आकर्षित होते हैं उसी प्रकार आनन्द-मंगल की साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को लेकर पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार आदि के दमन में तत्पर शक्ति के संचरण में भी। उत्साह, क्रोध, करुणा, भय, घृणा इत्यादि की गतिविधि में भी पूरी रमणीयता देखते हैं। ये जिस प्रकार प्रकाश को फैला हुआ

देखकर मुग्ध होते हैं, उसी प्रकार फैलने के पूर्व उसका अन्धकार को हटाना देखकर भी। ये ही पूर्ण कवि हैं, क्योंकि जीवन की अनेक परिस्थितियों के भीतर ये सौन्दर्य का साक्षात्कार करते हैं। साधनावस्था या प्रयत्नपक्ष को ग्रहण करने वाले कुछ ऐसे कवि भी होते हैं जिनका मन सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष की ओर नहीं जाता, जैसे भूषण। इसी प्रकार कुछ कवि या भावुक आनन्द के केवल सिद्धस्वरूप या उपभोग-पक्ष ही अपनी वृत्ति रमा सकते हैं। उनका मन सदा सुख-सौन्दर्यमय, माधुर्य, दीप्ति, उल्लास, प्रेम-क्रीड़ा इत्यादि के प्राचुर्य ही की भावना में लगता है। इसी प्रकार की भावना या कल्पना उन्हें कला-क्षेत्र के भीतर समझ पड़ती है।

उपर्युक्त दृष्टि से हम काव्यों के दो विभाग कर सकते हैं-

1. आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले।
2 आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को लेकर चलने वाले।

डंटन (Theodjyre watts-Dunton) ने जिसे शक्तिकाव्य (Poetry as an energy) कहा है वह हमारे प्रथम प्रकार के अंतर्गत आ जाता है जिसमें लोक-प्रकृति को परिचालित करने वाला प्रभाव होता है, जो पाठकों या श्रोताओं के हृदय में भावों को स्थायी प्रेरणा उत्पन्न कर सकता है। पर डंटन ने शक्ति-काव्य से भिन्न को जो कला-काव्य (Poetry as an art) कहा है वह कला का उद्देश्य केवल मनोरंजन मानकर। वास्तव में कला की दृष्टि दोनों प्रकार के काव्यों में अपेक्षित है। साधनावस्था या प्रयत्न-पक्षल को लेकर चलने वाले काव्यों में भी यदि कला में चूक हुई तो लोकगति को परिचालित करने वाला स्थायी प्रभाव न उत्पन्न हो सकेगा। यहीं तक नहीं व्यंजित भावों के साथ पाठकों की सहानुभूति या साधरणीकरण तक, जो इस की पूर्ण अनुभूति के लिए आवश्यक है, न हो सकेगा। यदि 'कला' का वही अर्थ लेना है जो कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं में है- अर्थात मनोरंजन या उपभोग-मात्र का विधायक- तो काव्य के संबंध में दूर ही से इस शब्द को नमस्कार करना चाहिए। काव्य-समीक्षा में फरांसीसियों की प्रधानता के कारण इस शब्द को इसी अर्थ में ग्रहण करने से योरप से काव्य-दृष्टि इधर कितनी संकुचित हो गई, इसका निरूपण हम किसी अन्य प्रबंध में करेंगे।

आनंद की साधनावस्था या प्रयत्न-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों के उदाहरण- रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपालवध, किरतार्जुनीय। हिंदी में रामचरितमानस, पद्मावत (उत्तरार्द्ध), हम्मीररासी, पृथ्वीराज रासो, छत्रप्रकाश इत्यादि प्रबंधकाव्य, गीत, उर्दू के वीरस्सात्मक मरसिये। योरपीय भाषाओं में इलियड, ओडेसी, पैराडाइज लास्ट, रिवोल्ट, ऑफ इस्लाम इत्यादि प्रबंध काव्य पुराने बैलड्स (Ballads)।

आनन्द की सिद्धावस्था या उपभोग-पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों के उदाहरण हैं- आर्यासप्तशती, गाथा सप्तशती, अमरुशतक, गीतगोविन्द तथा शृंगारस्स के फुटकल पद्य। हिंदी में सूरसागर, कृष्ण-भक्त कवियों की पदावली, बिहारी-सतसई, रीतिकाल के कवियों में फुटकल शृंगारी पद्य, रास-पंचायध्यायी ऐसे वर्णनात्मक काव्य तथा आजकल की अधिकांश छायावादी कविताएं, फारसी उर्दू के शैर और गजलें। अंग्रेजी की लिरिक (Lyrics) कविताएं तथा कई प्रकार की वर्णनात्मक कविताएं।

आनन्द की साधनावस्था

लोक में फैली हुई दु:ख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनन्दकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्‌भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचंडता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामंजस्य का और कई रूपों में भी दर्शन होता है। किसी कोट-पतलून-हैटवाले को धाराप्रवाह संस्कृत बोलते अथवा किसी पंडित-वेशधारी सज्जन को अंग्रेजी की प्रगल वक्तृता देते सुन कर व्यक्तित्व का जो एक चमत्कार-सा दिखाई पड़ता है उसकी तह में भी सामंजस्य का यही सौन्दर्य समझना चाहिए। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचंडता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है। आदि-कवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौन्दर्य के उद्‌घाटन महोत्सव का दिव्य संगीत है। सौन्दर्य का यह उद्‌घाटन असौन्दर्य का आवरण हटाकर होता है। धर्म और मंगल की यह ज्योति अधर्म और अमंगल की घटा को फाड़ती हुई फटती है। इससे कवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है, रोष, हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है। पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार भीतर-भीतर आनंद-काल के विकास में ही योग देते पाये जाते हैं। यदि किसी ओर उन्मुख ज्वलन्त रोष है तो उसके और सब ओर करुण दृष्टि फैली दिखाई पड़ती है। यदि किसी ओर ध्वंज और हाहाकार है तो और सब ओर उसका सहगामी रक्षा और कल्याण है। व्यास ने भी अपने 'जयकाव्य' में अधर्म के पराभव और धर्म की जय का सौन्दर्य प्रत्यक्ष किया था।

वह व्यवस्था या वृत्ति, जिससे लोक में मंगल का विधान होता है 'अभ्युदय' की सिद्धि होती है, धर्म है। अत: अधर्म-वृत्ति को हटाने में धर्म-वृत्ति की तत्परता- चाहे वह उग्र और प्रचंड हो, चाहे कोमल और मधुर- भगवान् की आनंद-कला के विकास की ओर बढ़ती हुई गति है। यह गति यदि सफल हुई तो 'धर्म की जय' कहलाती है। इस गति में भी सुंदरता है और इसकी सफलता में भी। यह बात नहीं है कि जब यह गति सफल होती है तभी इसमें सुंदरता आती है। गति में सुंदरता रहती ही है, आगे चलकर चाहे यह सफल हो, चाहे विफल। विफलता में भी एक निराला ही

विषण्ण सौन्दर्य होता है। तात्पर्य यह कि यह गति आदि से अंत तक सुंदर होती है- अंत चाहे सफलता के रूप में हो चाहे विफलता के। उपर्युक्त दोनों आर्ष कवियों कवियों ने पूर्णता के विचार में धर्म की गति का सौन्दर्य दिखाते हुए उसका सफलता में पर्यवसान किया है। ऐसा उन्होंने उपदेशक की बुद्धि से नहीं किया है, धर्म की जय के बीच भगवान् की मूर्ति के साक्षात्कार पर मुग्ध होकर किया है। यदि राम द्वारा रावण का वध तथा कृष्ण के साहार्य द्वारा जरासंध और कौरवों का दमन न हो सकता तो भी रामकृष्ण की गतिविधि में पूरा सौन्दर्य रहता, पर उनमें भगवान् की पूर्ण कला का दर्शन न होता, क्योंकि भगवान् की शक्ति अमोघ है।

आनन्द-कला के प्रकाश की ओर बढ़ती हुई गति की विफलता में भी सौन्दर्य का दर्शन करने वाले अनेक कवि हैं। अंग्रेजी कवि शैली संसार में फैले पाखण्ड, अन्याय और अत्याचार के दमन तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच सीधे सरल प्रेमभाव के सार्वभौम संसार का स्वप्न देखने वाले कवि थे। उनके 'इस्लाम का विप्लव' (The Revolt of Islam) नामक द्वादशसर्ग-बद्ध महाकाव्य में मनुष्य जाति के उद्धार में रत नायक और नायिका (Laon and Cythna) में मंगल शक्ति के अपर्व संचय की छटा दिखाकर तथा उनके द्वारा एक बार दुर्दान्त अत्याचार के पराभव के मनोरम आभास से अनुरंजित करके अंत में उस शक्ति की विफलता की विषादमयी छाया से लोक को फिर आवृत्ति दिखाकर छोड़ दिया गया है।

जैसे ऊपर कह आये हैं, मंगल-अमंगल के द्वंद्व में कवि लोग अंत में मंगल शक्ति की जो सफलता दिखा दिया करते हैं उसमें सदा शिक्षावाद (Didacticism) या अस्वाभाविकता की गंध समझकर नाक-भौं सिकोड़ना ठीक नहीं। अस्वाभाविकता तबी आएगी जब बीच का विधान ठीक न होगा अर्थात जब प्रत्येक अवसर पर सत्पात्र सफल और दुष्ट पात्र विफल या ध्वस्त दिखाए जाएंगे पर सच्चे कवि ऐसा कभी नहीं करते। इस जगत में अधर्म प्राय: दुर्दमनीय शक्ति प्राप्त करता है जिसके सामने धर्म की शक्ति बार-बार उठकर व्यर्थ होती रहती है। कवि जहां मंगलशक्ति की सफलता दिखाता है वहां कला की दृष्टि से सौन्दर्य का प्रभाव डालने के लिए, धर्म-शासक की हैसियत से डराने के लिए नहीं कि यदि ऐसा कर्म करोगे तो ऐसा फल पाओगे। कवि कर्म-सौन्दर्य के प्रभाव द्वारा प्रवृत्ति या निवृत्ति अंत:प्रकृति में उत्पन्न करता है, उसका उपदेश नहीं देता।

कवि सौन्दर्य से प्रभावित रहता है और दूसरों को भी प्रभावित करना चाहता है। किसी रहस्यमयी प्रेरणा से उसकी कल्पना में कई प्रकार के सौन्दर्यों का जो मेल आप से आप हो जाया करता है उसे पाठक के सामने भी वह प्राय: रख देता है जिस पर कुछ लोग कह सकते हैं कि ऐसा

मेल क्या संसार में बराबर देखा जाता है। मंगल-शक्ति के अधिष्ठान राम और कृष्ण जैसे पराक्रमशाली और धीर हैं वैसा ही उनका रूप-माधुर्य और उनका शील भी लोकोत्तर है। लोक-हृदय आकृति और गुण, सौन्दर्य और सुशीलता एक ही अधिष्ठान में देखना चाहता है। इसी से 'यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति' सामुद्रिक की यह उक्ति लोकोक्ति के रूप में चल पड़ी। 'नैषध' में नल हंस से कहते हैं-

न तुला-विषये तवाकृतिर्न बचो वर्त्मनि ते सुशीलता।
त्व दुदाहरणऽकृतौ गुण इति सामुद्रिक-सार-मुद्रणा॥

भीतरी और बाहरी सौन्दर्य, रूप-सौन्दर्य और कर्म-सौन्दर्य के मेल की यह आदत धीरोदात्त आदि भेद-निरूपण से बहुत पुरानी है और बिल्कुल छूट भी नहीं सकती। यह हृदय की एक भीतरी वासना की तुष्टि के हेतु कला की रहस्यमयी प्रेरणा है। क-वीं शताब्दी के कवि शैली-जो राजशासन, धर्म-शासन, समाज-शासन आदि सब प्रकार की शासन व्यवस्था के घोर विरोधी थे- इस प्रेरणा से पीछा न छुड़ा सके। उन्होंने भी अपने प्रबंध काव्यों में रूप सौन्दर्य और कर्म सौन्दर्य का ऐसा ही मेल किया है। उनके नायक (या नायिका) जिस प्रकार पीड़ा, अत्याचार, आदि से मनुष्य जाति का उद्धार करने के लिए अपना प्राण तक उत्सर्ग करने वाले, घोर से घोर कष्ट और यंत्रणा से मुंह न मोड़ने वाले, पराक्रमी, दयालु और धीर हैं, उसी प्रकार रूप-माधुर्य-संपन्न भी।

आज भी किसी कवि से राम की शारीरिक सुंदरता कुंभकर्ण को और कुंभकर्ण की कुरूपता राम को न देते बनेगी। माईकेल मधुसूदन दत्त ने मेघनाद को अपने काव्य का रूप-गुण संपन्न नायक बनाया पर लक्ष्मण को वे कुरूप न कर सके। उन्होंने जो उलट-फेर किया, वह कला या काव्यानुभूति को किसी प्रकार की प्रेरणा से नहीं बल्कि एक पुरानी धारणा तोड़ने की बहादुरी दिखाने के लिए, जिसका शौक किसी विदेशी नई शिक्षा के पहले पहल प्रचलित होने पर प्राय: सब देशों में कुछ दिन रहा करता है। इसी प्रकार बंगभाषा के एक-दूसरे कवि नवीनचंद्र ने अपने 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य में कृष्ण का आदर्श ही बदल दिया है। उसमें वे ब्राह्मणों के अत्याचार से पीड़ित जनता के उद्धार के लिए उठ खड़े हुए एक क्षत्रिय महात्मा के रूप में अंकित किये गए हैं। अपने समय में उठी हुई किसी खास हवा की झोंक में प्राचीन आर्ष काव्यों के पूर्णतया निर्दिष्ट स्वरूपवाले आदर्श पात्रों को एकदम कोई नया मनमाना रूप देना भारती के पवित्र मंदिर में व्यर्थ गड़बड़ मचाना है।

शुद्ध मर्मानुभूति द्वारा प्रेरित कुशल कवि भी प्राचीन आख्यानों को बराबर लेते आए हैं और अब भी लेते हैं। वे उनके पात्रों में अपनी नवीन उद्‌भावना का, अपनी नई कल्पित बातों का बराबर आरोप करते हैं, पर वे बातें उन पात्रों के चिर प्रतिष्ठित आदर्शों के मेल में होती है। केवल अपने समय की परिस्थिति विशेष को लेकर जो भावनाएं उठती हैं उनके आश्रय के लिए जब कि नये

आख्यानों और नये पात्रों की उद्‌भावना स्वच्छंतापूर्वक की जा सकती है तब पुराने आदर्शों को विकृत या खंडित करने की क्या आवश्यकता है ?

कर्म-सौन्दर्य के जिस स्वरूप पर मुग्ध होना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है और जिसका विधान कवि परंपरा बराबर करती चली आ रही है, उसके प्रति अपेक्षा प्रकट करने और कर्म-सौन्दर्य के एक दूसरे पक्ष में ही केवल प्रेम और भ्रातृभाव के प्रदर्शन और आचरण में ही काव्य का उत्कर्ष मानने का जो एक फैशन टाल्सटाय के समय से चला है वह एकदेशीय है। दीन और असहाय जनता को निरंतर पीड़ा पहुंचाते चले जाने वाले क्रूर आततायियों को उपदेश देने, उनसे दया की भिक्षा मांगने और प्रेम जताने तथा उनकी सेवा-शुश्रुषा करने में ही कर्तव्य की सीमा नहीं मानी जा सकती, कर्मक्षेत्र का एकमात्र सौन्दर्य नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं, वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे। काव्य कला की पूरी रमणीयता इन दोनों पक्षों के समन्वय के बीच मंगल या सौन्दर्य के विकास में दिखाई पड़ती है।

भावों की प्रक्रिया की समीक्षा से पता चलता है कि उदय से अस्त तक भाव मंडल का कुछ भाग तो आश्रय की चेतना के प्रकाश में (Conscious) रहता है और कुछ अंतस्संज्ञा के क्षेत्र (sub-conscious region) में छिपा रहता है। संसारी भावों के संचरण काल में संचारी होकर आई हुई असूया या ईर्ष्या ही को लीजिए। जिस क्षण में वह अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई होती है, उस क्षण में आश्रय को ही रति भाव की कोमल सत्ता का ज्ञान नहीं रहता, उस क्षण में उसके भीतर ईर्ष्या की तीक्ष्ण प्रतीत रहती है और बाहर ईर्ष्या के ही लक्षण दिखाई देते हैं। जिस प्रकार किसी आश्रय के भीतर कोई एक भाव स्थायी रहता है और अनेक भाव तथा अंतर्दशाएं उसके संचारी के रूप में आती है उसी प्रकार किसी प्रबंधकाव्य के प्रधान पात्र में कोई मूल प्रेरक भाव या बीजभाव रहता है जिसकी प्रेरणा से घटना-चक्र चलता है और अनेक भावों के स्फुरण के लिए जगह निकलती चलती है। इस बीजभाव को साहित्य ग्रंथों में निरूपित स्थायी भाव और अगीभाव दोनों से भिन्न समझना चाहिए।

बीजभाव द्वारा स्फुरित भावों में कोमल और मधुर-कठोर और तीक्ष्ण- दोनों प्रकार के भाव रहते हैं। यदि बीजभाव की प्रकृति मंगलकारी होती है तो उसकी व्यापकता और निर्विशेषता के अनुसार सारे प्रेरित भाव तीक्ष्ण और कठोर होने पर भी सुंदर होते हैं। ऐसे बीजभाव की प्रतिष्ठा जिस पात्र में होती है उसके सब भावों के साथ पाठकों की सहानुभूति होती है। अर्थात पाठक या श्रोता भी रसरूप में उन्हीं भावों का अनुभव करते हैं जिन भावों की वह व्यंजना करता है। ऐसे पात्र की गति में बाधा डालने वाले पात्रों की उग्र या तीक्ष्ण भावों के साथ पाठकों का वास्तव में तादात्म्य नहीं होता, चाहे उनकी व्यंजना में रस या निष्पत्ति करने वाले तीनों अवयव वर्तमान हों। राम यदि रावण

के प्रति क्रोध या घृणा की व्यंजना करेंगे तो पाठक या श्रोता का भी हृदय उस क्रोध या घृणा की अनुभूति में योग देगा। इस क्रोध या घृणा में भी काव्य का पूर्ण सौन्दर्य होगा। पर रावण यदि राम के प्रति क्रोध या घृणा की व्यंजना करेगा तो रस के तीनों अवयवों के कारण 'शास्त्र-स्थिति-संपादन' चाहे हो जाए पर उस व्यंजित भाव के साथ पाठक के भाव का तादात्म्य कभी न होगा। पाठक केवल चरित्र द्रष्टा मात्र रहेगा, उसका केवल मनोरंजन होगा, भाव में लीन करने वाली प्रथम कोटि की रसानुभूति उसको न होगी।

ऊपर कहा गया है कि किसी शुभ बीजभाव की प्रेरणा से प्रवर्तित तीक्ष्ण और उग्र भावों की सुंदरता की मात्रा उस बीजभाव की निर्विशेषता और व्यापकता के अनुसार होती है। जैसे, यदि करुणा किसी व्यक्ति की विशेषता पर अवलंबित होगी कि पीड़ित व्यक्ति हमारा कुटुंबी मित्र आदि है तो उस करुणा के द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों में उतनी सुंदरता न होगी। पर बीजरूप अंतस्संज्ञा में स्थित करुणा यदि इस ढब की होगी कि इतने पुरवासी, इतने देशवासी या इतने मुनष्य पीड़ा पा रहे हैं तो उसके द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों का सौन्दर्य उत्तरोत्तर अधिक होगा। यदि किसी काव्य में वर्णित दो पात्रों में से एक तो अपने भाई को अत्याचार और पीड़ा से बचाने के लिए अग्रसर हो रहा है और दूसरा किसी बड़े भारी जनसमूह की गति में बाधा डालने वाले के प्रति, तो दोनों के प्रदर्शित क्रोध के सौन्दर्य के परिणाम में बहुत अंतर होगा।

भावों की छानबीन करने पर मंगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं- करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रंजन की ओर। लोक में प्रथम साध्य रक्षा है। रंजन का अवसर उसके पीछे आता है। अत: साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों का बीज भाव ही ठहराता है। यदि इसे शायद अपने दो नाटकों में रामचरित को लेकर चलने वाले महाकवि भवभूति ने 'करुण' को ही एकमात्र रस कह दिया। रामायण का बीजभाव करुणा है कि जिसका संकेत क्रौंच को मारने वाले निषाद के प्रति वाल्मीकि के मुंह से निकले वचन द्वारा आरंभ में ही मिलता है। उसके उपरांत भी बालकांड के क्ष्वें सर्ग में इसका आभास दिया गया है जहां देवताओं ने ब्रह्मा से रावण द्वारा पीड़ित लोक की दारुण दशा का निवेदन किया है। उक्त आदि काव्य के भीतर लोकमंगल की शक्ति के उदय का आभास ताड़का और मारीच के दमन के प्रसंग में ही मिल जाता है। पंचवटी से वह शक्ति जोर पकड़ती दिखाई देती है। सीताहरण होने पर उसमें आत्मगौरव और दा□पत्य प्रेम की प्रेरणा का भी योग्य हो जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि इस आत्मगौरव और दाम्पत्य प्रेम की प्रेरणा बीच से प्रकट होकर उस विराट मंगलोन्मुखी गति में समन्वित हो जाती है। यदि राक्षसराज पर चढ़ाई करने का मूल कारण केवल आत्मगौरव या दाम्पत्य प्रेम होता तो राम के 'कालाग्नि-सदृश क्रोध' में काव्य का वह लोकोत्तर सौन्दर्य न होता।

लोक के प्रति करुणा जब सफल हो जाती है, लोक जब पीड़ा और विघ्न-बाधा से मक्त हो जाता है तब रामराज्य में जाकर लोक के प्रति प्रेम-प्रवर्तन का, प्रजा के रंजन का, उसके अधिकाधिक सुख के विधान का, अवकाश मिलता है।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेमभाव की कोमल व्यंजना में ही नहीं माना जा सकता जैसा कि टाल्सटाय के अनुयायी कुछ कलावादी कहते हैं। क्रोध आदि उग्र और प्रचंड भावों के विधान में भी, यदि उनकी तह में करुण भाव व्यक्त रूप में स्थित हो, पूर्ण सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है। स्वतंत्रता के उन्मत उपासक, घोर परिवर्तनवादी शैली के महाकाव्य 'The Revolt of Islam' के नायक-नायिका अत्याचारियों के पास जाकर उपदेश देने वाले, गिड़गिड़ाने वाले, अपनी साधुता, सहनशीलता और शांत वृत्ति का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन करने वाले नहीं हैं। वे उत्साह की उमंग में प्रचंड वेग से युद्ध क्षेत्र में बढ़ने वाले, पाखण्ड, लोकपीड़ा और अत्याचार देख पुनीत क्रोध के सात्विक तेज से तमतमाने वाले, भय या स्वार्थवश आततायियों की सेवा स्वीकार करने वालों के प्रति उपेक्षा प्रकट करने वाले हैं। शेली ने भी काव्यकला का मूलतत्व प्रेमभाव ही माना था, पर अपने को सुख-सौंदर्यमय माधुर्यभाव तक ही बद्ध न रखकर प्रबध क्षेत्र में भी अच्छी तरह घुसकर भावों की अनेकरूपता का विन्यास किया था। स्थिर (State) सौन्दर्य और गत्यात्मक (Dynamic) सौन्दर्य, उपभोग-मनुष्य में भ्रातृ प्रेम संचार को ही एकमात्र काव्य तत्व कहने को बहुत कुछ कारण सांप्रदायिक था। इसी प्रकार कलावादियों का केवल कोमल और मधुर की लीक पकड़ना मनोरंजन मात्र की हल्की रुचि और दृष्टि की परिमिति के कारण समझना चाहिए। टाल्सटाय के अनुयायी प्रयत्न पक्ष का लेते अवश्य हैं पर केवल पीड़ितों की सेवा-शुश्रूषा की दौड़धूप, आततायियों पर प्रभाव डालने के लिए साधुता की इस मृदुल गति को वे 'आध्यात्मिक शक्ति कहते हैं। पर भारतीय दृष्टि से हम इसे भी प्राकृतिक शक्ति मनुष्य की अंत: प्रकृति की सात्विक विभूति मानते हैं। विदेशी अर्थ में इस 'आध्यात्मिक' शब्द का प्रयोग हमारी देशभाषाओं में भी प्रचार पर रहा है। 'अध्यात्म' शब्द की, मेरी समझ में काव्य य कला के क्षेत्र में कोई जरूरत नहीं है।

पूर्ण प्रभविष्णुता के लिए काव्य में हम भी सत्वगुण की सत्ता आवश्यक मानते हैं, पर दोनों रूपों में दूसरे भावों की तह में अर्थात अंतस्संज्ञा में स्थित बीजरूप में भी और प्रकाश रूप में भी। हम पहले कह आए हैं कि लोक में मंगल विधान की ओर प्रवृत्त करने वाले दो भाव है- करुणा और प्रेम। यह भी दिखा आए हैं कि क्रोध, युद्धोत्साह आदि प्रचंड और उग्र वृत्तियों की तह में यदि इन दोनों में से कोई भाव बीजरूप में स्थित होगा, तभी सच्चा साधारणीकरण और पूर्ण सौन्दर्य का प्रकाश होगा। उच्च दशा का प्रेम और करुणा दोनों सत्व गुणप्रधान है। त्रिगुणों में सत्व गुण

सबके ऊपर है। यहां तक कि उसकी ऊपरी सीमा नित्य पारमार्थिक सत्ता के पास तक व्यक्त और अव्यक्त की संधि तक जा पहुंचती है। इसी से शायद व्ललभाचार्य जी ने सच्चिदानंद के सत् स्वरूप का प्रकाश करने वाली शक्ति की 'संधिनि' कहा है। व्यवहार में 'सत्' शब्द के दो अर्थ लिए जाते हैं- 'जो वास्तव में हो तीा 'अच्छा या शुभ'।

जबकि अव्यक्तावस्था से छूटी हुई प्रकृति के व्यक्त स्वरूप जगत में आदि से अंत तक सत्व, रजस् और तमस् तीनों गुण रहेंगे तब समष्टि रूप में लोक के बीच मंगल का विधान करने वाली ब्रह्म की आनंद-कला के प्रकाश की यही पद्धति हो सकती है कि तमोगुण और रजोगुण दोनों सत्व गुण के अधीन होकर उसके इशारे पर काम करें। इस दशा में किसी ओर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार काम करने पर भी समष्टि रूप में और सब ओर वे सत्व गुण के लक्ष्य की ही पूर्ति करेंगे। सत्व गुण के इस शासन में कठोरता, उग्रता और प्रचंडता भी सात्विक तेज के रूप में भाषित होगी। इसी से अवतार रूप में हमारे यहां भगवान् की मूर्ति एक ओर तो 'वज्रादपि' कठोर और दूसरी ओर 'कुसुमादपि' मृदु रखी गयी है-

कुलिसहु चाहि कठोर अति, कुसुमहु चाहि।

3.3.3 निबंध शैली

आचार्य रामचंद्र शुक्ल युग निर्माता निबंधकार, साहित्यकार, इतिहासकार, समाजशास्त्री, मनोविज्ञानी हैं। निबंधों में उनके समीक्षा सिद्धांत आज भी कसौटी बने हुए हैं। शुक्ल जी ने शैली के क्षेत्र में अनके प्रयोग किये हैं। वे मुख्यत: विचारात्मक चिंतन प्रधान शैली को अपनाते हैं तथा उन विचारों के बीच भावात्मकता को भी अवकाश देते हैं। यह बुद्धि एवं हृदय का समन्वय ही उनकी शैली को विशिष्ट बनाता है। उनके गहन, गंभीर निबंधों में हास्य, व्यंग्य के छींटे भी दृष्टिगोचर होते हैं। शुक्लजी के मनोविकार संबंधी निबंधों में उत्साह, श्रद्धा भक्ति, करुणा, लज्जा, घृणा, लोभ और प्रीति, ईर्ष्या, भय, क्रोध आदि भावों या मनोविकारों को स्थान मिला है। इन निबंधों में उन्होंने विश्लेषण करते हुए भावात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। समीक्षात्मक एवं सैद्धांतिक निबंधों में विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग किया है। वे वर्णनात्मक शैली का उपयोग भी प्रचुरता से करते हैं। शुक्ल जी अपने विचारों को जन-सामान्य के स्तर पर रखकर परखने के पश्चात ही अभिव्यक्त करते हैं। उनके निबंधों में गंभीरता, स्पष्टता, वैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। अपने निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए वे सूत्रों की व्याख्याएं विस्तार से करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा अत्यंत प्रौढ़, प्रांजल एवं तत्सम प्रधान है। कभी-कभी यह पाठक को बोझिलता का अनुभव भी कराती है। किंतु विषय के अनुकूल भाषा एवं भावों की

अभिव्यक्ति की उनकी अद्‌भुत क्षमता पाठक को विरत नहीं होने देती। विश्लेषण और विवेचन करते हुए वे बोधगम्य शब्द, वाक्यों का प्रयोग करते हुए रोचक उदाहरण, कहावतें और मुहावरों का उपयोग करते हैं। डॉ. विजयेंद्र स्नातक कहते हैं- 'शुक्ल जी की भाषा की सबसे महान और उल्लेखनीय विशेषता है, समर्थ एवं व्यंजक शब्दों का नूतन निर्माण।' शुक्लजी ने निबंध रचना के साथ-साथ साहित्य समीक्षा के क्षेत्र को भी समृद्ध किया तथा शुक्लजी ने निबंध रचना के साथ-साथ साहित्य समीक्षा के क्षेत्र को भी समृद्ध किया तथा समीक्षा सिद्धांतों का निर्माण करते हुए उन्होंने नये पारिभाषिक शब्द गढ़े। शुक्ल जी के व्यक्तित्व की दृढ़ता, आत्मबल, नैतिकता उनके निबंधों में दिखाई देती है। बुद्धि एवं हृदय का सुंदर समन्वय उनके काव्यशास्त्रीय निबंधों में भी दिखाई देती है। उनकी शैली विषय को जीवंतता प्रदान करने में सक्षम है। शुक्ल जी के निबंधों में संघटित विचार परंपरा दिखाई देती है। इस परंपरा के अंतर्गत वे भावों एवं विचारों की कसावट को महत्व देते हैं तथा दोनों को परस्पर ऐसे गूंथ देते हैं कि पाठक सहज प्रवाह के साथ एक विचार से दूसरे विचार तक पहुंच जाता है। ऐसी प्रवाहमयता के बीच कोई भी शब्द या वाक्य इधर-उधर नहीं किया जा सकता। ऐसी प्रौढ़ता मुक्त शैली उनके लेखन को अद्‌भुत बनाती है। उदाहरण स्वरूप यह वाक्य लिया जा सकता है- 'ऊबड़-खाबड़' पहाड़ी रास्तों में जब झाड़ियों के कांटे उसके शरीर में चुभते हैं तब उसमें सानिध्य का यह मधुर भाव िबना उठे नहीं रह सकता कि वे झाड़ उन्हीं प्राचीन झाड़ों के वंशज हैं जो राम, लक्ष्मण, सीता को कभी चुभे होंगे।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में विषयों की प्रधानता के साथ व्यक्ति प्रधानता भी है। वे लोक को साथ लेकर चलते हैं, लेकिन कहीं भी उनकी शैली में प्रौढ़ता और प्रांजलता शिथिल नहीं होती। शैली रचनाकार के व्यक्तित्व का आईना होती है। हर रचनाकार की अपनी शैली होती है, जिसे पढ़ते ही पाठक के मनोमस्तिष्क में रचनाकार का नाम उभर आता है। शुक्ल जी की शैली विषय को विस्तार और गहनता से विश्लेषित करने के साथ ही उसे भावात्मकता बनाए रखने की अद्‌भुत कला से परिपूर्ण है। शुक्ल जी की भाषा शैली में भव्यता, विशालता और ओजस्विता की अनुभूति के कारण इसका रचना जगत में विशेष स्थान है। बाबू गुलाब राय कहते हैं- 'उनके निबंधों में विषय को शाखा-प्रशाखाओं में ले जाकर उनकी विशद व्या□या करने की निर्वैयक्तिकला है, किंतु यह निवैयक्तिकला इस कोटि तक नहीं पहुंचती है कि वह पुस्तक का अध्याय बन जाए। उसमें विषय प्रतिपादन के वैशिष्ट्य और ओजमयी शैली में अपने-अपने पक्ष

समर्थन का उत्साह, उनकी एक सुखद वैयक्तिवाद बौद्धिक तंतुओं में इतनी जकड़ी हुई है कि उसमें लेशमात्र भी विशृंखलता नहीं आने पाती।' तात्पर्य यह कि विषय को स्पष्ट करने के लिए शुक्ल जी वैयक्तिक बातों के उदाहरण देते हैं किंतु इससे विषय की सरसता, रोचकता, सौष्ठव बढ़ता ही ही है, घटता नहीं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में आगमन शैली एवं निगमन शैली दोनों का ही प्रयोग दिखाई देता है। आगमन शैली में विषय की व्याख्या एवं विवेचना करने के पश्चात निष्कर्ष के रूप में सूत्र प्रस्तुत किया जाता है, जबकि निगमन शैली में पहले सूत्र प्रस्तुत किया जाता है तत्पश्चात उसकी व्या□या एवं विवेचना की जाती है। आचार्य शुक्ल मुख्य रूप से निगमन शैली का प्रयोग करते हैं। वे निगमन शैली के प्रयोग में सिद्धहस्त हैं। सूत्र रूप में अपने चिंतन-सिद्धांतों को प्रस्तुत करते हैं। जैसे- 'यदि प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है।' आचार्य शुक्ल किसी भाव या मनोविकार की तुलना अन्य भाव या मनोविकार से करने के लिए तुलनात्मक शैली का प्रयोग करते हैं, जैसे- उत्साह और भय, लोभ और प्रीति, श्रद्धा और प्रेम आदि। यह उनकी शैली एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण विशेषता है। आचार्य शुक्ल निबंध में या किसी विषय विशेष का विवेचन करते हुए उस स्थल पर दुरूहता या कठिनता देखते हैं तो 'सारांश यह है' कहकर पद को स्पष्ट करते हैं। यही कारण है कि आचार्य शुक्ल के द्वारा किया गया विषय प्रतिपादन सौन्दर्य से परिपूर्ण होता है। अनावश्यक भूमिकाएं बांधना, निरर्थक, बेमानी चर्चा करना उन्हें प्रिय नहीं है। उनके लेखन की प्रौढ़ता इस बात में भी देखी जा सकती है कि उनकी छोटी-सी बात, छोटे-से वाक्य में भी गहन अर्थ छिपा होता है। 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', 'तुलसी का भक्तिमार्ग', 'मानस की धर्मभूमि' आदि ऐसे ही निबंध हैं जिनकी प्रौढ़ता सरसता एवं गूढ़ार्थ के साथ अत्यंत सुसंघटित रूप में प्रकट होती है।

आचार्य शुक्ल के निबंधों में परंपरागत काव्यशास्त्रीय की स्थापना हुई है। इसलिए ये कभी-कभी जटिलता का बोध कराते हैं, तथा पाठक इन्हें नीरस और बोझिल समझ बैठता है। किंतु सूत्रों की व्याख्या करने के साथ-साथ इसका प्रवाह एवं सरसता पाठक को बांधने में सफल हो जाती है। शुक्ल जी के गंभीर निबंधों को समझने के लिए बौद्धिकता आवश्यक है। उनके निबंधों में साधारणीकरण, व्यक्ति वैचित्र्यवाद तथा रसात्मक बोध के विविध रूप मिलते हैं। शुक्ल जी विषय की विवेचना करने के लिए रोचक उदाहरण देते हैं, जिनमें हास्य, व्यंग्य एवं छींटाकशी दृष्टिगोचर होती है। वे विषय को रोचक बनाने के लिए कथाओं का समावेश भी करते हैं।

प्रसंगानुकूल एवं अवसरानुकूल किसी पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक कथा को समाविष्ट कर बात को स्पष्ट भी कर देते हैं तथा विषय की सरसता एवं प्रवाह में वृद्धि होती है। वे विषय को बोधगम्य बनाने के लिए कथाओं को जिस तरह से उद्धृत करते हैं उससे विषय के अतिरिक्त भी ज्ञान प्राप्त होता है। जैसे 'कविता क्या है?' में शुक्ल जी लिखते हैं- 'मनुष्येत्तर बाह्य प्रकृति का इसी रूप में ग्रहण कुमार संभव के आरंभ तथा रघुवंश के बीच-बीच में मिलता है। नाटक यद्यपि मनुष्य की ही भीतरी-बाहरी प्रवृत्तियों के प्रदर्शन के लिए लिखे जाते हें और भवभूति अपने मार्मिक और तीव्र आंतवृतिय विधान के लिए ही प्रसिद्ध हैं पर उनके उत्तर रामचरित में कहीं-कहीं बाह्य प्रकृति के ही बहु सांग और संश्लिष्ट चित्र, खंड-चित्र पाए जाते हैं। पर मनुष्येत्तर बाह्य प्रकृति को जो प्रधानता मेघदूत से मिली है, वह संस्कृत के किसी और काव्य में नहीं।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की भाषा शैली अत्यंत समृद्ध है। उर्दू, अंग्रेजी, तद्भव, तत्सम शब्दों के साथ लोक भाषा में कहावतें, मुहावरे उनकी रचनात्मकता के प्रवाह तथा प्रभावोत्पादकता में वृद्धि करते हैं। भावात्मक एवं विचारात्मक निबंधों में कहीं-कहीं फारसी की लोकोक्तियां भी दीख पड़ती है, जैसे 'मंग अंबोह जश्ने दारद।' समीक्षात्मक निबंधों में भाषा की प्रौढ़ता अधिक होती है, लेकिन उनमें तत्सम शब्दों का बाहुल्य होता है। इन समीक्षात्मक निबंधों में वे उर्दू शब्दों का, मुहावरे एवं लोकोक्तियों का प्रयोग कम करते हैं। शुक्ल जी की गठी हुई, मंजी हुई, प्रौढ़ भाषा विषय प्रतिपादन में सक्षम होती है। वे विषयानुकूल भाषा एवं शैली का प्रयोग करते हैं। 'चिन्तामणि' उनके निबंधों का संग्रह है जिसमें हृदय एवं बुद्धि की यात्रा साथ-साथ होती है। इनके निबंधों में भाव एवं विचारों की सुसंबद्धता तथा संघठनात्मकता अपूर्व है। विषय एवं व्यक्तित्व का मणिकांचन संयोग शुक्ल जी के निबंधों में दिखाई देता है। उनके निबंध हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था में वे गहन चिंतन के साथ तुलनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए भारतीय चिंतन के महत्व को प्रतिपादित करते हैं। इसमें सूत्रात्मक एवं विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। संस्कृत के शब्द अर्थात तत्सम शब्दों, जैसे- आत्मबोध, विभूति, नित्य, सम्यक् तथा उर्दू शब्दों, जैसे- आदिम, खुदा, आसमान की बादशाहत आदि के प्रयोग ने निबंध को प्रौढ़ता, गंभीरता प्रदान करने के साथ विषय की रोचकता में वृद्धि की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल शुद्ध परिमार्जित भाषा एवं तार्किक शैली का भी प्रयोग प्रसंगानुकूल करते हैं।

3.3.4 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : प्रतिपाद्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस निबंध में काव्य को भाव योग मानकर उसे ज्ञान योग के समकक्ष प्रतिष्ठित कर उसे जनसमूह के लिए मंगलकारी एवं कल्याणकारी कर रहे हैं। उन्होंने काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था पर बल लदिया है। वे लोक की उपेक्षा करने वाले ज्ञान मार्ग की पक्षधरता नहीं करते बल्कि उस भक्तिमार्ग की पक्षधरता करते हैं जो अपनी उदारता, व्यापकता एवं सहजता से लोक का कल्याण करता है। शुक्ल जी मानते हैं कि ज्ञानमार्गियों ने आत्मबोध (ज्ञानमार्ग) एवं जगतबोध (लोक कल्याण) के बीच विशाल अन्तर उत्पन्न किया। दोनों की दूरियां बढ़ाने का प्रयत्न करते रहे किंतु हृदय की भावनाएं दोनों को एक मानकर चलती रहीं। आत्मज्ञानी कहते रहे कि इस संसार में रहकर कभी सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते किंतु भक्तों का परम विश्वास है कि वे इस संसार में रहकर ही लोक कल्याण कर जीवन को सार्थक कर सकते हैं। भक्त लोक कल्याण की भावना को मूल मानकर इसी आनंद में नित्य मग्न रहता है तथा उस परम तत्व परमात्मा के ऐश्वर्य का साक्षात्कार कर आनंदित रहता है। अवतारों के रूप में वह जिस परम विभूति को अपने मध्य पाता है उसके उत्कृष्ट जन कल्याणकारी कार्यों को देखकर उसे अपने हृदय में स्थान दे देता है और स्वयं को उसके प्रति पूरे भक्ति भाव से समर्पित कर देता है। भक्तों ने जिन-जिन लोक मंगलकारी विधायक गुणों को उस तेजस्वी व्यक्तित्व में देखा, उन्हीं के अनुरूप उसने उनकी उपासना की, आराधना की। इस आनंददायी स्वरूप के अद्‌भुत कार्यों से किसी भारतीय ने इसे 'राम राज्य' कहा तो किसी ईसाई ने 'आसमान की बादशाहत'। पैगंबर मूसा के अनुयायी यहूदियों ने अपनी धर्म पुस्तक में आदम को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है या प्रतिमूर्ति माना है किंतु भारतीय भक्ति मार्ग में उस परम तत्व को ईश्वर का अवतार कहा गया है। भारतीय साहित्य में सूर और तुलसी ने अपने आराध्य राम कृष्ण को लोक के मध्य मानव की तरह देखा तथा नर में नारायण की दिव्य कला के दर्शन किये। इसीलिए शुक्ल जी भक्ति मार्ग को महत्वपूर्ण प्रतिपादित करते हैं।

शुक्ल जी कहते हैं- ब्रह्म के तीन रूप हैं- सत्, चित् और आनंद। काव्य में एवं भक्ति में 'आनंद' को महत्व दिया गया है। आनंद की अभिव्यक्ति की दो दशाएं हैं- (क) साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले, (ख) सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले।

शुक्ल जी कहते हैं कि अभिव्यक्ति का क्षेत्र हो या लोक, आनंद सदैव स्थायी नहीं रहता, आता जाता रहता है। संसार में सुख रूपी वसंत हो, समृद्धि हो, हास, विलास हो यह सब सदैव नहीं रहते। शिशिर के आतंक से खिन्न वनस्थली में पतझर के बाद नई कोंपले फूटती हैं एवं वसंत

की छटा चहुंओर व्याप्त हो जाती है। इसी तरह संसार में अन्याय, पीड़ा, अत्याचार के घनी कालिमा के बीच से ही आनंद की ज्योति फूटती है तथा लोक मंगल और लोकरंजन का प्रकाश फैलाती है। कुछ कवि एवं भक्त आनंद की सिद्धावस्था यानी सौन्दर्य, सुख, उल्लास, प्रेम, सफलता की ओर आकर्षित होत हैं, लेकिन कुछ इस सिद्धि को पाने के पहले प्रयत्न पक्ष अर्थात साधना करने के पक्षधर होते हैं। वे पीड़ा, अन्याय, अत्याचार के दमन में लगी शक्ति के सौन्दर्य को देखते हैं। कुछ कवि और भक्तों का मन दोनों पक्षों में रमता है। आचार्य शुक्ल पाश्चात्य विचारक डंटन को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उन्होंने जिसे शक्ति काव्य कहा है वही हमारी आनंद की साधनावस्था है। पर उन्होंने दूसरी बात जो कला-काव्य कहा है और उसका उद्देश्य केवल मनोरंजन है तो यह उचित नहीं है। अगर कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं में एक मनोरंजन या उपभोग ही इस कला-काव्य का तात्पर्य है तो वह त्याज्य है। इससे काव्य दृष्टि संकुचित हो जाएगी। वे साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्यों में- रामायण, महाभारत, रघुवंश, शिशुपाल वध आदि। हिंदी में रामचरितमानस, पृथ्वीराज रासो आदि तथा यूरोपीय भाषाओं में- इलियड, ओडिसी, पैराडाइज लॉस्ट, रिवोल्ट ऑफ इस्लाम आदि को रेखांकित करते हैं। सिद्धावस्था यानी उपभोग पक्ष को लेकर चलने वाले ग्रंथों में- गीतगोविन्द, सूरसागर, बिहारी सतसई तथा अधिकांश छायावादी कविताओं आदि को रेखांकित करते हैं।

आनंद की साधनावस्था

साधनावस्था ऐसा प्रयत्न मार्ग है जहां लोक में फैले दुख, अत्याचार, अन्याय, पीड़ा को हटाने के लिए ब्रह्म की आनंद कला शक्ति का रूप धारण करती है। यह शक्ति भीषण, कटु और प्रचंड होने पर भी अद्भुत मनोहरता, मधुरता एवं आर्द्रता का संचार करती है। यही कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है जो मानव हृदय को आकर्षित करता है। जैसे कोट-पैंट पहना हुआ व्यक्ति धाराप्रवाह संस्कृत बोले और धोती-कुर्ता धारण किया हुआ पंडितनुमा व्यक्ति फर्राटे से अंग्रेजी बोले तो यह विरोधी सामंजस्य आकर्षित किये बिना नहीं रहता। असौन्दर्य को हटाकर सौन्दर्य तथा अमंगल को हटाकर मंगल की स्थापना होती है। वाल्मीकि का काव्य इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। नायक जो लोक कल्याण के लिए आनंद की सिद्धि के लिए भीषण हाहाकार मचाता है, युद्ध, मारकाट करता है, अपनी सात्विक भावना के कारण लोक का, दर्शकों का प्रिय पात्र बना रहता है। जैसे राम भीषण युद्ध करते हुए लोगों के प्रिय पात्र हैं, रावण अत्याचारी होने के कारण पांडित्य से परिपूर्ण होने पर अप्रिय ही बना रहता है। यह प्रवृत्ति जिसमें लोकमंगल का विधान होता है, अभ्युदय की सिद्धि होती है धर्म' कहलाती है। यह ईश्वर की आनंद कला का विकास करने वाली वृत्ति सफल होकर 'धर्म की जय' कहलाती है। विफलता का भी निराला सौन्दर्य होता है, क्योंकि इसमें आदि

से अंत तक सात्विक भाव से प्रयत्न किये गए किंतु विफलता में पूर्ण सौन्दर्य या आनंद नहीं होता इसलिए तुलसी एवं सूर ने राम, कृष्ण की साधनावस्था को सफलता के रूप में परिणत दिखाया ताकि धर्म की जय से पूर्ण आनंद का विकास दिखा सकें।

आचार्य शुक्ल अंग्रेजी कवि शैली को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उन्होंने आनंद कला की पूर्णता की ओर बढ़ते प्रयत्न की विफलता के सौन्दर्य के दर्शन कराए हैं। शैली ने 'रिवोल्ट ऑफ इस्लाम' में नायक-नायिका की लोकमंगल भावना के सुंदर प्रयत्नों और उसके पराभव को दिखाकर एक दुखांत कथा का विषादमयी आनंद उपस्थित किया है। शुक्ल जी कहते हैं कि मंगल-अमंगल के बीच युद्ध में सदैव मंगल की विजय देखकर लोक इसे सामान्य शिक्षावाद या अस्वाभाविक समझकर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। सच्चे कवि अपने काव्य में इस अस्वाभाविकता को नहीं आने देते। इस संसार में अधर्म को दबाना कठिन है जिससे धर्म बार-बार पराजित होता है। अत: कवि धर्म के संघर्ष को दिखाता है और अंत में अगर सफलता दिखाता है भी तो उसका उद्देश्य केवल उपदेश देना नहीं होता बल्कि वह कर्म के द्वारा प्रवृत्ति या निवृत्ति को प्रोत्साहित करता है। शुक्लजी कहते हैं कि कवि सौन्दर्य से प्रभावित रहता है तथ वह पाठकों को भी प्रभावित करना चाहता है इसलिए उसके नायक राम, कृष्ण का बाह्य सौन्दर्य जितना प्रभावी है उतना ही आंतरिक सौन्दर्य भी...। उनका रूप-माधुर्य, धीर, शील और पराक्रम सौन्दर्य का समन्वित रूप है। संसार में यह आंतरिक कामनाओं को संतुष्ट करना चाहता है, यह कवि के लिए कला की रहस्यमयी प्रेरणा है। 19वीं सदी के कवि शैली, जो राज्य शासन, धर्म और समाज के शासन के विरोधी थे, वे भी कला की इस रहस्यमयी प्रेरणा से नहीं बच सके। उन्होंने भी नायक-नायिकाओं में रूप सौन्दर्य एवं कर्म सौन्दर्य का समन्वय दिखाया है। शुक्ल जी कहते हैं कि आदर्श पात्रों को मनमाना रूप देना सरस्वती के मंदिर में गड़बड़ी फैलाने जैसा काम है। उदाहरणस्वरूप- माईकेल मधुसूदन दत्त ने मेघनाद को रूप-गुण संपन्न दिखाया तथा नवीन चंद्र कवि ने 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य में कृष्ण को एक ऐसे क्षत्रिय महात्मा के रूप में अंकित किया गया है जो जनता को ब्राह्मणों के अत्याचार से बचाने के लिए खड़ा हुआ है। यह परिवर्तित आदर्शों की प्रस्तुति त्याज्य है। सच्चे कवि पुराने आख्यानों को उदाहरण के रूप में लेते हैं, लेकिन बदली हुई परिस्थितियों और नवजागरण के बाद भी उन आदर्शों को खंडित या विकृत नहीं करते।

आचार्य शुक्ल कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के जीवन के, शरीर के, हृदय के दो पक्ष होते हैं- उत्तर और दक्षिण, कोमल और कठोर, मधुर तथा तीक्ष्ण। इन दोनों शाश्वत पक्षों के समन्वय के बीच से मंगल या सौन्दर्य की विकास धारा को दिखाना ही काव्य की रमणीयता है। टाल्सटाय के अनुयायी एक नया फैशन चला रहे हैं- वे परंपरागत कर्म सौन्दर्य पर मुग्ध होने के बजाय उसकी

उपेक्षा करते हैं तथा कर्म सौन्दर्य को दूसरे रूप में देखते हैं जैसे क्रूर आततायी को उपदेश देना, अत्याचारी से प्रेम जता कर उससे दया की भिक्षा मांगना...। वे इसे बेमानी मानते हैं। भावों की प्रक्रिया में भावोदय से अस्त तक देखें तो पता चलता है कि कुछ भाव चेतना के स्तर पर रहते हैं कुछ अचेतन में पड़े रहते हैं। ऐसे में संचारी भाव के साथ जीवंत और अभिव्यक्त होता है। जैसे ईर्ष्या संचरी भाव होकर चरम पर पहुंचती है तो स्थायी भाव का ईर्ष्या भाव ही बाहर अभिव्यक्त पाता है। अत: तात्पर्य यह है कि बीज रूप में मूल स्थायी भाव की प्रकृति यदि मंगलकारी है तो बाह्य रूप में उसके कठोर भाव भी सुंदर दिखाई देते हैं। ऐसे बीज भव जिस पात्र में होते हैं उसके साथ पाठकों एवं दर्शकों की सहानुभूति होती है। जैसे राम के भीतर बीज भाव मंगलकारी है। वे अधर्मी, अन्यायी रावण का वध करना चाहते हैं तो वे कितने भी कठोर प्रहार रावण पर करें, दर्शक को आनंद ही प्राप्त होगा। वह उन्हीं की विजय की कामना करेगा। जबकि रावण के द्वारा व्यक्त किये गए क्रोध या घृणा में रस के तीनों अवयव - 'शास्त्र-स्थिति संपादन' होने पर भी पाठक के साथ उसका तादात्म्य नहीं हो सकता। हृदय में स्थित बीज भाव द्वरा प्रसारित आनंद और मंगल का सौन्दर्य इस स्थिति से प्रभावित होता है कि वह कितने क्षेत्र में व्यापक है। जैसे यदि हमारा मित्र या रिश्तेदार पीड़ित है और नायक उसे बचाता है तो उसका कर्म सौन्दर्य कम प्रभावित करेगा, लेकिन जब हम देखते हैं कि विशाल जनसमूह को पीड़ा और अत्याचार से बचाने का पराक्रम नायक ने दिखाया तो यहां कर्म सौन्दर्य का प्रभाव व्यापक और बड़ा होगा।

आचार्य शुक्ल कहते हैं- मंगल का विधान करने वाले दो भाव होते हैं- करुणा और प्रेम। करुणा की गति रक्षा की ओर और प्रेम की मनोरंजन की ओर होती है। लोक में मनुष्य मात्र की रक्षा प्रथम साध्य है इसके बाद रंजन की स्थिति आती है। साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले करुणा को ही मुख्य भाव मानते हैं क्योंकि हृदय में करुणा की उपस्थिति से किये जाने वाले समस्त प्रयत्नों का लक्ष्य लोकमंगल होता है और जब लक्ष्य सात्विक हो तो सफलता के मार्ग पर चलते हुए लोक की सहानुभूति भी प्राप्त होती है। भवभूति ने रामचरित को लेकर दो नाटकों की रचना की है और वे 'करुण' की ही एकमात्र रस मानते हैं। वाल्मीकि रामायण में क्रौंच वध की घटना हो या रामचरितमानस में बिखरे अनेक प्रसंग सबके मूल में करुणा ही है। राम में केवल पत्नी सीता को मुक्त कराने के लिए रावण को नहीं मारा बल्कि उसके मूल में लोक के पीड़ित जनों के प्रति करुणा तथा लोक मंगल का व्यापक भाव भी उसमें सन्निहित था इसलिए उनके पराक्रम का सौन्दर्य भी व्यापक था। तात्पर्य यह कि काव्य का उत्कर्ष केवल टाल्सटाय के अनुयायियों की तरह प्रेम और दया की अभिव्यक्ति में ही नहीं बल्कि लोकमंगल के लिए मन में करुणा रखते हुए पराक्रम दिखाने में भी है। स्वतंत्रता के उन्मत्त उपासक, घोर परिवर्तनवादी शैली

भी इसी दृष्टि से स्वीकार करते हैं। शैली काव्य का मूल तत्व प्रेम को ही मानते हैं किन्तु उस प्रेम को सुख-समृद्धि के माधुर्य से भरे सौन्दर्य तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि भावों की अनेक रूपता को स्वीकार करते हुए स्थिर सौन्दर्य एवं गत्यात्मक सौन्दर्य, प्रयत्न पक्ष एवं उपभोग पक्ष दोनों के सौन्दर्य को आनंद का मूल मानकर स्वीकार करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कलावादियों की दृष्टि को संकुचित एवं सीमित मानते हैं, क्योंकि कलावादी काव्य में कोमल एवं मधुर की ही उपासना करते हुए मनोरंजन को ही लक्ष्य मानते हैं जबकि काव्य का लक्ष्य वृहद एवं गंभीर है। लोकमंगल काव्य का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। शुक्ल जी कहते हैं कि टाल्सटाय मनुष्यों के बीच भाईचारे एवं प्रेम को ही एकमात्र आनंद की साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष को केवल पीड़ितों की सेवा आततायियों का हृदय परिवर्तन, त्याग, कष्ट, सहिष्णुता आदि के रूप में लेकर उसमें ही सौन्दर्य देखते हैं। इस कोमल प्रतिक्रिया, उदारता और सज्जनता को ये 'आध्यात्मिक शक्ति' कहते हैं। पर इस आध्यात्मिक शक्ति को हम भारतीय दृष्टि से मनुष्य की प्राकृतिक शक्ति या अंतर्मन की सात्विक भावना कहते हैं। आचार्य शुक्ल काव्य में इस 'आध्यात्मिक शक्ति' पर टिप्पणी करते हैं कि 'अध्यात्म शब्द की, मेरी समझ में, काव्य या कला के क्षेत्र में कहीं कोई जरूरत नहीं है।' विदेश में भी यह आध्यात्मिक शब्द भारतीय भाषाओं में ही प्रचार पा रहा है।

आचार्य शुक्ल सत्व गुण की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महत्वपूर्ण चिंतन उपस्थित करते हैं। कहते हैं- सतो गुण, रजो गुण और तमो गुण, इन त्रिगुणों में सत्व (सतो गुण) गुण प्रधान है। जब यह चरम सीमा पर पहुंचता है तो परमात्मा की सत्ता के व्यक्त और अव्यक्त रूप की संधि तक जा पहुंचता है यानी उस बिंदु तक जहां वह अपने हृदय में और आस-पास उस परमपिता की उपस्थिति को अनुभव करने लगता है। वह उन्हें देख सकता है। उसका हृदय सत्व गुण के प्रकाश से प्रकाशित होता है। सत्व गुण की यह शक्ति जो सच्चिदानंद के सत् स्वरूप को प्रकाशित करती है, इसे वल्लभाचार्य जी 'संधिनि' कहते हैं। व्यावहारिक रूप में 'सत्' के दो अर्थ हैं- 'जो वास्तव में हो' तथा 'अच्छा या शुभ'। लोक में मंगल या कल्याण के लिए प्रेरित करने वाले दोनों भाव- करुणा और प्रेम दोनों सत्व गुण प्रधान हैं। आचार्य शुक्ल काव्य को प्रभावशाली, उपयोगी एवं मंगलकारी बनाने में सत्व गुण की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हैं तथा इसे अवचेतन में बीज रूप में या अव्यक्त स्थिर स्थायी भाव के रूप में स्वीकार करने के साथ ही प्रकाश रूप में या अभिव्यंजित रूप में भी स्वीकार करते हैं। सत्य गुण प्रधान हृदय में करुणा और प्रेम होगा तथा ऐसे

हृदय का स्वामी लोक के प्रति दया, त्याग परोपकार की भावना रखते हुए पीड़ितों के अधिकारों के लिए पराक्रम का प्रदर्शन भी करेगा। सत्व गुण प्रधान हृदय का और काव्य का यही पूर्ण सौन्दर्य है।

आचार्य शुक्ल कहते हैं कि उस अव्यक्त परमात्मा ने सृष्टि की रचना की। इसमें अपना व्यक्त रूप मनुष्य के रूप में उपस्थित किया। सृष्टि के आरंभ से अंत तक इसमें तीनों गुण- सत्व, रज एवं तम रहेंगे। जब तक यह सृष्टि है अर्थात लोक है- लोकमंगल के लिए ईश्वर के द्वारा प्रेषित काव्य कला को सत्व गुण का ही आश्रय लेना होगा। सत्व गुण मानव हृदय में, कवि हृदय में एवं काव्य में प्रधान होगा तथा रजो गुण एवं तमो गुण द्वारा किये गए कार्य सत्व गुण के लक्ष्य की पूर्ति यानी लोक मंगल के लिए किये जाएंगे। सतो गुण की भूमिका कोमल माधुर्य एवं सौंदर्य का संचार तो करेगी ही, यह कठोर अनुशासन भी करेगी। सतो गुण के शासन में कठोरता, उग्रता एवं प्रचंडता का भी सात्विक तेज होगा जो प्रशंसनीय होगा, क्योंकि यह लोकमंगल जैसे महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए होगा। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए हमारे देश में अवतारों की मूर्ति चाहे वह मां दुर्गा की हो, राम या कृष्ण की एक ओर वज्र से भी कठोर दिखाई देती है हाथों में अस्त्र-शस्त्र लिए, दूसरी ओर चेहरे पर मृदु मुस्कान सजाए फूलों से भी कोमल दिखाई देती है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस निबंध के द्वारा सत्य गुण की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं जिसकी उपस्थिति से मानव हृदय परमात्मा की निकटता पा सकता है तथा कवि हृदय काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था को स्थापित कर समस्त मानव सृष्टि के लिए मंगल कामना कर सकता है।

4.3.5 काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था : समीक्षात्मक अध्ययन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिंदी के मौलिक आलोचना शास्त्र की आधारशिला रखी। उन्होंने साहित्य की आलोचना एवं समीक्षा के द्वारा उसके मूल्यांकन का स्वतंत्र मार्ग प्रशस्त किया। शुक्ल जी रसवादी आचार्य थे, अत: उन्होंने भारतीय रस सिद्धांत को ही काव्य का मानदंड माना किंतु इसकी व्याख्या उन्होंने अपने तरीके से की। उन्होंने काव्य के लक्ष्य को विस्तार दिया। रस सिद्धांत के अनुसार पाठक को आनंद अनुभूति कराना ही काव्य का लक्ष्य या उद्देश्य है किंतु आचार्य शुक्ल ने इसमें 'लोकमंगल' को भी जोड़कर आनंद की दो अवस्थाएं प्रस्तुत की- आनंद की साधनावस्था तथा आनंद की सिद्धावस्था। वे कवि को भावयोग से जोड़ते हैं तथा उसकी साधना को कर्मयोग एवं ज्ञान योग के समकक्ष मानते हैं। वे 'भाव ही रस है', का प्रतिपादन करते हैं तथा हृदय की मुक्तावस्था को रस दशा कहते हैं। मुक्त का अर्थ स्पष्ट करते हैं कि व्यक्ति का 'स्व' की स्थिति से उठाकर लोक सामान्य भूमि पर पहुंचना अर्थात् जहां मुक्त हृदय लोक हृदय में तल्लीन हो जाता है। ऐसी तल्लीनता की स्थिति का नाम 'रस दशा' है। शुक्ल जी की समीक्षा की

विशेषताओं पर दृष्टि डालें तो उपरोक्त (काव्य में लोकमंगल) निबंध की समीक्षा स्वयंमेव हो जाती है।

1 सैद्धांतिक समीक्षा शास्त्र का आधार– आचार्य रामचंद्र शुक्ल भारतीय काव्य सिद्धांतों के साथ पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों में से गृहणीय लेकर नये समीक्षा सिद्धांतों मानों को प्रतिपादित देखा जा सकता है। वे आनंद की साधनावस्था को लेकर चलने वाले कवि को श्रेष्ठ एवं पूर्ण मानते हैं तथा 'तुलसीदास' को ऐसा ही श्रेष्ठ कवि घोषित करते हैं। आचार्य शुक्ल के इस दृष्टिकोण पर टिप्पणी करते हुए आचार्य नंददुलारे वाजपेयी लिखते हैं– 'जितना उत्कर्ष उन्हें साहित्य के सिद्धांतों का निरूपण करने में प्राप्त हुआ, उतनी ही दक्षता उन्हें उन सिद्धांतों का व्यावहारिक प्रयोग करने में हासिल हुई है। पांडित्य में उनकी अप्रतिहत गति थी, विवेचना की उनमें विलक्षण शक्ति थी।' आचार्य शुक्ल एक उत्कृष्ट समीक्षक थे।

2 समन्वयवादी– आचार्य शुक्ल समन्वयवादी समीक्षक थे। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांतों का गहन अध्ययन किया तथा उनके समन्वय को नये तरीके से व्याख्यायित कर नये सिद्धांत गढ़े। साधारणीकरण का सिद्धात भारतीय काव्यशास्त्र का अंग है किन्तु शुक्ल जी ने उसकी तुलना पश्चिम के व्यक्तिवैचित्र्यवाद से की तथा दोनों में सामंजस्य प्रदर्शित किया। शुक्ल जी ने तत्व की दृष्टि से डंटन के शक्ति काव्य को काव्य के उस भेद के समान बताया जो आनंद की साधनावस्था को लेकर चलता है। शुक्ल जी का समन्वयवादी दृष्टिकोण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

3 समीक्षा में व्यक्तित्व की छाप– आचार्य शुक्ल गंभीर मर्यादावादी व्यक्ति थे। उन्हें साहित्य एवं जीवन दोनों में ही मर्यादा का उल्लंघन पसंद नहीं था। उनका यही व्यक्तित्व उनके निबंधों एवं समीक्षाओं में झलकता है। वे काव्य में लोकमंगल पर बल देते हैं। काव्य में आनंद की साधनावस्था पर बल देते हैं इसलिए उन्हें तुलसीदास श्रेष्ठ कवि लगते हैं। वे तुलसी के शील निरूपण की सराहना करते हैं। आचार्य शुक्ल भावुक एवं संवेदनशील मनुष्य थे।

4 समीक्षा में स्पष्टता– आचार्य शुक्ल समीक्षा करते हुए स्पष्टता का ध्यान रखते हैं। हर बात या सूत्र को उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। उनका अध्ययन, चिंतन गहन है तथा वे विषय के हर अंग, हर बात को व्यवस्थित रूप से विचार कर प्रस्तुत करते हैं।

5 मनोवैज्ञानिक आधार– आचार्य शुक्ल की समीक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक है। वे मन के विकारों का भावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी प्रस्तुत करते हैं। यह विश्लेषण मनुष्य के स्वभाव

एवं उसके जीवन की कसौटी पर खरा उतरता है। 'सूरदास' के व्यक्तित्व कृतित्व पर समीक्षा प्रस्तुत करते हुए उन्होंने पशु एवं प्रकृति का भी विश्लेषण किया है। शुक्ल जी मानव हृदय के पारखी थे।

6 आलोचना में कवि की अंतर्वृत्तियों की खोज– आचार्य शुक्ल की समीक्षा रचना से रचनाकार की ओर भी जाती है अर्थात रचना में रचनाकार के व्यक्तित्व की विशेषताओं को खोजना। वर्तमान में यही समीक्षा पद्धति वर्तमान में यही समीक्षा पद्धति है जिसके दर्शन आचार्य शुक्ल की समीक्षाओं में होते हैं। उदाहरण के लिए- तुलसीदास की भक्ति पद्धति की विवेचना करते हुए शुक्लजी तुलसीदास के व्यक्तित्व और चित्तवृत्तियों का उद्‌घाटन करते हैं। कवि के हृदय में सत्व गुण है तो उसकी रचना में भी होगा।

7 निरपेक्ष-दृष्टिकोण आचार्य शुक्ल समीक्षा करते हुए निरपेक्ष दृष्टिकोण अपनाते हैं। वे रचनाकार के गुण एवं दोषों पर एक समान भाव को स्पष्ट टिप्पणी करते हैं। वे सूरदास द्वारा वर्णित विरह दशाओं के प्रति क्रूर टिप्पणी करते हुए विरह को गोपियों का बैठे-ठाले का रोग कहते हैं, लेकिन सूरदास के काव्य में भाव पक्ष की गहराई की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं तथा सूरदास को वात्सल्य रस एवं प्रेम का अद्‌भुत कवि निरूपित करते हैं।

8 हास्य-व्यंग्य का प्रयोग– आचार्य शुक्ल अपने गंभीर व्यक्तित्व के अनुकूल समीक्षाएं करते हैं किंतु बीच-बीच में तीखे व्यंग्य करने एवं चुटकी लेने की सामर्थ्य भी रखते हैं। गंभीर से गंभीर आलोचना भी उनकी व्यंग्य की बौछारों से सरस ही उठती है, भींग जाती है। छायावाद को 'नया नया ऊंट' कहना उनकी इसी प्रवृत्ति का द्योतक है।

9. सूत्रात्मकता– आचार्य शुक्ल बड़ी और गंभीर बात को एक वाक्य में कह जाते हैं जो सूक्ति बन जाती है। ऐसी सूक्तियां या सूत्र वाक्य अपने भीतर गहन चिंतन तथा व्यापक अर्थ समेटे रहते हैं। 'काव्य के लोकमंगल' निबंध में वे लिखते हैं- 'करुणा की गति रक्षा की ओर है तथा प्रेम की रंजन की ओर।' शुक्ल जी के निबंधों में ऐसे सूत्रों की भरमार है।

10 निगमन शैली– आचार्य शुक्ल की यह रचनात्मक विशेषता है कि वे पहले बड़ी और गहन बात को सूत्र रूप में प्रस्तुत करते हैं फिर उसकी विस्तार से व्याख्या करते हैं। एक सूत्र की व्याख्या करते हुए कई पैराग्राफ में और कभी तो पूरे निबंध में ही कुछ नये सूत्र उपस्थित कर देते

हैं। करुणा और प्रेम की व्याख्या का विस्तार, श्रद्धा और भक्ति का विस्तार से वर्णन उनकी निगमन शैली की विशेषता को प्रतिपादित करता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल समीक्षा करते हुए सुगठित, प्रभावशाली, प्रवाहमयी, अलंकारिक भाषा का प्रयोग करते हैं। डॉ. शिवनाथ कहते हैं- 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों के प्रतिपादन तथा भाषा शैली में एक विचित्र भव्यता है, जिसके द्वारा उनके उठान, उनके विकास और उनकी समाप्ति में प्रभूत प्रभावात्मकता दृष्टिपात होती है।' शुक्ल जी हिंदी, संस्कृत, उर्दू के प्रकांड पंडित थे। उनकी रचनाओं में परिष्कृत, तत्सम भाषा तथा सामासिक पदों का प्रयोग सौन्दर्य और गंभीरता की वृद्धि करता है। डॉ. जयनाथ नलिन कहते हैं- 'इतनी सम्मत, परिष्कृत प्रौढ़, विशुद्ध और सुदृढ़ भाषा कम ही मिलेगी।' वे विषय एवं भावों के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं।

'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' में तत्सम एवं अलंकारिक भाषा है। वे अंग्रेजी रचनाकारों एवं चिंतकों की चर्चा करते हुए आवश्यकतानुसार अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कर विषय को सहजगम्य बनाने का प्रयत्न करते हैं। संस्कृत काव्य, वेद, पुराणों तथा उपनिषदों के उदाहरण यथावश्यक होने पर देते हैं तथा हिंदी में उसे स्पष्ट भी करते हैं। 'काव्य में लोकमंगल' एक चिंतन प्रधान निबंध है जिसमें आगमन एवं निगमन शैलियों का प्रयोग होने के साथ विचारात्मक और तुलनात्मक शैली का भी प्रयोग किया गया है। शैली एवं टाल्सटाय की रचनात्मकता, उनके दृष्टिकोण तथा उनके प्रतिपाद्य की भारतीय काव्यशास्त्रीय चिंतन से तुलना करते हुए शुक्ल जी ने तुलनात्मक शैली का प्रयोग किया है। आचार्य शुक्ल इस निबंध में 'लोकमंगल' पर बल देते हैं। मानव हृदय हो या काव्य. दोनों में सत्व गुण की प्रधानता ही लोकमंगल में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है तथा ब्रह्म के 'आनंद' स्वरूप को प्राप्त करने के लिए साधनावस्था यानी प्रयत्न पक्ष पर वे बल देते हैं। आचार्य शुक्ल परंपरावादी थे किंतु ऐसे परंपरावादी जो नवीन दृष्टि से संपन्न थे। उन्होंने ऐसे निबंधों की रचना की जो मौलिक तो थे ही जिनमें तत्व की प्रधानता थी। साहित्य में गूढ़ चिंतन और विश्लेषण का आरंभ शुक्ल जी ने ही किया। बाबू गुलाबराय कहते हैं- 'आचार्य शुक्ल के निबंध विकार और परिमार्जन तो पर्याप्त मात्रा में हुआ किंतु उस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने की प्रवृत्ति उत्पन्न न हो सकी।'

आचार्य शुक्ल के भावों एवं विचारों पर लिखे गए निबंध हिंदी निंबध साहित्य को अनुपम भेंट है। उन्होंने भावों एवं विचारों, मनोधिकारों के व्यावहारिक और सामाजिक दोनों पक्षों पर समान महत्व देकर उनकी समाज में हुई प्रतिक्रिया का भी सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया है। इस तरह

मनोविज्ञान को एक नयी मान्यता देकर साहित्य का निकटवर्ती बना दिया। शुक्ल जी की दृष्टि में वे ही निबंध श्रेष्ठ निबंध की कसौटी पर खरे उतरते हैं जिनमें नवीन भावों की उद्‌भावना की गई है। माना जाता है कि यदि शुक्ल जी ने 'जायसी' के कृतित्व एवं व्यक्तित्व पर प्रकाश न डाला होता तो वे हिंदी जगत के लिए अप्राप्य बने रहते। शुक्ल जी ने मनोभावों की जिस गहराई से समीक्षा की, चिंतन किया, उन्हें जिस सहज विश्लेषित रूप में प्रस्तुत किया वह अद्‌भुत है। पाठक स्वयं को इन विश्लेषित मनोभावों की कसौटी पर रखता है और उसका अपने आप से ही नया परिचय होता है। हर भाव हर मनुष्य के भीतर रहता है और वह समय-समय पर प्रकट भी होता है, लेकिन वह मनुष्य इस भावों के प्रकटीकरण के पीछे छिपे क्या, क्यों, किसलिए को नहीं जानता था। आचार्य शुक्ल के निबंधों को पढ़कर उसे अपने मनोभावों को समझने की नयी दृष्टि मिली। पाठक का बौद्धिक विकास तो होता ही है, भावनाओं की गहन प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति को वह समझ पाता है, अनुभव कर पाता है। आचार्य शुक्ल हृदय एवं बुद्धि के इस समन्वय पर प्रकाश डालते हैं कि 'इस पुस्तक (चिंतामणि) में मेरी अंतर्यात्रा में पढ़ने वाले कुछ प्रदेश है। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि, पर हृदय को साथ लेकर।' इस कथन से स्पष्ट होता है कि शुक्ल जी के निबंध मूलत: बुद्धि की यात्रा के फलस्वरूप प्रसूत हुए हैं। शुक्ल जी का निबंधकार रूप निश्चय ही एक गंभीर विचारक, सशक्त शैलीकार तथा सूक्ष्म विश्लेषक का समन्वित रूप है। आचार्य शुक्ल के निबंधों में उनके व्यक्तित्व की छाया भले ही पड़े किंतु विषय ही प्रधान होता है। डॉ. जयचंद्र राय की महत्वपूर्ण टिप्पणी उल्लेखनीय है- 'इन निबंधों में लेखक का व्यक्तित्व भले ही उद्‌भाषित हो गया हो, किंतु उसका प्रक्षेपण इतना अधिक नहीं हुआ कि विषय विवेचन को गौणता प्राप्त हो गई हो। पाठक को प्रस्तुत विषय की विचारणा में ही डूब रहने का अवसर मिलता है। लेखक के अप्रत्यक्ष व्यक्तिव के साथ घनिष्ठता बढ़ाने का संयोग उसे कम ही मिल पाता है।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'काव्य में लोकमंगल कामना की साधनावस्था' निबंध के द्वारा न केवल काव्य के सद्‌गुणों पर प्रकाश डालते हैं बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य को सहृदय बनने की शिक्षा भी दे देते हैं। वे ब्रह्म के तीन रूपों सत् चित् और आनंद तथा त्रिगुणात्मक प्रकृति रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण की व्याख्या करके पाठक को दर्शन के निकट ले जाते हैं जहां वह 'आनंद' स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने भीतर के सत्व गुण को परिष्कृत एवं विकसित करने का प्रयास आरंभ करता है। वह आनंद की साधनावस्था से परिचित होकर अपने संघर्ष, प्रयत्न, दुख, पीड़ा अभाव और अन्याय को नये रूप में देखता है तथा प्रयत्न करता है कि इस साधना के पथ पर

बिना विचलित हुए चल सके। शुक्ल जी के निबंध चिंतन प्रक्रिया को गति एवं गहराई देते हैं, ज्ञान का दायरा बढ़ाते हैं। इस निबंध को ही अगर देखें तो साधनावस्था एवं सिद्धावस्था की बात करते हुए वे टाल्सटाय एवं शैली को डंटन की चिंतन प्रक्रिया को उनके ग्रंथ सहित उद्धृत करते हैं, उनकी भारतीय चिंतन परंपरा से तुलना करते हैं, तब पाठक सहज ही इन विदेशी रचनाकारों की रचनाओं और उनकी चिंतन प्रक्रिया को विस्तार से समझने के लिए उत्सुक हो उठता है। वह उन पुस्तकों का जुटाकर उनका अध्ययन करता है। इस तरह शुक्ल जी की तुलनात्मक अध्ययन शैली पाठकों के लिए भी उपयोगी सिद्ध होती है। वर्तमान विज्ञान एवं तकनीकी के युग में जब कि संवेदनाओं की धार खत्म होती जा रही है, मनुष्य यांत्रिक जीवन जी रहा है, वह स्वार्थी आत्मकेंद्रित होता जा रहा है, शुक्ल जी के निबंधों की प्रासंगिकता एवं महत्व बढ़ गया है। जब आदमी स्वयं के मंगल पर ही ध्यान केंद्रित किये हो, उसे लोकमंगल का महत्व समझाना आवश्यक है। कवियों एवं साहित्यकारों के लिए अपनी रचना में लोकमंगल की प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। स्वार्थ पूर्ति ने वर्तमान हृदयों को तमोगुणी बना दिया है। कम्प्यूटर इंटरनेट ने नयी पीढ़ी की बुद्धि को आकर्षित कर भले ही उसे विश्व की जानकारी पल भर में देने की सफल योजना बनाई है किंतु सत्य यह है कि कम्प्यूटर के सामने बैठा मनुष्य अपने हृदय से अनजान, अकर्मण्य और आलसी हो गया है। उसके भीतर रजोगुण से उत्पन्न तेज का कहीं पता नहीं चलता। इस स्थिति में आचार्य शुक्ल की समीक्षाएं, विवेचनाएं व्याख्याएं पाठक के भीतर की त्रिगुणात्मक प्रकृति में हलचल मचाने में अवश्य सफल होगी। डॉ. जगन्नाथ नलिन कहते हैं- 'शुक्ल जी के मनोभाव एवं सिद्धांत निर्धारण संबंधी निबंधों की सबसे बड़ी विशेषता है, विज्ञान के समान यथार्थ परिभाषा, गणित के अंकों के समान सही मूल्य मर्यादा और छाया प्रकाश के समान अंतर की स्पष्टता।' अर्थात् नपी-तुली शब्दावली में विषय को स्पष्टता देकर सम्यक परिभाषा प्रस्तुत करना शुक्ल जी की निजी विशिष्ट विशेषता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंधों में सामाजिक आदर्श, नीति तत्व, मानवतावादी सिद्धांतों की व्याख्या मिलती है। वे जीवन को आधार बनाकर तथ्यों का प्रस्तुतीकरण करते हैं, जिससे मानस मात्र के प्रति उनकी आस्था प्रकट होती है। वे व्यक्तको महत्व देते हुए भी समष्टि को ध्यान में रखकर सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं। निबंधों के क्षेत्र में गूढ़ विवेचन और सूक्ष्म विश्लेषण को लाने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को ही जाता है।

इकाई 4 कहानी -I

4.0 परिचय

इस इकाई में देश के पांच श्रेष्ठ कहानीकारों की कहानियों का संग्रह प्रस्तुत किया गया है। इस संग्रह के अंतर्गत आप सम्राट चंद्रधर शर्मा गुलेरी की सर्वश्रेष्ठ कहानी 'उसने कहा था', सुप्रसिद्ध कहानी लेखक मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं', कहानीकार, उपन्यासकार और सशक्त नाटककार मोहन राकेश की कहानी राकेश की कहानी 'मलबे का मालिक', हिंदी की सुप्रसिद्ध लेखिक मन्नू भंडारी की बहुचर्चित कहानी 'यही सच है' एवं लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'सलाम' का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई की पहली कहानी चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखी गई है। इसमें अमृतसर शहर की कहानी है। वहां के वातावरण, बाजार आदि का यथार्थ चित्रण बड़ी ही सजीवता और जीवंतता के साथ किया गया है। यह कहानी बेजोड़ है। बच्चों का बचपन का मजाक आगे जाकर क्या गुल खिलाता है, कहानी किन-किन पड़ावों से गुजरती हुई आगे अपने गंतव्य तक पहुंचती है, यह सब इस कहानी में देखने की बात है। इसका मु□य पात्र जमादार लहना सिंह सूबेदारनी की बात का पालन अपने जीवन का बलिदान देकर कैसे पूरा करता है, यही इस कहानी का महत्वपूर्ण पक्ष रहा है। वस्तुत: यह आत्मोत्सर्ग इसीलिए है क्योंकि, 'उसने कहा था'। यह कालजयी कहानी है।

दूसरी कहानी जाने-माने कहानी लेखक मुंशी प्रेमचंद द्वरा रचित है। इसमें निम्न वर्ग के जोखू और उसकी पत्नी गंगी की कहानी है। इसमें ग्रामीण जीवन का यथार्थ-चित्रण बड़ी ही सजीवता के साथ किया गया है। कहानी सामाजिक अन्याय पर आधारित है।

तीसरी कहानी मोहन राकेश की रचना 'मलबे का मालिक' देश-विभाजन के बाद की कहानी है।

पूरी कहानी मलबे के मालिक और उससे संबंधित घटनाओं से जुड़ जाती है। आस, विश्वास, और अविश्वास के झूले में झूलती कहानी, बहुत कुछ कहती नजर आती है, लेकिन अंत में गनी मियां सभी को दुआएं देता हुआ लुटा-पिटा-सा वापिस पाकिस्तान (लाहौर) लौट जाता है।

इसमें बताया गया है कि किस प्रकार एक पहलवान मुसलमान परिवार के नए मकान पर कब्जा करने के लिए उस परिवार के सदस्यों की हत्या कर देता है और परिवार के मुखिया गनी मियां जब पाकिस्तान से अपने बेटे के घर आते हैं तो उन्हें पता चलता है कि पूरे परिवार को खत्म कर दिया गया है और मकान जलकर मलबे में तब्दील हो गया है।

चौथी कहानी मन्नू भंडारी की 'यही सच है' सर्वाधिक चर्चा में रहने वाली मनोवैज्ञानिक कहानी है। यह कहानी अनेक संकलनों, अनुवादों तथा आलोचनाओं में शामिल की जाती .....

रही है। लगता है इस कहानी में कहीं-न-कहीं लेखिका किसी न किसी प्रमुख पात्र के रूप में स्वयं मौजूद रही हैं। इस बातो को लेखिका स्वीकार नहीं कर पाती हैं। उनका कहना है कि कहानी का केंद्र बिंदु उनका अपना अनुभव सत्य नहीं है। इसलिए इस कहानी से उनकी कोई विशेष आत्मीयता नहीं है। यह कहानी दो पुरुष पात्र और एक नारी पात्र के बीच पटना, कानपुर और कलकत्ता शहरों के बीच घूमती रहती है, लेकिन इसे यत्रा वृत्तांत का ना नहीं दिया जा सकता।

पांचवीं कहानी ओम प्रकाश वाल्मीकि की 'सलाम' कहानी है। यह उनकी और कहानिों की तरह तरह दलित-वर्ग के संघर्ष की कहानी है। इसमें भी गांव में रहने वाले दलित-वर्ग के रीति-रिवाजों, रस्म और दस्तूरों के नाम पर कितना अपमानित होना पड़ता है, यही इस कहानी में भी 'सलाम' दस्तूर के माध्यम से दिखाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें पुरानी और नई पीढ़ी का टकराव भी देखने को मिलता है। शिक्षित और अशिक्षित के बीच की खाई भी स्पष्ट दिखाई देती है। जात-बिरादरी और ऊंच-नीच का तड़का तो है ही। कहानी का मु**ख्य** पात्र पढ़ा-लिखा हरीश 'सलाम' के दस्तूर की रस्मकरने से मना कर देता है। इसमें उसे अपना अपमान महसूस होता है। ऐसा करके उसे अपमी जीत महसूस होती है। घिसे-पिटे दस्तूरों पर विजय महसूस होती है। तभी तो इस जीत की खुशी का इजहार करने के लिए वह और उसका अभिन्न मित्र कमल उपाध्याय गर्मजोशी से एक-दूसरे का हाथ भी दबाते हैं। उधर रांधड़ जाति के लोगों की गांव में बहुतायत है, वर्सस्व है। वे जब सुनते हैं कि जु**म्म**न का जंवाई हरीश 'सलाम' की रस्म के वास्ते उनके द्वार पर नहीं आएगा, तब वे इसे अपना और अपनी उंची जाति का अपमान समझते हैं और जंवाई को भेजने की धमकी बल्लु रांघड़ हरीश के ससुर जु**म्म**न को घर आकर दे जाता है। शादी-**ब्य**ाह के घर में रंग में भंग पड़ जात है। ऐसे में ज**म्म**न घर की औरतों से जल्दी ही विदाई की रस्म पूरी करके बारात को जल्दी से जल्दी विदा करना चाहता है, **क्यों**कि उसे डर है कि कहीं रांघड़ अपने अपमान का बदल लेने उसके घर न आ धमके और कोई बखेड़ा न खड़ा कर दे।

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

चंद्रधर शर्मा गुलेरी द्वारा लिखित 'उसने कहा था' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहनी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्या**ख्य**ा से अवगत हो पाएंगे;

मुंशी प्रेमचंद द्वारा लिखित- 'ठाकुर का कुआं' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्या**ख्य**ा से अवगत हो पाएंगे;

मोहन राकेश द्वारा लिखित 'मलबे का मालिक' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे;

मन्नू भंडारी द्वारा लिखित 'यही सच है' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला की विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे;

ओम प्रकाश वाल्मीकी द्वारा लिखित 'सलाम' कहानी के मूलपाठ, कहानी कला के विशेषताओं, कहानी के सार, समीक्षा, कहानी कला के तत्व और इस कहानी के महत्वपूर्ण गद्यांशों की व्याख्या से अवगत हो पाएंगे।

4.2 उसने कहाथा -चंद्रधर शर्मा गुलेरी

प्रसिद्ध साहित्यकारचंद्रधर शर्मा गुलेरी जी की जीवन परिचय इस प्रकार है-

4.2.1 लेखक परिचय

पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी का जन्म कांगड़ा जिले के ग्राम गुलेरमें दिनांक 7 जुलाई, सन् 1882 में हुआ था। बचपन से ही उन्होंने संस्कृत, वैदिक साहित्य, व्याकरण तथा भाषा-साहित्य केसंस्कार प्राप्त किए और अपने साध्याय तथा रुचि के कारण निरंतर अपनीप्रतिभा में चार चांद लगाते चले गए। वे द्विवेदी युग के प्रतिनिधि लेखक, सशक्त कहानीकार एवं कथाकार रहे हैं। वे साहित्यकाश के ऐसे नक्षत्र थे जो अपनी अमर कथा रचना 'उसने कहा था' के द्वारा न केवल अपने समकालीन बल्कि हिंदी की परवर्ती पीढ़ी के स्मृति पटल पर सदैव के लिए छा गए। उनकी यह अमर कहानीसर्वप्रथम सरस्वती पत्रिका में सन् 1915 में प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त उनकी इस दो और कहानियां प्रकाश में आई हैं- 'सुखमय जीवन' और 'बुद्धू का कांटा'। ये दोनों कहानियां सन् 1911 में प्रकाशित हुई थी। ये दोनों इतनी प्रसिद्ध नहीं हुई किंतु गुलेरी जी की तीसरी कहानी 'उसने कहा था' ने तो प्रसिद्धि के सारे कीर्तिमान ही तोड़ दिए। इसी कहानी के कारण उन्हें वैसे ही 'कहानी-सम्राट' के नाम से जाना जाने लगा, जैसे मुंशी प्रेमचंद को 'उपन्यास-सम्राट', 'कलम का सिपाही' तथा 'कलम का जागूहर' नाम से जाना जाता है।

साहित्य सृजक, संस्कृति एवं पुरातत्ववेत्ता, प्राच्य विद्या विशारद, प्रकांड भाषाविद, ज्योतिर्विज्ञानी तथा पत्रकार के रूप में गुलेरी जी ने प्रत्येक क्षेत्र में अपन बहुमूल्य योगदान दिया। उनकी रचनाओं पर संस्कृत के महाकवि माघ की यह पंक्ति अक्षरश: चरितार्थ होती है- ''क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति, तदैव रूपं रमणीयताया:।''

इन्हें 'इतिहास दिवाकर' की उपाधिसे भी विभूषित किया गयाथा। इन्होंने अध्यापन और प्राचार्य के पद पर भी कार्य किया।

केवल 39 वर्ष की अल्पायु में इस बहुमुखी प्रतिभा संपन्न विद्वान लेखक तथा कहानी सम्राट का निधन दिनांक 12 सितंबर, सन् 1922 को हो गया।

4.2.2 उसने कहा था : मूल पाठ

(1)

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ पिछल गई है, और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बंबूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ चाबुक से धुनते हुए, इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट संबंध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आंखों के न होने पर तरस खाते हैं। कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चींथ कर अपने-ही को सताया हुआ बताते हैं। और संसार-भर की ग्लानि, निराश और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरीवाले तंग चक्करदार गलियों में, हर-एक लड्ढीवाले के लिए ठहर कर सब्र का समुद्र उमड़ा कर बचो खालसा जी। हटो भाई जी। ठहरना भाई। आने दो लाला जी। हटो बाछा, कहते हुए सफेट फेंटों, खच्चरों और बत्तखों, गन्ने और खोमसे और भारेवालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसी को हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती नहीं; पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी बचनावली के नमूने हैं- हट जा जीणे जोगिए; हट जाकरमांवालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा लंबी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रों की प्यारी है, लंबी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिए के नीचे आना चाहती है, बच जा।

ऐसे बंबूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दुकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जाान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियां। दुकानदार एक परदेसी से गुथ रहा था, जो सेर-भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहां है ?'

'मगरे में; और तेरा ?'

'मांझे में; यहां कहां रहती हो ?'

'अतरसिंह की बैठक में; वे मेरे मामा होते हं।'

'मैं भी मामा के यहां आया हूं, उनका घर गुरु बाजार में है।'

इतने में दुकानदार निबटा, और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्करा कर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई?' इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ा कर घत् कह कर दौड़ गई और लड़का मुंह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवाले का यहास दूधवाले के यहां अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना-भर यही हला रहा। दो-तीन बर लड़के ने फिर पूछा, 'तेरी कुड़माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हंसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की संभावना के विरुद्ध बोली- 'हां हो गई।'

'कब?'

'कल, देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।'

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया। एक छावड़ीवाले की दिन-भर की कमाई खोई। एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उंडेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवी से टकरा कर अंधे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहूंचा।

(2)

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है। दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियां अकड़ गई। लुधियाना में दस गुना जाड़ा और मेंह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए हैं। जमीन कहीं दिखती नहीं; घंटे-दो-घंटे में कान के परडे फाड़नेवाले धमाके के सा थसारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ी है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट क जलजला सुना था। यहां दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। तो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटक से गोली लगती है। न मानूल बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहना सिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिए। परसों रिलीफ आ जाएगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट-भर खा कर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में- मखमल का -सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

'चार दिन तक एक पलक नींद नहीं मिली। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ा कर मार्च का हुक्म मिल जाए। फिर सात जरमनों को अकेला मार कर न लौटूं तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाती कहीं के कलों के घोड़े-संगीन देखते ही मुंह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं यहं अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था- चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ था। पीछे जनरल ने हट जाने का कमान दिया, नहीं तो...'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते! क्या?' सूबेदर हजारा सिंह ने मुस्करा कर कहा- 'लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा?'

'सूबेदार जी, सच है,' लहना सिंह बोला- 'पर करें क्या? हड्डिडों-हड्डिडों में तो जाड़ा घंस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चंबे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जए, तो गरमी आ जाए।'

'तदमी, उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा, तुम चार रजने बाल्यियां लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दो।'- यह कहते हुए सूबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

बजीरा सिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गंदला पानी भर कर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला- 'मैं पाधा बन गया हूं। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!'- इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गए।

लहना सिंह ने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथ में देकर कहाद- 'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा स्वाद का पानी पंजाब-भर में नहीं मिलेगा।'

'हा, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस धुमा जमीन यहां मांग लूंगा और फलों के बूटे लगऊंगा।'

'लाडी होरां को भी यहां बुला लोगो? या वहीं दूध पिलानेवाली फरंगी मेम-'

'चुप कर। यहां वालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तंबाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूं तो समझती है कि राजा बुरा मन गया, अब मेरे मुल्क के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधा सिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊं! रात-भर तुम अ पने कंबल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुजर करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सुखे लकड़ी के त□तों पर उसे सुलाते हो। आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जड़ा क्या है, मौत है और निमोनिया से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड की किनारे मरूंगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और हाथ के लगाए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरा सिंह ने त्योरी चढ़ा कर कहा- '**क्य**ा मरने-मारने की बात लगाई है? मरें जर्मनी और तुरकी! हां भाइयों, कैसे-

दिल्ली शहर तें पिशोर नुं जांदिए,
कर लेणा लौंगों दा बपार मड़िए,
कर लेणा नादेडा सौदा अड़िए-
(ओय) लाणा चटाका कदुए नुं।
कद्दू बणाया वे देदार गोरिए,
हुण लाणा चटाका कदुए नुं।।'

कौन जानता था कि दाढ़ियांवाले, गरबरी सिख ऐसा लुच्चों का गीत गाएंगे, पर सारी खंदक इस गीत से गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए। मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(3)

रात हो गई है। अंधेरा है। सन्नाट छाया हुआ है। बोधा सिंहखाली बिसकुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कंबल बिछा कर और लहना सिंह केदो कंबल और एर बरानकोट ओढ़ करसो रहा है। लहना सिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आंख खाई के मुंह पर है और एक बोधा सिंह के दुबले शरीर पर। बोधा सिंह कराहा।

'**क्य**ों बोधा भाई,**क्य**ा है?'

'पानी पिला दो।'

लहना सिंह ने कटोरा उसके मुंह से लगा कर पूछा- 'कहोकैसे हो?' पानी पी कर बोधा बोला- 'कंपनी छूट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दांत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो!'

'और तुम?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता। चार दिन से तुम मेरे लिए-'

'हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सबेरे ही आई है। विलायत से बुन-बुन कर भेज रही हैं मेमें, गुरु उनका भला करें।' यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ?' यों कह कर नांहीं करते बोधा को उसने जबरदस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट और जीन का कुरता भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुंह से आवाज आई- 'सूबेदार हजारा सिंह।'

'कौन लपटन साहब? हुक्म हुजूर!'- कह कर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहां मोड़ है वहां पंद्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहां दस आदमी छोड़ कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खंदक छीन कर वहीं, जब तक दूसर हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहां रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कंबल उतार कर चलने लगा। तब लहना सिंह ने उसे रोका। लहना सिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहना सिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझा कर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहबलहना की सिगड़ी के पास मुंह फेर कर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिटन बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ा कर कहा- 'लो तुम भी पियो।'

आंख मारते-मारते लहना सिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपा कर बोला- 'लाओ साहब!' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुंह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में ही कहां उड़ गए और उनकी जगह कैदियों से कटे बाल कहां से आ गए? शायद साहब शराब पिए हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है, लहना सिंह ने जांचना चाहा। लपटन साहब पांच बर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

क्यों साहब, हम लोग हिंदुस्तान कब जाएंगे?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों, क्या यह दगेश पसंद नहीं?'

'नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहां कहा? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम आप जगाधरी जिले में शिकार करने गए थे।'

'हां, हां वहीं जब आ खोते पर सवार थे और और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एकं मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था? बैशक पाजी कहीं का।'

सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नील गाय का सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मैस में लगाएंगे।

'हां, पर मैंने वह विलायत भेद दिया।'

'ऐसे बड़े-बड़े सींग! दो-दो फुट के तो होंगे?'

'हां, लहना सिंह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?'

'पीता हूं साहब, दियासलाई ले आता हूं'- कह कर लहना सिंह खंदक में घुसा। अब उसे संदेह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अंधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन? वजीरा सिंह?'

'हां, क्यों लहना, क्या कयामत आ गई? जरा तो आंख लगने दी होती?'

(4)

'होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहन कर आई है।'

क्या'

'लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुंह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की है। सौहरा साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुधे पीने को सिगरेट दिया है?'

'तो अब!'

'अब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होरां, कीचड़ में चक्कर काटते फिरंगे और यहां खाई पर धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गए होंगे।'

'सूबेदार सले कहो एकदम लौट आएं। खंदक की बात धूठ है। चले जाओ, खंदक के पीचे से निकल जाओ। पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं-'

'ऐसी तेसी हुकुम की! मेरा हुकुम-जमादार लहना सिंह जो इस वक्त यहां सबसे बड़ा अफसर है, उसक हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूं।'

'पर यहां तो तुम आठ है।'

'आठ नहीं, दसर लाख! एक-एक अकालिया सिख सवा साख के बराबर होता है। चले जाओ।'

लौट कर खाई के मुहाने पर लहना सिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को जगह-जगह खंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एक तार सा बांध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहरकी तरफ जाकर एक दियासलाइ जलाकर गुत्थी पर रखने ही वाला था

कि इतने में बिजली की तरह दोनोंों हाथों से उल्टी बंदूक को उठाकर लहना सिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलइ गिर पड़ी। लहना सिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'आंख्र! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए।

लहना सिंह ने तीनों गोले बीन कर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीट कर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकाल कर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहना सिंह हंस कर बोला- 'क्योंं लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगाएं होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तिया पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहां से सीख आए? हमारे लपटन साहब तो बिन डेम के पांच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबो में डाले।

लहना सिंह कहता गया- 'चालाक तो बड़े हो पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकम देने के लिए चार आंखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाव आया था। औरतों को बच्चे होने के ताबीज बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पंडित हैं। वेद पढ़-पढ़ कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिंदुस्तान में आ जाएंगे तो गोहत्या बंद कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता कि डाकखाने से रुपया निकाल लो। सरकार का राज्य जानेवाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूढ़ दी थी, और गांव से बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गांव म ें अब पैर रक्खा तो...'

साहब की जेब में से पिस्तौल चला और लहना की जांघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिन के दो फायरों ने साहबकी कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाक सुन कर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाय- 'क्या है?'

लहना सिंह ने उसे यह कह कर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरों से सब हाल कह दिया। सब बंदूकें लेकर तैयार हो गए। लहना ने साफा फा़ कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कस कर बांधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बंद हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बंदूकों की बाढ़ ने पहले धोव को रोका। दूसरेको रोका। पर यहां थे आठ (लहना सिंह तक-तक कर मार रहा था- वह खड़ा था और, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़ कर जर्मन आगे घुसे आते थे।

अचानक आवाज आई, 'वाह गुरुजी का खालसा? वाह गुरुजी की फतह!' और धड़ाधड़ बंदूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो ोचक्की के पाटों के बीच मे आ गए। पीछे से सूबेदार हजारा सिंह के जवान आग बरसाते थे और साामने लहना सिंह के सथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछेवालों ने भी संगीन पिरोना शुरु कर दिया।

एक किलकारी और- अकाल सिक्खां दी फौद आई! वाह गुरुजी की फतह! वाह गुरुजी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुष!!! और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पंद्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कंधे में गोली आर-पार निकल गई। लहना सिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी का साफा कस कर कमरबंद की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव-भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था। ऐसा चांद, जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी बाणभट्ट की भाषा में 'दंतवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरा सिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहना सिंह से सारा हाल सुन और कागजात पा कर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाईवालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलिफोन कर दिया था। वहां से झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां चलीं, जो कोई जेढ़ घंटे के अंदर-अंदर आ पहुंची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहां पहुंच जाएंगे। इसलिए मामूली पट्टी बांध कर एक गाड़ी में घायल लिटाए गए और दूसरी में लाशें रक्खी गई। सूबेदार ने लहना सिंह की जांघ में पट्टी बंधवानी चाही। पर उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा डाएगा। बोधा सिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़ कर सूबेदरा जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा- 'तुम्हारे बोध की कसम है, और सूबेदारनीजी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना, और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़िया ती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूं? वजीरा सिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर...'

'बोदा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सुबेदारनी होरां को चिट्‌टी लिखो, तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियां चल पड़ी थी। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा- 'तैने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखना कैसा, साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते लहना लेट गया- 'वजीरा पानी पिला दे, और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।'

(5)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएं एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं। समय की धुंध बिल्लुल उन पर से हट जाती है।

....

लहना सिंह बारह व,ि क है। अमृतसर में मामा के यहं आया हुआ है। दहीवाले के यहां, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता ता, तेरी कुड़माई हो गई? तब धत् कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा- 'हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम की फूलोंवाला सालू?' सुनते ही लहना सिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरा सिंह, पानी पिला दे।'

....

पचीस वर्ष बीत गए। अब लहना सिंह नं 77 रैफलस में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान हीन रह। न-मालूम वह कभी मिली थी,या नहीं। सात दिन की छुट्‌टी लेकर जमीन के मुकदमें की पैरवी करने वहअपने घर गिया। वहां रेजिमेंट के अफसर की चिट्‌टी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारा सिंह की चिट्‌टी मिली कि मैं और बोधा सिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गांव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहना सिंह सूबेदार के यहं पहुंचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढ़े में से निकल कर आया। बोला- 'लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है, बुलाती है। जा मिल आ।' लहना सिंह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुधे जानती है, कब से?

रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर जाकर मत्था टेकना कहा। असीस सुनी। लहना सिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई- धत् - कल हो गई- देखते नहीं, रेशमी बूटोंवाला सालु- अमृतसर में...'

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली।पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'- उसने कहा था।

.....

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है- 'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम करती हूं। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया हैं, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पल्टन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदारजी के साथ चली जाती, एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।' सूबेदारनी रोने लगी। अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्ह याद है, एक दिन तांगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाए थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे और मुझे उठाकर दुकान के तख्तें पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे आंचल पसारती हूं।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरा सिंह, पानी पिला'- उसने कहा था।

.....

लहना का सिर अपनी गोद में रक्खें वजीरा सिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आधे घंटे तक लहना चुप रहा, फिर बोला- 'कौन! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा- 'हां'

'भइया मुधे और ऊंचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसे हीकिया।

'हां, अब ठीक ह'। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़ में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठ कर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरा सिंह के आंसू टप-टप टपक रहे थे।

.....

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा- 'फ्रांस और बेल्जियम-68 वीं सूची- मैदान में घावों से महा- नं 77 सिख राइफल्स जमादार लहना सिंह।

4.2.3 चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी कला की विशेषताएं

हिंदीकथा-साहित्य में गुलेरी जी भाव व कला दोनों ही दृष्टियों से महानतम रहे हैं। उनकी कहानी कला के विवेचन सेयह बात सिद्ध हो जाती है।

कथानक

कहानी के आरंभ में वे अमृतसर के व्यस्त बाजार का ऐसा शब्दचित्र खड़ा करते हैं कि वह सजीव हो उठता है। इसी बाजार में संयोगवश वारह वर्षीय एक लड़के की भेंट एक आठ वर्षीय लड़की से होती है। लड़का सहज भाव से आकृष्ट होकर लड़की से पूछ बैठता है, 'तेरी कुड़माई हो गई न।' लड़की 'धत्' कहकर चली जती है। फिर तो, यही रोजमर्रा का सिलसिला शुरु हो गया। यह कोरी जिज्ञासा थी या फिर उसमें कोई और बात छिपी थी। एक दिन लड़की ने कहा, 'हां हो गई।' तब लड़के का जो हाल हुआ उससे बात की तह खुल गई। बिना कुछ कहे ही तथ्य का आभास, यही तो कला है।

हजारा सिंह, सूबेदार की पत्नी बन जाने पर उस लड़की के प्रति लड़के (लहना सिंह, जमादार) का वह पहले वाला भाव समाप्त हो गया। वह उसे माथा टेकता है। सूबेदारनी युद्ध भूमि के लिए जाते हुए अपने पति और पुत्र (हजारा सिंह और बोधा सिंह) की रक्ष का भार लहना सिंह को सौंपती है। लहना सिंह युद्धभूमि में अपने प्राणों की बलि देकर उन दोनों पिता-पुत्र की रक्षा करता है, क्योंकि उससे (सूबेदारनी) 'उसने कहा था।'

चरित्र-चित्रण

गुलेरी जी की यह कहानी चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अपने चरमोत्कर्ष पर है। गुलेरी जी की विशेषता वस्तुत: मानव चरित्र की व्याख्या है। लहना सिंह का चरित्र रघुकुलबंशियों की आन, बान और शान की याद ताजा करता है। सूबेदारनी के आदेश का पालन वह अपने प्राणों का बलिदान करके भी करता है। इसे दिल की गहराइयों में दबे प्रेम की पराकाष्ठ का नाम भी दे सकते हैं। उधर सूबेदारनी का स्वार्थ अपनी पराकाष्ठा को पार करता प्रतीत होता हौया फिर बचपन की छेड़खानी-चुहलबाजी का तो परिणाम इस बदले की भावना में तो परिवर्तित होता दिखलायी नहीं देता। कुछ भी रहा हो, किंतु लहना सिंग का चरित्र प्रेरक बनकर अमर हो गया है। मनुष्य की मनोवृत्ति का चित्र भी इस कहानी के चरित्रों में उभरता है। कहानी की मौलिकता,लड़ाई मोर्चे की दृश्य योजना पर नहीं, चरित्रों के सृजन और मूल्यों की अभिव्यक्ति पर निर्भर करती है।

कथोपकथन

इस कहानी का कथोपकथन स्वार्थ, त्याग और बलिदानकी सीमा में आता है। देशकाल, परिस्थिति, स्वभाव तथआ रुचि के अनुकूल कथोपकथन है। कथोपकथन में सुसंबद्धता भी है।

देशकाल, वाताबरण योजना

देशकाल,वातावरण योजना की दृष्टि से यह कहानी मीलका पत्थर सिद्ध होती है। वातावरण बहुत ही स्वाभाविकता लिए हुए है। गुलेरी जी के सभी वर्णन सजीव औरकथानक के विकास में सहायक हुए हैं। अमृतसर के व्यस्त बाजार का चित्र और वातावरण कितना सजीव और स्वाभाविक बन पड़ा है।

भाषा-शैली

इस कहानी और इसके सभी पात्रों की भाषा सहज औरसरल है। इसमें कहीं भी बनावट दिखलायी नहीं पड़ती है। जिंदगी की जिन स्थितियों के बिंब गुलेरी जीने अपनी कहानियों में दिए हैं वे आज भी हमारे लिए जाता हैं और आगे भी ताजा ही बने रहेंगे। इसका कारण यह है कि ये मौलिक बिंब है। उधार लिए हुए नहीं हैं।

शैली और शिल्प की दृष्टि से भी कहानी अनेक रूपों को छूती हुइ बढ़ती है। ऐतिहासिक शैली की भी खुशबु इस कहानी में दिखलाई पड़ती है।

उद्देश्य

'उसने कहा था' कहानी उद्देश्यपूर्ण है। इसमें प्रतिबद्धता की सौंधी-सौंधी खुशबु है। बात को रखने की बात है। जिसे मान लो, चहे दूसरे को ज्ञात हो अथवा न हो, उसे विषम परिस्थितियों में भी पूरा करो। प्रेम प्रदर्शन की वस्तु नहीं है, निभाने की भावना है। मजाक ऐसा करो जो जी का जंजाल न बन जाए। गुलेरी जी की इस कहानी में सभी चरित्र स्वाभाविक बन पड़े हैं। इस कहानी का सबसे बड़ा उद्देश्य यथार्थवाद और आदर्शवाद को प्रस्तुत करना भी है।

हिंदी कथा-साहित्य में स्थान

हिंदी कथा-साहित्य में गुलेरी जी का अपना विशिष्ट स्थान है। यह स्थान उन्हें 'उसने कहा था' से मिला है। इसी कहानी के कारण उन्हें 'कहानी सम्राट' का तमगा भी मिला। आज के और आने वाले कहानीकारों के वे प्रेरणा-स्रोत हैं। अपनी इसी कहानी के बल पर गुलेरी जी हिंदी जगत पर छाये हुए हैं।

4.2.4 कहानी का सार

सच पूछा जाए तो 'उसने कहा था' कहानी प्रेम की आध्यात्मिक अनुभूति है। आध्यात्मिक इस मायने में कि इसमें प्रेमी-प्रेमिका के बीच शारीरिक संबंध की ऊष्मा नहीं है बल्कि प्रेम एक ज्योति की भांति दोनों के हृदय में विद्यमान रहता है और वह अनुभूति इतनी सुखद, इतनी निर्मल है कि युद्ध की विभीषिका भी उसे धीमी नहीं कर पाती।

इस कहानी की शुरुआत में अमृतसर के भीड़-भरे बाजार में एक बारह वर्ष का बालक (लहना सिंह) एक आठ वर्षीय बालिका को तांगे के नीचे आने से बचाता है और इस प्रकार दोनों

का प्रथम परिचय होता है। इसे दीदार होना भी कह सकते हैं और उसके बाद बालक, बालिको को यह कहकर छेड़ता है- 'तुम्हारी कुड़माई (सगाई) हो गई, और बालिका 'धत्' कहकर भाग जाती है। जब भी बालिका उसे बाजार, हाट, रास्ते या चौराहे पर मिलती है, तभी बालक अपने इस घिसे-पिटे प्रश्न को दोहराता है, लेकिन एक दिन 'धत्' कहकर भागने की बजाय बालिका कहती है, 'हां, कल हो गई। देखते नहीं। यह रेशम के फूलों वाली सालू...' और बालक लहना सिंह को इस पर दुख होता है। फिर क्रोध आता है न जाने क्यों ?

उसके बाद कहानी के द्वितीय भाग में, लहना सिंहका परिचय प्रथम विश्व युद्ध के मोर्चे पर होता है और वह यादकरता है कि छुट्टी के बाद घर से लाम पर जाते समय सूबेदार हजारा सिं के घर गया था। वहां सूबेदारनी ने उसे एकंत में बुलाकर कहा था कि मेरे पति (हजारा सिं, सूबेदार) और मेरे बेटे (बोधा सिंह) का खयाल रखना। यह सूबेदारनी वही बालिका थी जिससे अमृतसर के बाजार में उसका परिचय हुआ था और लहना सिंह सूबेदारनी के प्यास की उस किरण को हृदय में संजोकर, अपने प्राणों की बलि देकर भी हजारा सिंह और बोधा सिंह की रक्षा करता है।

कहानी के तीसरे भाग में, युद्धभूमि में नरणासन्न स्थिति में जमादार लहना सिंह अपने साथी वजीरा सिंह से कहता है- 'भइया! मुझे और ऊचा कर ले। अपने पट्ट पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसा ही किया और बस पानी पीते-पीते कुछ पलों में ही लहना सिंह के प्राण पखेरु उड़ जाते हैं। मरने से पहले उसे बचपन से लेकर अभी तक की पिछली सारी बातें चलच्चत्र की भांति घूमती नजर आती है।

यह कहानी नित नये सौंदर्य का उद्घाटन करती रही है और हर पीढ़ी के लिए इसका आकर्षण जस-का-तस बना रहा है। यह कहानी यथार्थ साहित्य का एक उदाहरण है। गुलेरी जी की यह कहानी भी परिस्थितियों पर इच्छा शक्ति की विजय की रचना है, इसलिए इसमें आज भी ताजगी और ऊर्जा भरपूर है।

4.2.5 कहानी की समीक्षा

पंडित चंद्रधर गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' मूलत: तीन भागों में लिखी गई है। प्रथम- युद्धभूमि से पहले की- अमृतसर शहर में घटित कहानी, दूसरी युद्धभूमि में घटित कहानी और तीसरी युद्ध भूमि से जाते समय की कहानी।

कहानी के क्षेत्र में कम लिखकर ज्यादा नाम कमाने वालों में एक गुलेरी जी भी थे। उन्होंने केवल तीन कहानियां साहित्य जगत को दीं। इनमें से भी 'उसने कहा था' शीर्षक कहानी प्रमुख है। इस कहानी को अंतर्राष्ट्रीय □ख्याति प्राप्त है।

कहानी की मूल संवेदना

'उसने कहा था' कहानी में संवेदनाओं की कमी नहीं है। कारण, इस कहानी का ताना-बना ही कुछ इस प्रकार का बुना हुआ है।

एक बरह साल के बालक और आठ साल की बालिका के बाजार में मिलने और बार-बार मिलने पर भी एक ही संवाद, हर बार कुछ नये-नये मायने दे जाता है। दोनों बाल मनों में संवेदनाओं की ध्वनि फूंक जाता है, जिससे बाल मन में कुछ न कुछ चित्रित होने लगता है। जिसका पता शायद इन अबोध बच्चों को भी नहीं चल पाता, किंतु आगे जाकर यह संवाद पूरी कहाी की आधारशिला बन जाता है। इसी प्रकार सूबेदारनी का एकांत में जमादार लहना सिंह को अपने पति और पुत्र की रक्षा का दायित्व सौंपना, संवेदना के शिखर को छूता प्रतीत होता है। फिर युद्ध भूमि से लौटते समय हजारा सिंह की मार्फत सूबेदारनी के लिए संदेश कम, संवेदना ज्यादा उड़ेलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह कहानी पूरी तरह संवेदनशील बन पड़ी है।

4.2.6 कहानी कला के तत्व और 'उसने कहा था'

कहानी कला के तत्वों के आधार पर आलोच्य कहानी की समीक्षा नि**म्न** प्रकार से है-

(1) **कथावस्तु-** 'उसने कहा था' की कथा वस्तु ही मूलतः इस कहानी की जान है। मजाक-मजाक में प्रगाढ़ता, फिर वचन लेने-देने की बात, फिर अपने प्राणों की बाजी लगाकर उस वचन को पूरा करना, कथावस्तु में जीवन डालते प्रतीत होते हैं। इस कहानी की कथावस्तु में बहुत ही मुस्तैदी है। कसाव है। कहीं भी कथावस्तु में ओल-झोल नहीं है। इस कहानी की कथावस्तु में रोचकता और तीव्र गतिशीलता देखने लायक है, इसलिए कहा जा सकता है कि कथावस्तु की दृष्टि से यह कहनी पूर्णरूपेण सफल है।

(2) **चरित्र-चित्रण-** चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'उसने कहा था' कहानी का जवाब नहीं है। सभी चरित्रों का चित्रण पूर्णरूपेण मुखर हो उठा है। इस बात को प्रमाणित करने के लिए इस कहानी के कुछ प्रसंग प्रस्तुत हैं-

फिरंगी मेम के बाग के आम को याद करते हुए लहना सिंह खुशी-खुशी कहता है- 'मखमल का-सा हरा घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो। मेरे मुल्क को बचाने आए हो।' लहना सिंह का चरित्र बड़ा ही सश**क्त** और प्रभावी बन पड़ा है। वह मस्तमौला किस्म का सैनिक है। दूसरों के काम आनेवाला। यारों का यार! उसको अपनी फिक्र तो है ही नहीं। खुद घायल होकर भी बोधा सिंह की तीमारदारी मे ंतनिक भी ढील नहीं छोड़ता और किसी पर जाहिर भी नहीं होने देता। हां, सूबेदार हजारा सिंह यह सब देखता रहता है। उसे सब पता है। सूबेदार के चरित्र का चित्रण भी आत्मीयता और सहृदयता की जीती-जागती तस्वीर बन पड़ा ह ै। लहना सिंह बोधा सिंह की फिक्र जी-जान से करता है। फायरों की आवाज सुनकर जब बोधा सिंह चिल्लाता है- '**क्य**ा है?' तबलहना सिंह उसे यह कहता हुआ सुला देता है- 'एक हड़का कुत्ता आया था, मार दिया।' लहना पूरी तरह ज**ख्म**ी हो चुका था। उसने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियां कसकर बांधी। घाव मांस में ही ता। पट्टियों को

कसने से लहू निकलना बंद हो गया। लड़ाई में लहना को दूसरा घाव-भारी लगा। यहीं लड़ाई खत्म हो गई थी। सूबेदार लहना सिंह से सारा हालसुनकर और कागज पाकर वे उसकी तुरंत बुद्धि को सराह रहे थे। कह रहे थे, 'तू न होता तो आज सब मर जाते।'

इस कहानी के तीसरे हिस्से में झटपट दो डॉक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियां आकर रुकी, घायलों को फील्ड अस्पताललेजाने के लिए। फर्स्ट एड देकर घायत जवानों को एक गाड़ी में लिटाया गया। दूसरी में जवानों की लाशें रखी गई। सूबेदार ने लहना सिंह की जांघ में पट्टी बंधवानी चाही परंतु उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जाएगा। उधर बोधा सिंह बुखार में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटा दिया गया। लहना सिंह को छोड़कर सूबेदार जाना नहीं चाहते थे। ये देखकर लहना सिंह बोला- 'तुम्हें बोधाकी कसम है और सूबेदारनी जी की सौगंध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम?'

'मेरे लिए वहां पहुंचकर गाड़ी भेज देना और जर्मन युद्धों के लिए भी तो गाड़ी आती होगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूं। वजीरा सिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा पर.....'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया। भला, आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिट्टी लिखो तो मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो 'उसने कहा था' वह मैंने कर दिया।'

सूबेदार हजारा सिंह के चरित्र की पराकाष्ठा देखिए- गाड़ियां चल पड़ी थी। सूबेदार ने चलते-चलते लहना का हाथ पकड़कर कहा- 'तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाए हैं। लिखा कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

सभी पात्रों के चरित्र-चित्रण इस कहानी में अद्‌भूतता लिए हुए हैं।

(3) **कथोपकथन**- इस दृष्टि से भी यह कहानी पूरी तरह सफल कही जा सकती है। इसमें जमादार लहना सिंह, और सूबेदार हजारा सिंह की 'ट्युनिंग' देखते ही बनती है। लहना का चरित्र तो कदम-कदम पर वाहवाहीलूटता है, जिसका वह हकदार भी है।

(4) **देशकाल और वातावरण**- 'उसने कहा ता' कहनी में देशकाल और वातवरण पूरी तरह मुखर हो उठा है। अमृतसर के बाजारका वातावरण, युद्ध भूमि का वातावरण कहानी को यथार्थ और वास्तविकता के एकदम पास ले आते हैं। सजीवता और जीवंतता प्रदाान करे देते हैं।

(5) **भाषा-शैली**- इस कहानी की भाषा-शैली पात्रों के चरित्र के अनुकूल ही बन पड़ी है। कहीं भी अखरती नहीं है। इस प्रकार इसकी शैली और शिल्प भी बिल्लुक सही बन पड़े हैं। सभी पात्र अपनी मर्यादा में रहते हैं। भाषा और शैली की बानगी देखिए-

''अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओं। मैंने जो कहा, लिख देना और कह भी देना।''

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया, 'वजीरा, पानी पिला दे और मेरा कमरपंद खोल दे। तर हो रहा है।'

(6) **उद्देश्य**– यह कहानी अपने उद्देश्य में भी पूर्णरूप से सफल है। यह कर्तव्यबोध की कहानी बन गई है।

इस प्रकार कहानी कला के सभी तत्वों का इस कहानी में समावेश हुआ है।

5.2.7 महत्वपूर्ण व्या□याएं

(1) ''वहीं जब आप खोते पर सवार थे और आपका खानसामा अ**ब्दु**ल्ला रास्ते के एक मंदिर में जल चढ़ाने को रह गया था। बेशक पाजी कहीं का। सामने से वह नील गाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली केधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। **क्यों** साहब! सिमले से तैयार होकर उस नील गाय क सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रेजिमेंट मैस में लगाएंगे।''

संदर्भ

यह गद्यांश चंद्रधर शर्मा गुलेकी की कहानी 'उसने कहा था' से उद्द्ध है।

प्रसंग

इस गद्यांश में दुश्मन की फौज का अफसर हिंदुस्तानी अफसर का वेश बनाकर आ जाता है और हु**क्म** चलाने लगता है। लहना सिंह को शक होत है। वह सब समझ जाता है और बातों ही बातों में उसको बेवकूफ बनाकर उसी से उसके नकलीपन को उगलवाने की कोशिश करता है।

व्याख्या

इस गद्यांश में लहना सिंह दुश्मन की फौज के अफसर से जो हिंदुस्तानी वेश धरकर हिंदुस्तानी फौज में आ जाता है। उल्टी-सीधी, बेसिर पैर की अविश्वसनीय बातें करता है।

विशेष

इस गद्यांश में हास्य-व्यंग्यपूर्ण भाषा शैली में बातें हो रही हैं।

(2) ''राम-राम! यह भी कोई लड़ाई है? दिन-रात खंदकों में बैठे हड्डियां अकड़ गई। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धंसे हुए हैं। जमीन कहीं दिखती नहीं। घंटे-दो-घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज तक धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहां दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।''

संदर्भ

यह गद्यांश पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' से अवतरित है।

प्रसंग

युद्ध क्षेत्र में जमादार लहना सिंह चार दिन से खंदक में छिपा हुआ है। ताक में है कि कब दुश्मन दिखलायी भर दे और वह उसे उड़ा दे। प्रस्तुत पंक्तियों में खंदक में छिपे ही वह दुश्मन के छिपने के स्थान के बारे में सोचता है।

व्याख्या

कहानी के इस पूरे अंश में युद्ध क्षेक्र का वर्णन है। जवान किस-किस प्रकार से जान हथेली पर रखकर देश की सेवा में रात-दिन रहेत हैं। दुश्मनों के छिपे ठिकानों के बारे में, स्थिति के बारे में सोचते रहते हैं। अनुमन लगाते रहते हैं। यही भाव उद्धृत पंक्तियों में वर्णित है।

विशेष

यह पंक्तियां वर्णनात्मक शैली की हैं। युद्ध के मैदान का लोमहर्षक वर्णन है।

(3) ''लहना सिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहां आया हुआ है। दही वाले के यहां, सब्जी वाले के यहां, हर कहीं, उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा- हां, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू? सुनते ही लहना सिंह को दु:ख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?''

संदर्भ

यह गद्यांश चंद्रधर शर्मा गुलेरी की सदाबहार कहानी 'उसने कहा था' से उद्धृत है।

प्रसंग

जमादार लहना सिंह जब युद्धभूमि में मरणासन्न स्थिति में अपने साथी वजीरा सिंह के सामने पड़ा हुआ है- जख्मी है। कराह रहा है-तब उसे अपने बचपन की सारी बातें याद आने लगती हैं और चलचित्र के समान उसकी आंखों के सामने घूमने लगती हैं।

व्याख्या

इन पंक्तियों में लहना सिंह स्वयं ही अपनी आंखों से अपने बचपन को देख रहा है- अमृतसर में वह मामा के यहां आया हुआ है। बाजार में वह एक लड़की को देखकर, बस- 'यू ही' पूछ बैठता है- तेरी कुड़माई हो गई? और तब, वह भी 'धत्' कहकर भाग जाती है। लहना रोज ही, जब भी वह उसे मिलती है- यही प्रश्न करने लगता है और उसे वही 'धत्' जबाव मिलता है। शायद उसे लड़की से मजाक करने में, या फिर इस तरह उससे बात करने में आनंद की अनुभूति है किंतु एक दिन उसका अलग-थलग सा जबाव पाकर लहना दु:ख और क्रोध, और न जाने किन-किन भावों

के आवेगों में बह जाता है, लेकिन यह घटना उसे अभी भी युद्धभूमि में मरणासन्न स्थिति में भी याद हो आती है, क्योंकि इस घटना ने, इस बचपन के मजाक ने उसके जीवन के सिद्धांत के रुख को ही मोड़कर रख दिया था। उसने इस 'मजाक' को, इस हंसी को, अपने हृदय-पटल पर किस रूप में अंकित कर लिया था अथवा यह 'मजाक' किस रूप में स्वयं अंकित हो गया था- इसका पता स्वयं लहना को भी नहीं हो पाया था।

विशेष

यथार्थ के बहुत हीआस-पास की अनुभूति का वर्णन इस गद्यांश में गुलेरी जी ने किया है। हास्य और व्यंग्य इन पंक्तियों की विशेषता बन गई है।

4.3 ठाकुर का कुआं - मुंशी प्रेमचंद

प्रसिद्ध उपन्यासकार, कथाकार मुंशी प्रेमचंद जी का जीवन परिचय इस प्रकार है-

4.3.1 लेखक परिचय

मुंशी प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, सन् 1880 को बनारस के पास बसे, लमही ग्राम में हुआ था। उनके पिता मुंशी अजायब लाल डाक मुंशी की नौकरी करते थे, जिससे घर की दाल-रोटी का ही गुजड़ हो पाता था।

प्रेमचंद का वास्तविकनाम धनपतराय था। सर्वप्रथम इन्होंने उर्दू में नवाबराय के नाम से लिखना शुरु किया। इनकी पहली पुस्तक 'सोजे वतन' ब्रिटिश सरकार द्वारा कब्जाकरके जला दी गई थी। फिर इन्होंने प्रेमचंद के नाम से हिंदी में भी लिखान जारी रखा। प्रेमचंद जी बहुत ही सरल और सीधे स्वभाव के सामान्य व्यक्ति थे किंतु इनका चिंतन बहुत गहन ता। समाज की गतिविधियों को बड़ी ही सूक्ष्म, पैनी तथा गहरी दृष्टि से जो भी देथते थे, उसे ही अपनी रचना में ढाल लेते थे। उनका पूरा जीवन संघर्षमय ही रहा। उन्होंने एक विधवा युवती से विवाह रचया था, जिसका नाम शिवरानी देवी था। वह बहुत हीसच्ची, अक्खड़, स्वाभिमानी और शासकीय वृत्ति की युवती थी, जबकि प्रेमचंद कोमल भवनाओं के प्रतीक थे। उन्होंने अपनी लगभग 56 वर्षीय जिंदगी में देश, समाज और ग्रामीण जीवन से ओत-प्रोत लगभग 300 रचनाएं रचीं। उन सचनाओं को भारतीय जीवन का आईना कहा जा सकता है। इनका पूरा साहित्य पाठक के अंत:स्थल पर अपनी भरपूर छाप छोड़ता है। उन्हें 'उपन्यास सम्राट' के नाम से भी जाना जाता है। मुंशी प्रेमचंद का देहावसान दिनांक 8 अ€टूबर, सन् 1936 को हुआ था।

'साहित्य समाज का दर्पण है', ये बात अक्षरश: मुंशी प्रेमचंद के समग्र साहित्य को पढ़कर जानी जा सकती है। मुंशी प्रेमचंद हिंदी साहित्य जगत में सदैव अमर रहेंगे।

4.3.2 ठाकुर का कुआं : मूल पाठ

(1)

जोखू ने लोटा मुंह से लगाया तो पानी मे बदबू आयी। गंगी से बोला यह कौन सा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है और तू सड़ा पानी पिलाये देती है।

गंगी प्रतिदिन शाम पानी भर लिया करती थी। कुआं दूर था, बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लायी, तो उसमें बू बिल्कुल न थी, आज पानी में बदबू कैसी! लोटा नाक से लगाया, तो सचमुच बदबू थी। जरूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा, मगर दूसरा पानी आवें कहां से?

ठाकुर के कुएं पर कौन चढ़ने देगा? दूर से लोग डांट बताएंगे। साहू का कुआं गांव के उस सिरे पर है, परंतु वहां भी कौन पानी भरने देगा? कोई तीसरा कुआं गांव में है नहीं।

जोखू कई दिन से बीमार है। कुछ देर तक तो प्यास रोके चुप पड़ा रहा, फिर बोला- अब तो मारे प्यास के रहा नहीं जाता। ला, थोड़ा पानी नाक बंद करके पी लूं।

गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी से बीमारी बढ़ जाएगी इतना जानती थी, परंतु यह न जानती थी कि पानी के डाल देने से उसकी खराबी जाती रहती है। बोली- यह पानी कैसे पियोगे? न जाने कौन जानवर मरा है। कुएं से मैं दूसरा पानी लाये देती हूं।

जोखू ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा- पानी कहां से लायेगी?

ठाकुर और साहू के दो कुएं तो हैं। **क्या** एक लोटा पानी न भरने देंगे?

हाथ-पांव तुड़वा आएगी और कुछ न होगा। बैठ चुपके से। ब्रह्म-देवता आशीर्वाद देंगे, ठाकुर लाठी मारेंगे, साहूजी एक के पांच लेंगे। गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर पर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बातहै। ऐसे लोग गुएं से पानी भरने देंगे?

इन श**ब्दों** में कड़वा सत्य था। गंगी **क्या** जवाब देती, किंतु उसने वह बदबूदार पानी पीने को न दिया।

(2)

रात के नौ बजे ते। थके-मांदे मजदूर तो सो चुके थे, ठाकुर के दरवाजे पर दस-पांच बेफिक्रें जमा थे। मैदानी बहादुरी का तो अब न जमाना रहा है, न मौका। कानूनी बहादुरी की बातें हो रही थी। कितनी होशियारी से ठाकुर ने थानेदार को एक खास मुकदमे में रिश्वत दी और साफ निकल गये। कितनी अ**क्ल**मंदी से एक मार्के के मुकदमे की नकल ले आये। नाजिर और मोहतमिम, सभी कहते थे, नकल नहीं मिल सकती। कोई पचास मांगता, कोई सौ। यहां बेपैसे-कौड़ी नकल उड़ा दी। काम करने का ढंग चाहिए।

इसी समय गंगी कुएं से पानी लेने पहुंची।

कुप्पी की धुंधली रोशनी कुएं पर आ रही थी। गंगी जगत की आड़ में बैठी मौके का इंतजार करने लगी। इस कुएं का पानी सारा गांव पीता है। किसी के लिए रोका नहीं, सिर्फ ये बदनसीव नहीं भर सकते।

गंगी का विद्रोही दिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा- हम **क्यों** नीच हैं और ये लोग **क्यों** ऊंच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक-से-एक छंटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब यो करें, झूठे मुकदमें ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारहों मास जुआ होता है। यही साहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस-किस बात में हमसे ऊंचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे। कभी गांव में आ जाती हूं, तो रस-भरी आंख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊंचे हैं।

कुएं पर किसी के आने की आहट हुई। गंगी की छाटी धक-धक करने लगी। कहीं देख ले तो गजब हो जाए। एक लात भी तो नीचे न पड़े। उसने घड़ा और रस्सी उठा ली और झुककर चलती हुई एक वृक्ष के अंधेरे साये में जा खड़ी हुई। कब इन लोगों को दया आती है किसी पर। बेचारे महंगू को इतना मारा कि महीनो लहू थूकता रहा। इसीलिए तो कि उसने बेगारन दी थी। इस पर ये लोग ऊंचे बनते है?

कुएं पर स्त्रियां पानी भरने आयी थी। इनमें बात हो रही थी।

'खाना खाने चले और हु**क्म** हुआ कि ताजा पानी भर लाओ। घेड़ के लिए पैसे नहीं हैं।'

'हम लोगों को राम से बैठे देखकर जैसे मरदों को जलन होती है।'

'हा, यह तो न हुआ कि कलसिया उठाकर भर लाते। बस, हुकुम चला दिया कि ताजा पानी लाओ, जैसे हम लौंडियां ही तो हैं।'

'लौंडियां नहीं तो और **क्य**ा हो तुम? रोटी-कपड़ा नहीं पाती? दस-पांच रुपये भी छीन-झपटकरले ही लेती हो। और लौंडियां कैसी होती हैं!'

'मत लजाओं, दीदी! छिन-भर आरम करने को जी तरसकर रह जाता है। इतना काम किसी दूसरे के घर कर देती, तो इससे कहीं आराम से रहती। ऊपर से वह एहसान मानता! यहां काम करते-करते मर जाओ; पर किसी का मुंह ही सीधा नहीं होता।'

दोनों पानी भरकर चली गई, तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गए थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद कर अंदर आंगन में सोने जा रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान तो चाफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार ाकिसी जमाने में गया था, वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझकर न

गया हो। गंगी दबे पांव कुएं की जगत पर चढ़ी, विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

उसने रस्सी का फंदा घड़े में डाला। दायें-बायें चौकन्नी दृष्टि से देखा जैसे कोई सिपाही रात को शत्रु के किले में सुराख कर रहा हो। अगर इस समय वह पकड़ ली गयी, तो फिर उसके लिए माफी या रियायत की सत्ती-भर उम्मीद नहीं। अंत में देवताओं को याद करके उसने कलेजा मजबूत किया और घड़ाा कुएं में डाल दिया।

घड़े ने पानी में गोता लगया, बहुत ही आहिस्ता। जरा भी आवाज न हुई। गंगी ने दो-चार हाथ जल्दी-जल्दी मारे। घड़ा कुएं के मुंह तक आ पहूंचा। कोई बड़ा शहजोर पहलवान भी इतनी तेजी से न खींच सकता था।

गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक टाकुर साहब का दरवाजा खुल गया। शेर का मुंह इससे अधिक भयानक न होगा।

गंगी के हाथ से रस्सी छूट गई रस्सी के साथ घड़ा धड़ाम से पानी में गिरा और कई क्षण तक पानी मे ं हिलकोरे की आवाजे सुनाई देती रहीं।

ठाकुर कौन है, कौन हे ? पुकारते हुए कुएं की तरफ आ रहे थे और गंगी जगत से कूदकर भागी जा रही थी।

घर पहुंचकर देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाये वही मैला-गंदा पानी पी रहा है।

4.3.3 प्रेमचंद की कहानी कला की विशेषताएं

प्रेमचंद का समग्र साहित्य भाव और कला की दृष्टि से अद्वितीय है। पहली-पहली बार कथा के सभी तत्व उनकी रचनाओं में अपने पूर्ण निखार के साथ देख गए जिनका अनुसरण उनके बाद के कथाकारों ने किया।

कथानक

कथानक की दृष्टि से प्रेमचंद के कथा-साहित्य का कैनवास बहुत व्यापक है। उसमें ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और कौतुहल आदि सभी बिंदु अपनी पूर्ण छटा के साथ उभर कर आते हैं। इनमें भी सामाजिक दृष्टिकोण और उसकी पकड़ उनकी रचनाओं में देखते ही बनती है। विसंगतियों का भंडार उनकी रचनाओं में समाया हुआ है। कहीं वे समाज को सुधारने की बात करते हैं तो कहीं नारी जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत करने लगते हैं। ग्रामीण, और उनमें भी निम्न, गरीब और शोषित वर्ग उनकी कहानियों का विशेष आकर्षण रहे हैं, जहां आम पाठक उनरे जुड़े बिना नही रहता। उनमें वह अपने को कहीं न कहीं खड़े अवश्य ही पाता है। प्रेमचंद की कहानियों के कथानक बड़े ही स्वाभाविक होते हैं। उन कथानकों को वे बड़ी कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करते हैं। उनकी कहानियों के पात्र मात्र मनोरंजन ही नहीं करते बल्कि एक उद्देश्य और सिद्धांत के साथ दिखलाई देते हैं।

चरित्र-चित्रण

उनकी कहानियों में मानव-चरित्रों की बुनावट बड़ी ही सहज, सरल तथा स्वाभाविक होती है। सच कहा जाए तो प्रेमचंद के पहले का हिंदी साहित्य कहानी के इस मूल तत्व से बिल्कुल ही अछूता था। चरित्र प्रधान कहानियों को लिखने वालों में प्रेमचंद सर्वप्रथम स्थान पर रहे हैं। उनकी कहानियों के चरित्र काल्पनिक न होकर समाज के ही जीवंत अंग होते हैं। तभी तो उनकी कहानियं वास्तविकता के अधिक समीप होती हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद को मनोवैज्ञानिक माना जाता है। वे सामने वाले के मनोभावों को सहज ही ताड़कर अपनी कहानी के चरित्रों का हिस्सा बना लेते थे।

उनके चरित्रों में अच्छाई-बुराई सभी कुछ है। उनकी कहानियों में मजदूर, किसान, सेठ, डॉक्टर, संत, महात्मा, भिखारी और चपरासी दि सभी के चरित्र देखने को मिल जाते हैं। पाठक सहज ही अपने आप को उनमे देख लेता है, अनुमान लगा लेता है। इन सभी के चरित्रों को प्रेमचंद ने अपनी कलात्मक दृष्टि से अपनी रचनाओं में खूब स्वाभाविक रूप से उभारा है।

कथोपकथन

कथोपकथन की दृष्टि से प्रेमचंद की कहानियां बड़ी ही स्वाभाविक और सजीव बन पड़ी हैं। उनमें भारत के जनजीवन की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। उनकी रचनाएं देश, काल, परिस्थिति, स्वभाव तथा रुचि के अनुरूप गढ़ी गई हैं। उनके पात्र मर्यादानुकूल ही भाषा का प्रयोग करते हैं। साथ ही कथोपकथन के नियंत्रित स्वरूप को भी ध्यान में रखते हैं।

देशकाल, वातावरण योजना

प्रेमचंद जी के प्रत्येक रचना में देशकाल और वातावरण पूर्णरूपेण स्वाभाविक रूप से उभर कर आते हैं। घटनाओं की पृष्ठभूमि के चित्रण में पात्रों के चरित्र के प्रस्तुतीकरण में प्रेमचंद जी अद्वितीय हैं। उनका वर्णन अत्यंत सजीव रहता है। अपनी रचनाओं के वातावरण का ताना-बाना बुनने में प्रेमचंद का जवाब नहीं। उनकी प्रत्येक रचना वातावरण प्रधान होती है। देशकाल का भी वे पूर्ण ध्यान रखते हैं।

भाषा-शैली

प्रेमचंद जी की रचनाओं में भाषा का विशेष योगदान रहता है। उनके पात्र भाषा का सहज और सरल प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा प्रवाहमयी होती है। उनकी भाषा आम बोलचाल की भाषा है जिसमें उर्दू-हिंदी मिश्रित रहती है। अत: कह सकते हैं कि उनकी भाषा हिंदुस्तानी भाषा है। शब्दों का चयन भी वे अपनी भाषा में बड़ी ही चतुरता या आवश्यकतानुसार करते हैं। उनकी भाषा में कृत्रिमता बिल्कुल भी नहीं होती। उनकी भाषा में लोच और प्रवाह भरपूर होता है। उनकी रचना में मुहावरे और कहावतें भी आवश्यकतानुसार प्रयोग में लाए जाते हैं जिससे उनकी भा,ा और भी रोचक और सौंदर्यमयी बन जाती है।

प्रेमचंद की कहानियों में शैली के भी अनेक रूप होते हैं। उनकी शैली वर्णनात्मक, संकेतात्मक, चित्रात्मक, नाटकीय और हास्य-व्यंग्य का पुट लिए होती है। शिल्प विधान की दृष्टि से भी उन्होंने आत्म चरित्रात्मक, ऐतिहासिक, नाटकीय, पत्रात्मक व डायरी-शैली आदि का प्रयोग अपनी रचनाओं में आवश्यकता को देखते हुए किया है। वैसे ऐतिहासिक शैली उनकी प्रिय शैली रही है। इस शैली की कहानियां खासी चर्चित रही हैं।

उद्देश्य

प्रेमचंद का ापूरा साहित्य पूर्णरूपेण उद्देश्य पूर्ण है। उसमें मनोरंजन को उतनी हीन जगह दी गई है जितनी कि आवश्यक है। अनावश्यक रूप से मनोरंजन तत्व का प्रयोग नहीं किया गया है। उनकी कहानियों का मूलाधर परिस्थितियों के मध्य मानवीय चरित्र की कमजोरियों को दिखलाकर उनका त्याग करना रहा है। इस दृष्टि से प्रेमचंद जी को आदर्शोन्मुखी तथा यथार्थवादी कथाकार मान सकते हैं। प्रेमचंद जी की रचनाएं वास्तविकता को उजागर करती प्रतीत होती हैं। वे समाज को बदलने में विश्वास रखते थे, इसलिए आदर्शवाद से अधिक उनका रुजान यथार्थवाद की तरफ ज्यादा अधिक था।

हिंदी कथा-साहित्य में स्थान

प्रेमचंद जी का कथा-साहित्य इतना विशाल, सारगर्भित और उद्देश्यपूर्ण है कि उसमें पूरा एक काल समा गया है। वे कहानी-युग के पर्याय बन चुके थे। बंग्ला कहानी साहित्य में जो स्थान रवीन्द्रनाथ ठाकुर को प्राप्त है, वही स्थान हिंदी साहित्य में प्रेमचंद जी को भी सर्वसन्मति से मिला हुआ है। उनका हिंदी कथा-साहित्य बेजोड़ है। तभी तो उनकी अनेकानेक कृतियों के अनुवद अनेक भाषाओं में हो चके हैं, हो रहे हैं और आगे भी यूं ही होते रहेंगे। उनकी कहानी आधुनिक युग की कहानियों का दर्पण है। सारांश में प्रेमचंद जी की कहानियों में कहानी कला के सभी तत्व उपस्थित रहते हैं।

4.3.4 कहानी का सार

मुंशी प्रेमचंद की यह कहानी 'ठाकुर का कुआं' छुछूत को दर्शाती मर्मस्पर्शी कहानी हैं।

जिस गांव में जोखू और गंगी रहते हैं उस गांव में बस दो ही कुएं हैं। एक ठाकुर का और दूसरा गांव के दूसरे छोर पर साहू का। साहू के कुएं से सभी पनी भर सकते हैं, बस नीच जाति के लोग ही नहीं। फिर वह दूर भी तो है। जोखू कई दिनों से बीमार पड़ा है। उसने अपनी पत्नी से पानी मांगा। गंगी ने दे दिया। जोखू ने जैसे ही लोटा मुंह से लगाया, तो बोला- इसमें तो बदबू आ रही है। यह कैसा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता। गला सूखा जा रहा है तू सड़ा पानी पिलाये देती है।

गंगी प्रतिदिन शाम को पानी भर लिया करती थी। बार-बार जाना मुश्किल था। कल वह पानी लाई तो उसमें बदबू बिल्कुल न थी। आज पानी में बदबू कैसे? यही सोचते हुए गंगी ने लोटा नाक से लगाया तो सचमुच बदबू थी। उसने सोचा जरूर कोई जानवर कुएं में गिरकर मर गया होगा।

मगर दूसरा पानी आवे कैसे? तिस पर जोखू बोला- ला, यही पानी दे दे। गला सूखा जा रहा है। थौड़ा पानी नाक बंद करके ही पी लूं। गंगी ने पानी न दिया और कुएं से पानी लाने की बात कहकर घड़ा लेकर अंधेरा होते ही बाहर चली गई।

रात के नौ बजे अंधेरे में छिपती-छिपाती वह ठाकुर के कुएं के पास पहुंची तो देखा वहां थके-मांदे मजदूर सो चुके थे। ठाकुर के दरवाजे पर दस-पांच बेफिक्रे जमा थे। वे हवाई बहादुरी बघार रहे थे। कानूनी बहादुरी की भी बातें हो रही थी। ठाकुर की होशियारी की बातें भी हो रही थी तथा चालाकी की बाते भी हो रही थी। गंगी भी स्वयं में ही ऊंचे-नीचे लोगों की बातों में उलझ गई- अभी इसी ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुराई थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारह महीने जुआ चलता है। यहां तो जितने हैं एक-से-एक छंटे हैं। यही सहू जी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं पर मजूरी देते नानी मरती है इनकी। बस फर्क ये है कि हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊंचे हैं। कभी गांव में आ जाती हूं तो रसभरी आंखों से देखने लगते हैं। फिर भी घमंड है कि हम ऊंचे हैं।

तभी कुएं पर हुई आहत से गंगी के विचार भंग हो गए। उसने देखा कि स्त्रियां कुएं पर पानी भरने आई थी। इनमें भी इधर-उधर की तेरी-मेरी, इसकी-उसकी बातें हो रही थी। उनके पानी भरकर जाने के बाद गंगी छिपते-छिपाते, इधर-उधर देखते हुए चोर की मानिंद कुए की जगत के पास आई। बेफिक्रे भी जा चुके थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद करके चले गए थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। देवताओं को याद करके घड़े में रस्सी बांधकर घड़ा कुएं में उतारा। धीरे-धीरे पानी भरा। फिर उसे धीरे-धीरे ऊपर खींचने लगी। घड़ा कुएं के मुंह तक आ गया, परंतु जैसे ही वह घड़े को पकड़ने के लिए झुकी, तभी एकाएक ठाकुर का बंद दरवाजा फटाक से खुल गया। गंगी तो कुएं की जगत से कूदकर सिर पर पांव रखकर लबड़-लबड़ वहां से भागी। उधर ठाकुर, 'कौन है, कौन है' कहते हुए कुएं की तरफ आ रहे थे।

गंगी जब हांफते हुए घर पहुंची तो देखा कि जोखू लोटा मुंह से लगाए वही मैला-गंदा पानी पी रहा था।

4.3.5 कहानी की समीक्षा

आधुनिक युग में कथा साहित्य में मुंशी प्रेमचंद को वही सान प्राप्त हुआ जो काव्य के क्षेत्र में कमोबेश जयशंकर प्रसाद को मिला। जिस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में पूरे एक गांव को बसाकर जीवंत कर दिया है, ठीक उसी प्रकार उन्होंने अपनी कहानियों में भी जीवन को समूचा सशक्त और समर्थ करते हुए सच्चे मायनों में नयी कहानी का मार्ग बनाकर दिखा दिया हैं। प्रगतिशील जीवन को भी उन्होंने अपनी कहानियों का कथानक बनाया है। गांव और शहर के जीवन से प्रेमचंद जी भली-भाति परिचित थे। तभी तो उनकी कहानियां दोनों क्षेत्रों के वातावरण को अपने आप में संजोये दीखती हैं। प्रेमचंद जी की कहानियां यथार्थ के बहुत नजदीक रही हैं। उनकी कहानियां चलचित्र जैसी लगती हैं। पढ़ते हुए सब कुछ आंखों के सामने जीवंत होता-सा लगता

है। परंपरागत कहानी कला की रचनागत सीमाओं, काल्पनिक चरित्रों को गढ़ना, इतिवृत्तात्मकता और वर्णनात्मक सैली, नाटकीय अंत, अविश्वसनीय कथानक तथा मानवीय भावुकता को छोड़कर प्रेमचंज जी ने कहनी कला को समृद्ध और विकसित किया। पाठकों को प्रेमचंद जी ने 9 कहानी-संग्रह प्रदान किए हैं। उनमेंसे मानसरोवर शीर्षक के छः भागों में उनकी बेमिसाल कहानियां संकलित हैं।

जहं तक मुंशी जी की कहानी 'ठाकुर का कुआं' की बात है, तो कहानी की मूल-संवेदना, कहानी कला के तत्व, कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल और वातावरण भाषा, शैली और उद्देश्य की दृष्टि से भी यह कहानी उत्कृष्ट कहानियों की श्रेणी में आती है। इसके अंतर्गत पूरा वातावरण आंखों के सामने जीवंत हो उठता है। कहानी की मूल-संवेदना विचारणीय है। कथा वस्तु की दृष्टि से भी कहानी सशक्त बन पड़ी है। कहानी अपना उद्देश्य एक सीमा तक पूरा करती दृष्टिगोचर होती है। सारांश में कहें तो 'ठाकुर का कुआं' एक बोलती हुई कहनी है। वैसे भी प्रेमचंद जी की कहानियं उद्देश्यपूर्ण तो हैं ही। उनमें कुछ न कुछ बात और समस्या उठाकर, उसका निदान भी कहानी के पात्र करने में कोताही नहीं बरतते हैं।

कहानी की मूल संवेदना

प्रेमचंद की यह कहानी 'ठाकुर का कुआं' पूर्णरूपेण संवेदनशीलता पर आधारित है। एक बीमार व्यक्ति को दवा तो दूर की बात है, स्वच्छ पेय जल भी नसीब न हो, उसके लिए भी उसे तरसना पड़े, उसकी पत्नी को भटकना पड़े, यह बाज संवेदनायुक्त तो है ही, साथ ही मानवता की मांग करती भी प्रतीत होती है। प्रेमचंद के समय में तो ज्यादातर इस प्रकार की घटनाएं गांवों में घटती ही रहती थीं। कारण लोगों का दिमग दकियानूसी स्तर पर, तेर-मेर पर अधिक सोचता-विचारता था। पहले गांव भर में एक या दो कुएं ही हुआ करते थे, वह भी उच्च वर्गीय लोगों के। वहां ऊंटी जाति के लोग अथवा उन्हीं के कुटुम्बियों की स्त्रियां पानी भरा करती थीं। उस समय आम आदमी की जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं हो पाती थी। इस कहानी की मूल संवेदना में इसी ओर ध्यान खींचा गया है।

4.3.6 कहानी कला के तत्व और 'ठाकुर का कुआं'

कहानी कला के निम्न तत्व होते हैं- (क) कथावस्तु (ख) पात्र और चरित्र-चित्रण (ग) संवाद (घ) देशकाल और वातावरण (ङ) भाषा-शैली (च) उद्देश्य

(क) कथावस्तु- यह कहानी कला का प्रमुख तत्व है। कहानी उसकी कथावस्तु पर ही विशेष रूप से टिकी होती है। 'ठाकुर का कुआं' कहानी की कथावस्तु अभाव पर आधारित है। गंगी को अपनी बीमार पति को शुद्ध और स्वच्छ जल लाकर देने के लिए क्या-क्या पापड़ नहीं बेलने पड़ते।

इतना सब करके भी वह अपने बीमार पति को शुद्ध और स्वच्छ जल लाकर देने में सफल नहीं हो पाती। इस कहानी की कथावस्तु में दयनीयता और विवशता उभरकर आती है।

(ख) पात्र और चरित्र-चित्रण- इस कहानी का कैनवास अधिक बड़ा नहीं है। छोटी-सी समस्या को लेकर कहनी रची गई है। यह कहानी उस समय की तंगी का बयान करती प्रतीत होती है। इसमें मु□य रूप से दो ही पत्र है- पति जोखू और उसकी पत्नी गंगा। दोनों ही पात्र नि**म्न** वर्ग से हैं। दोनों के चरित्रों का चित्रण स्वाभाविक तरीके से सहज रूप में किया गया है। बीमार पति को प्यास लगती है। पत्नी उसे जो जल देती है उसमें बदबू है। शिकायत करनेपर वह कुएं से स्वच्छ पानी लाकर देने की बात कहती है और रात को पानी के जुगाड़ में कुएं पर जाती है, परंतु परिस्थितिवश उसे पानी नहीं मिलत। मजबूरन उसके पति को बदबूदार पानी पीकर ही अपना सूखा गला तर करने पर विवश होना पड़ता है। दोनों ही चरित्र मजबूरी से जूझते दिखलाए गए हैं। दोनों ही पात्रों का चरित्र-चित्रण काफी प्रभावी ढंग से किया गया है।

(ग) संवाद- प्रेमचंद की कहानियां संवादों के मामले में भी अग्रणी रही हैं। कहानी 'ठाकुर का कुआं' के संवदा भी मन को छूते हुए, दिल की गहराइयों में पहुंचकर खलबली पैद करने में पूर्ण सक्षम हुए हैं। वैसे भी कहनी में संवाद विशेष महत्व रखते हैं। उनसे कथनक को गति मिलती है। रुचि पैदा होती है।

(घ) देशकाल और वातावरण- कहानी 'ठाकुर का कुआं' में घर की मुफलसी और रात्रि में कुएं के आस-पास का वातावरण प्रस्तुत करने में प्रेमचंद ने कमाल कर दिखाया है। उस समय संवाद नहीं, वहां का वातावरण ही बोलता नजर आता है। देशकाल और वातावरण कथा वस्तु पर पूरी तरह हावी हो जात है। वस्तुत: उस समय कहानी की मांग भी यही होती है।

(ङ) भषा-शैली- प्रेमचंद की इस कहानी की भाषा देसी आम भाषा है। वह भी गरीब-गुरबों और नि**म्न**-वर्गोकी भाषा है, लेकिन इस भाषा में भी बुद्धिमानी की बातें हुए बिना नहीं रहती। भाषा प्रभावी बन पड़ी है।

इस कहानी की शैली भी अपनी बात कहने में पूर्णरूपेण सक्षम रही है। शिल्प की दृष्टि से भी कहानी में कोई कमी नहीं अखरती।

(च) उद्देश्य- प्रत्येक कहानीकार किसी उद्देश्य को मस्तिष्क में रखकर ही कहानी रचता है और जहाां तक बात है मुंशी प्रेमचंद की, तो उनकी तो प्रत्येक रचना ही उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ती है। 'ठाकुर का कुआं' में भी पात्र उद्देश्य को लेकर ही जूझते दिखाए गए हैं। यहां आकर कहानी आदर्श से हटकर यथार्थ पर आकर ठहर जाती है। मुंशीप्रेमचंद समस्या को उठाते हैं, उससे जूझसे हैं और अपनी परेशानी को अपने पात्रों से उगलवा कर ही दम लेते है। उनके पात्र अपने उद्देश्य को लेकर संघर्ष करते ही रहते हैं। इस प्रकार वे कर्म का पाठ पढ़ाते से लगते हैं।

4.3.7 महत्वपूर्ण व्याख्याएं

(1) 'गंगी ने पानी न दिया। खराब पानी से बीमारी बढ़ जाएगी। इतना जानती थी, परंतु यह न जानती थी पानी को उबाल देनेसे उसकी खराबी जाती रहती है। बोली-यह पानी कैसे पियोगे? न जने कौन-सा जानवर मरा है? कुएं से मैं दूसरा पानी लाये देती हूं।'

संदर्भ

यह गद्यांश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' से लिया गया है।

प्रसंग

जोखू कई दिनों से बीमार है। उसका गला सूखा जा रहा है, इसलिए वह अपनी प्यास बुझाने के उद्देश्य से अपनी पत्नी गंगी से पानी मांगता है।

व्याख्या

पति जोखू के पानी मांगने पर भी जब गंगी ने खराब-बासी पानी न दिया, तब लेखक गंगी की बुद्धि के विषय में सोचते हुए कहताा है- गंगी को खराब पानी न देने की तो समझ है। किंतु उसे इतनी अक्ल नहीं है दि बदबू वाले खराब पानी को कैसे शुद्ध किया जाता है? दूसरा ताजा पानी ठाकुर के कुएं से रात में लाने की तो हिम्मत और खरता जुटा रही है। किंतु इतन नहीं कि इसी पानी को यदि उबालकर ठंडा करके दिया जाए तो पानी की बदबू जाती रहेगी।

विशेष

इन पंक्तियों में पति-पत्नी के बीच एक लगाव, अपनत्व और दायित्व झलकता है। इसमें पात्रों की विवशता और आवश्यकता दोनों एक साथ ही उभरकर आए हैं। भाषा सरल और व्यवहारिक बन पड़ी है।

(2) 'दोनों पानी भरकर चली गई तो गंगी वृक्ष की छाया से निकली और कुएं की जगत के पास आयी। बेफिक्रे चले गए थे। ठाकुर भी दरवाजा बंदकर अंदर आंगन में सोने ज रहे थे। गंगी ने क्षणिक सुख की सांस ली। किसी तरह मैदान तो साफ हुआ। अमृत चुरा लाने के लिए जो राजकुमार किसी जमाने में गया था वह भी शायद इतनी सावधानी के साथ और समझ-बूझकर न गया हो। गंगी दबे पांव कुएं की जगत रही चढ़ी। विजय का ऐसा अनुभव उसे पहले कभी न हुआ था।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' से लिया गया है।

प्रसंग

इस गद्यांश में गंगी अपने बीमार पति जोखू के लिए शुद्ध और साफ पानी ठाकुर के कुएं से चोरी-छिपे लाने के लिए अंधेरा होने पर घर से निकलती है। वह जैसे-तैसे कुएं की जगत की आड़ में बैठकर मौके का इंतजार करने लगी।

व्याख्या

जैसे ही गंगी ने देखा कि दोनों स्त्रियां पानी भरकर चली गई तो गंगीवृक्ष की छया तले से निकलकर कुएं की जगत के पास आ गई। उसने देखा कि बेफिक्रे भी जा चुके थे। ठाकुर भी दरवाजा बंद करके घर के भीतर जा रहे थे। ये सब देखकर गंगीक डर थोड़ा कम हुआ। उसने चैन की सांस ली। उसे मैदान साफ जो लगाथा। उसे यह सब देखकर अपनी अब तक की सफलता पर आश्चर्यजनक खुशी हुई। अब उसने फिर से हिम्मत जुटाई और दुएं की जगत पर जा चढ़ी और घड़े में फंदा डालकर कुएं से ताजा, शुद्ध और साफ पानी निकालने की तैयरी में जुट गई।

विशेष

इसमें निम्न वर्ग को गांव के कुएं से एक घड़ा पानी भरने के लिए कितनी जद्दोजहद करनी पड़ती है, यह देखने वाली बात है।

इस गद्यांश में ऊंच-नीच और छोटे-बड़े का अंतर स्पष्ट दिखलाया गया है और साथ ही आतंक और भय का वातावरण भी चित्रित किया गया है।

(3) 'गंगी का विद्रोहीदिल रिवाजी पाबंदियों और मजबूरियों पर चोटें करने लगा- हम क्यों नीच हैं और ये लोग क्यों ऊंच हैं? इसलिए कि ये लोग गले में तागा डाल लेते हैं? यहां तो जितने हैं, एक-से-एक छंटे हैं। चोरी ये करें, जाल-फरेब ये करें। अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचरे गडरिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पंडित के घर में तो बारह मास जुआ होता है। यही साहूजी तो घी में तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं, मजूरी देते नानी मरती है। किस-किस बात में हमसे ऊचे हैं, हम गली-गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊंचे हैं, हम ऊचे। कभी गांव में आ जाती है हूं, तो रसभरी आंख से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर सांप लोटने लगता है, परंतु घमंड यह कि हम ऊंचे हैं।

संदर्भ

प्रस्तुत गद्यांश मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुआं' से ली गई हैं।

प्रसंग

जोखू की पत्नी गंगी शुद्ध पानी लेने के लिए रात को अंदेरे में जब ठाकुर के कुएं के पास छिपती-छिपाती आती है, तब वह वहं एकत्र हुए बेफिक्रों की इधर-उधर की बातें सुनती है, तब उसके मन में भी ऊंच-नीच को लेकर खलबली मचने लगती है, तो वह भी अपनी भड़ास निकालने लगती है-

व्याख्या

इन पंक्तियों में गंगी का विद्रोही मन उन रिवाजों और पाबंदियों को लेकर तड़प उठता है, जो समाज के उन ठेकेदारों ने अपने बूते पर बना रखे हैं, क्योंकि वे आर्थिक दृष्टि और जाति-बिरादरी की दृष्टि से मजबूत स्थिति में हैं। वरना तो चारित्रिक दृष्टि से प्राय: सभी अपनी धोती में नंगे ही हैं। इसी नंगई को गंगी खूब जानती है, किंतु कमजोर स्थिति में होने के कारण खुल्लम-खुल्ला कुछ बोल नहीं सकती। वरना तो सबकी पोल-पट्टी एक मिनट में खोल कर रखने का पता रखती है। अब उसमें चाहे चोरी की बात हो, जाल-फरेबी की चाल हो, या फिर झूठे-सच्चे मुकदमों का ही ममला क्यों न हो। वह तो पंडित के घर में पूरे साल जु चलते रहने की बात क्या, साहू जी द्वारा घी में तेल मिलाकर बेचने तक की करतूत को भी जानती है। बिना पैसे दिये काम करा लेने वालों के नाम भी उसे पता हैं और तो और उसे देखकर कितनों के मन मचलते हैं- यह भी वह अच्छी तरह समझती है।.... और फिर भी इन ऊंचे लोगों की धौंस कि हम ऊंचे हैं। इस धौंस के बूते पर हीये ऊंचे होने का तमगा गले में बांधे फिरते हैं और हम बस चुप रह जाते हैं, वरना तो ये सब हमारे ठेंगे पर।

विशेष

इस गद्यांश में कमजोर लोगों के दिल से निकली 'हाय' का चित्रण बड़े ही प्रभावी ढंग से किया गया है। भाषा और शैली यथार्थ के बहुत पास की गई।

इकाई 5 यात्रावृत्त, रिपोतार्ज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा और जीवनी

5.0 परिचय

हिंदी साहित्य की नयी गद्य विधाओं में यात्रावृत्त, रिपोतार्ज, रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी आदि विधाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इन विधाओं में गद्य तिनी सरसता के साथ प्रस्तुत किया जाता है कि पढ़ने वाला व्यक्ति भाव सागर पर तैरते हुए लहर रूपी चित्रों को उकेरता चला जाता है। इन विधाओं में कथ्य का नयापन और शिल्प की नवीनता इन्हें पारंपरिक गद्य विधाओं से अलग खड़ा करती है। जो विषय कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध की सीमाओं में नहीं बांधे जा सकते वे विषय इन नयी विधाओं में निसृत होकर आये हैं।

इस इकाई में अज्ञेय के यात्रावृत्त, फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज, महादेवी वर्मा के रेखाचित्र, विष्णु प्रभाकर के संस्मरण, मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा तथा गुणाकर मुले द्वारा लिखित जीवनी आदि विविध विधाओं का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है। इन लेखकों की लेखन शैली की विशेषताओं का भी विवेचन किया जा रहा है।

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

अज्ञेय के यात्रावृत्त 'परशुराम से तूरखम तक' की विशिष्टताओं का वर्णन कर पाएंगे;

फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज 'ऋणजन–धनजल' की लेखन शैली का विश्लेषण कर पाएंगे;

महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'भाभी' की भाषा शैली की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;

विष्णु प्रभाकर के संस्मरण 'यादों की तीर्थयत्रा–जैनेन्द्र कुमार' की भावव्यंजना की समीक्षा कर पाएंगे;

मैत्रेयी पुष्पा की आत्मकथा 'गुड़िया भीतर गुड़िया' की भाव व्यंजना का मूल्यांकन कर पाएंगे;

गुणाकर मुले द्वारा लिखित राहुल सांकृत्यायन की जीवनी की विशेषताओं का अध्यन कर पाएंगे।

5.2 यात्रावृत्त : परशुराम से तुरख तकः अज्ञेय

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' आधुनिक साहित्यके शलाका पुरुष होने के साथ–साथ जिज्ञासु, विचारक एवं प्रतिभा संपन्न थे। अज्ञेय ने अपनी सृजनक्षमता एवं मौलिक चिंतन से आधुनिक साहित्य की विविध विधाओं को समृद्ध किया।

अज्ञेय का जन्म 7 मार्च, 1911 ई. को उत्तर–प्रदेश के देवरिया जिले के कसया में हुआ था। उनके पिपता का नाम हीरानंद शास्त्री तथा माता का नाम वयन्ती देवी था। पिता डॉ हीरानंद शास्त्री का कार्य क्षेत्र लगातार बदलते रहने के कारण अज्ञेय की शिक्षा–दीक्षा एक स्थान पर नहीं हुई। इनका बचपन लघनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। इनकी प्रारंभिक शिक्षा की

शुरुआत लखनऊ में और स्कूली शिक्षा की समाप्ति लाहौर में हुई। उनके परिवार में बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही दी जती थी। अज्ञेय की शिक्षा का आरंभ भी लखनऊ में संस्कृत के श्लोकों को याद करने की मौखिक रीति से हुआ और जम्मू कश्मीर में उन्हें संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी की शिक्षा मिली। नालंदा में रहते हुए पिता से हिंदी का ज्ञान प्राप्त किया। पटना में राखालदास बंदोपाध्याय के संपर्क में आकर बांग्ला सीखी। अज्ञेय ने मैट्रिक की परीक्षा 1925 में पंजाब से प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसके बाद मद्रास क्रिश्चन कॉलेज में दाखिल हुए। वहां से विज्ञान में इंटर की पढ़ाई पूरी कर 1927 में वे बी.एस.सी करने के लिए लाहौर के फॉरमन कॉलेज के छात्र बने। 1929 ई. में वहां से बी.एस.सी पास करने के बाद 1930 में एम.ए (उत्तरर्द्ध) की परीक्षा नहीं दे पाये और क्रांतिकारी संगठन में शामिल हो गए। अज्ञेय का क्रांतिकारी जीवन लगभग 7 वर्ष तक (1929-1936) रहा। उन्हों ने जेल की यातना सहते हुए इसी कालावधि में अनेक कहानियां और उपन्यास 'शेखर एक जीवनी' लिखा जिसे प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य में मील के पत्थर के रूप में स्वीकार किया गया। इसी दौरान पत्र-पत्रिकाओं में भी उनकी कहानियां छपनी शुरू हुई।

अज्ञेय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य सन् 1945 ई. में तारसप्तक का संपादन-प्रकाशन था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अज्ञेय 'फासिस्ट-विरोधी' युद्ध के समर्थक थे। अपनी प्रतिबद्धिता को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने निश्चय किया कि युद्ध में शामिल होना है और सन् 1943 मे वे युद्ध में शामिल हो गए। अज्ञेय ने तीन वर्षो तक सेना की नौकरी की। सेना से मुक्त होने के बाद कुछ दिनों तक गुरुदासपुर (पंजाब), मेरठ और बनारस में भटकते रहे। अंतत: मार्च 1947 में अपने कार्य का विस्तार करने के लिए इलाहाबाद में अपना निवासबनाया और उसी वर्ष प्रयाग से प्रतीक नामक त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका निकालना प्रारंभ किया। इसी बीच उन्होंने 'थॉट' (अंग्रेजी-पत्रिका) का भी संपादन किया। बाद में उन्होंने 'वाक्' नामक पत्रिका निकाली और उसका संपादन भी किया। सन् 1951 में 'दूसरा सप्तक' कविता संग्रह का संपादन किया। सन् 1952 में 'थॉट' से अलग होने के बाद आकाशवाणी में कार्य करना प्रारंभ किया। सन् 1955 तक भाषा सलाहकार के रूप में कार्यरत रहे।

आकाशवाणी से त्यागपत्र देकर वे अप्रैल 1955 में पहली बार 'यूनेस्को' के निमंत्रण पर पश्चिम यूरोप की यात्रा पर गए। यूरोप प्रवास के उनके अनुभव उवके यात्रा संस्मरण 'एक बूंद सहसा उछली' में संकलित हैं। 1958-60 तक के दो वर्ष उनकी साहित्यिक गतिविधियों एवं रचनात्मक क्रियाशीलता से परिपूर्ण रहे। सन् 1960 में उन्होंने सुमित्रानंदन पंत की वर्षपूर्ति के उपलक्ष्य में उन्हें समर्पित किये जाने वाले मान ग्रंथ 'रूपाम्बरा' का संपादन किया। 1964 में उन्होंने टाइमस ऑफ इण्डिया पत्रिका का संपादन कार्य स्वीकार किया। पत्रिका के लिए 'दिनमान'

नाम का चुनाव भी अज्ञेय ने ही किया। फरवरी 1965 में दिल्ली से 'दिनमान' निकलना शुरू हुआ। सित□बर 1969 में दिनमान के 'प्रधान संपादक' पद से त्याग पत्र दे दिया। अज्ञेय ने जुलाई 1971 से दिसम्बर 1972 तक 'जोधपुर विश्वविद्यालय' में 'तुलनात्मक साहित्य' विषय के प्रोफेसर पद पर रहकर अध्यापन कार्य किया। 1973 में 'नया प्रतीक' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया।

सन् 1979 में नवभारत टाइमस से अलग होने के बाद अज्ञेय ने स्वतंत्र लेखन के अतिरिक्त नौकरी जैसा कोई बंधन स्वीकार नहीं किया। 'भारतीय ज्ञानपीठ' से मिली पुरस्कार राशि से 'वास्तल्य निधि' की स्थापना की। सन 1983 में अज्ञेय यूगोस्लाबिया गए क्योंकि मई 1983 के अंतर्राष्ट्रीय काव्य समारोह की संचालन समिति ने उस वर्ष 'स्वर्णमाल' पुरस्कार अज्ञेय को दिया था। यह सम्मान किसी भारतीय को पहली बार मिला था। अज्ञेय ने 14 अप्रैल, 1987 को करीब 7.30 बजे सुबह सीने में दर्द की शिकायत की और सुबह करीब 8.30 बजे उनके निधन के साथ एक साहित्यिक युग का अंत हो गया।

'अज्ञेय' का यात्रा साहित्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। वे अपने को एक यायावर के रूप में देखते हैं। उनका सारा जीवन ही एक अविराम यात्रा है। उन्होंने देश-विदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण किया। भ्रमण के समय उनकी दृष्टि प्रकृति के बाह्य सौंदर्य पर ही नहीं, वरन स्थान विशेष के मानव जीवन की समस्याओं पर भी टिकती है। वे पर्वतमालाओं के तमाशबीन नहीं हैं, वरन उन पर निवास करने वाले पहाड़ियों के जीवन की कुरुपताओं के साक्षी भी हैं, वे भूगोप में ही नहीं इतिहास मे भी गहरी दिलचस्पी रखते हैं। उन्होंने जिस स्थान की यात्रा की, उसके समूचे परिप्रेक्ष को व्यक्त करने को चेष्टा की है। 'अज्ञेय' के यात्रा वृत्तांत जीते-जागते चित्र है, जिनमें वस्तुओं का यथातथ्य वर्णन ही नहीं है, स्वयं लेखक की मानसिक प्रतिक्रिया भी व्यक्त होती गई है। विभिन्न भाषाओं के जाने कितने शब्द, मुहावरे, उक्तियां और वाक्यांश सहज रूप से गृहीत होकर उनके यात्रा-वर्णनों को सजीव रूप प्रदान करते हैं।

कृतित्व

अज्ञेय की रचनात्मक प्रतिभा साहित्य की नाना विधाओं में प्रस्फुट हुई है। उनके द्वारा सृजित रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

कवितासंग्रह- भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, बावरा, अहेरी, इन्द्रधनु, रौंदे हुए, अरी ओ करुणा प्रभामय, आंगन के पार द्वार, पूर्वा, सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार, क्योंकि मैं उसे जानता हूं, सागरमुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूं, महावृक्ष के नीचे, नदी की बांक पर छाया, ऐसा कोई घर आपने देखा है।

उपन्यास– शेखर : एक जीवनी, नदी के द्वीप, अपने–अपने अजनबी, छायामेखल।

कहानी– विपथगा, परंपरा, कोठरी की बात, शरणार्थी, जयदोल और ये तेरे प्रतिरूप।

यात्रा–संस्मरण– अरे यायावर! रहेगा याद?, एक बूंद सहसा उछली।

वैचारिक लेख– भवन्ती, अंतरा, शश्वती, आलवाल, संवत्सर, त्रिशंकु, जोग लिखी, अद्यतन, कहां है द्वारका, कवि दृष्टि।

आत्मालोचन– आत्मनेपद, लिखि कागद कोरे, आत्मपरक, स्मतिलेखा, सब रंग और कुछ राग।

संपादन– तार सप्तक, दूसरा सप्तक, होमवती स्मारक ग्रंथ, पुष्करिणी, नवधा, तीसरा सप्तक, चौथा सप्तक, सर्जना और संप्रेषण, साहित्य का परिवेश, साहित्य और समाज– परिवर्तन की प्रक्रिया, सामाजिक यथार्थ और कथाभाषा तथा जन जनक जानकी।

पुरस्कार एवं सम्मान– नागरी प्रचारिणी सभा पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपी पुरस्कार, स्वर्णमाल पुरस्कार, भारत भारती पुरस्कार।

उपाधियां– सन् 1968 में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' ने 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि प्रदान की और सन् 1971 में उज्जैन के विक्रम विश्वविद्यालय ने उन्हें जी.लिट की उपाधि से विभूषित किया।

कुल मिलाकर कहें तो अज्ञेय भारतवर्ष के उन गिने–चुने कवियों में से एक है, जिनका हिंदी साहित्य को समृद्ध कने में अप्रतिम योगदान है।

5.2.1 परशुराम से तूरखम – (एक टायर की रामकहानी)

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध हिंदी साहित्य में नयी गद्य विधाओं के उद्‌भब का साक्षी रहा है। इन्हीं नवजात गद्य विधाओं में से वृत्तांत एक है।

श्रीमती हरदेवी के लिखे हुए यात्रा वृत्तांत 'लंदन की यात्राश का मुद्रण 1883 ई. में हुआ। हालांकि यात्रा लेखन की शुरुआत 60 के दशक में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से कर दी थी। भारतेंदु के यात्रा वृत्तांत सिर्फ स्थानों का ब्यौरा ही नहीं देते बल्कि वहां के लोगों को भी रूपायित करेत हैं। इनमें भारतेंदु की प्रतिभा एवं आत्म छवि भी किसी न किसी रूप में पाठक के सम्मुख प्रस्तुत होती है। अधिकांश यात्रा वृत्तों में लेखक की वैचारिकी, उसकी अस्मिता एवं आत्मानुभूति किसी न किसी रूप में प्रकट होती है।

उपलब्ध सूचना के आधार पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ही हिंदी यात्रा वृत्त के जनक माने जाते हैं। डॉ बापूराव देसाई अपनी पुस्तक 'यात्रा – साहित्य विधा' में लिखते हैं, 'आश्चर्य की बात यह है कि हिंदी आलोचक वर्ग ने अब तक आधुनिक यात्रा साहित्य के आदि स्रोतों का अध्यन नहीं किया है।'

भारतेंदु को यात्रा वृत्त का जनक मानकर हम हिंदी यात्रा साहित्य के आदि स्रोतों से स्वयं को वंचित सख सरल एवं उपलब्ध प्रमाणों को ही आधार मान लेते हैं जबकि यात्रा वृत्तों के आदि स्रोत आदिकालीन हिंदी साहित्य में निहित हैं। अत: हिंदी की आदिकालीन रचनाओं का गंभीर विश्लेषण जरूरी है जिससे आधुनिक यात्रा लेखन की जड़ों को पहचाना जा सके और इस विधा की गहन समझ विकसित की जा सके। इस शोध से हिंदी साहित्यलोचन एवं साहित्येतिहास दोनों को गति मिलेगी।

बारहवीं शताब्दी में आचार्य भट्ट लक्ष्मीधर ने तीर्थयात्रा संबंधी पौराणिक स्थलों को तीर्थ विवेचन के नाम से संकलित किया जो मध्यकाल में यात्रा के महत्व को प्रमाणित करता है। यह कहा जा सकता है कि तीर्थाटन एक लौकिक स्थान से अलौकिक भूमि की ओर प्रस्थान है और धार्मिक महत्व होने के बावजूद तीर्थाटन से संबंधित यात्रा साहित्य को हिंदी के यात्रा वृत्तों के आदि स्रोत के रूप में देखा जा सकत है।

तीर्थाटन और देशाटन के संबंध में 'अज्ञेय' का मत कुछ इस प्रकार है- 'किंतु देशाटन कैसे किया जाए इसकी कोई विशेष पद्धति शास्त्रकारों ने नहीं बताई। तीर्थाटन की परंपरा थी लेकिन उसका उद्देश्य अनुभव संचय नहीं बल्कि पुण्य संचय था और वह भी भावानुभव से मुक्ति पाने के लिए।' इससे स्पष्ट हो जाता है कि उद्देश्य की दृष्टि से अज्ञेय पुरानी तीर्थयात्रा को आधुनिक 'पर्यटन' के रूप में नहीं देखते क्योंकि तीर्थाटन का उद्देश्य पुण्य संचय है जबकि आधुनिक पर्यटन का अनुभव संचय। अत: यह स्पष्ट है कि समकालीन संदर्भ में यात्रा का लक्ष्य अनुभव समृद्धि ही है। यदि भारतेंदु ने आधुनिक यात्रा वृत्तांत का सूत्रपात किया तो अज्ञेय ने इसे नये सांचे में ढाला

अज्ञेय के यात्र व-त्तों की विशिष्टता यह है कि वे संस्मरणात्मक हैं। भारतेंदु के यात्रा वृत्त दृष्टा द्वारा रचित है जबकि अज्ञेय के यात्रा-संस्करण जीवनानुभव पर आधारित हैं। स्पष्ट है कि आरंभिक यात्रा वृत्तों का केंद्र बाह्य परिवेश है, जिसका वर्णन वस्तुपरक दृष्टि से किया जाता है। इसके विपरीत समकालीन यात्रा संस्मरण का केंद्र स्वयं लेखक है, जो व्यक्ति-सापेक्ष दृष्टि से अपने निजी विचार एवं यात्रानुभूतियों को अभिव्यक्त करता है। यात्रा लेखन की प्रारंभिक अवस्था में बाह्य यथार्थवाद अथवा प्रत्यक्षवाद दृष्टिगोचर होता है, जबकि समकालीन यात्रा संस्मरणों में लेखक बाहरी संसार द्वारा ग्रहण किये गए अनुभवों को अपने निजी सांचे में ढाल रचनाओं का आधार बनाता है, जिसका उद्देश्य घटनाओं का विवरण न होकर लेखक के आंतरिक अनुभवों का वर्णन हे।

स्मरण या स्मृति-चित्र यहां सहज यथार्थ का प्रतिबिंब न होकर अनुभव-यथार्थ के आत्म बिंदु हैं। यदि अज्ञेय के इस कथन को स्वीकार कर लें कि 'अस्मिता की पुन: प्रतिष्ठा सत्ता बोध से

जुड़ी हुई है और स्मृति उसका ही आधार है' तो हम यह कह सकते हैं कि स्मृति आत्मा सत्ता के बोध के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया है। सन् 1953 ई. में अज्ञेय का 'अरे यायावर रहेगा याद' शीर्षक यात्रा-संस्मरण प्रकाशित हुआ था, जिसे यात्रा संस्मरण का घोषणा-पत्र कहना गलत न होगा। इसमें लेखक अपने यात्रानुभवों के संसार में पाक को निमंत्रित करता है 'भ्रमण या देशाटन केवल दृश्य परिवर्तन या मनोरंजन न होकर सांस्कृतिक दृष्टि के विकास में भी योग दे, यही उसकी वास्तविक सफलता होती है। अपने यात्रा संस्मरणों में मेरा यह प्रयत्न रहा है कि उनयात्राओं के मेरी होने की बात उन्हें तत्कालिक अनुभव की प्रामाणिकता और टटकापन देने के लिए सामने आये; नहीं तो वे वृत्तांत एक समग्र दृष्टि को उभारने में ही योग दें जिससे भविष्यत यात्री अपने-अपने अनुभव को और समृद्ध बना सकें।' अत: इसमें कोई संदेह नही कि अज्ञेय ने यात्रा लेखन को मनोरंजन के पद से उठाकर एक गंभीर रचना कर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया, क्योंकि उनके अनुसार यात्रा संस्मरण देखे हुए स्थानों का वर्णन ही नहीं हे, अपितु उन यात्रानुभवो का संप्रेषण भी है, जिसको पढ़ने से पाठक का अनुभव भंडार अधिक समृद्ध बनता है। अज्ञेय इस वक्तव्य को आगे बढ़ाकर लिखते हैं कि-

'लेकिन स्पष्ट है कि अरे यायावर रहेगा याद?' जैसे पुस्तकों को उनसे मिलने वाली भौगोलिक अथवा प्रादेशकि जानकारी के लिए नहीं पढ़ा जाएगा। ऐसे यात्रा संस्मरण 'टूरिस्ट गाइड' का स्थान लेने के लिए नहीं लिखे और पढ़े जाते हैं। ऐसी पुस्तकों में प्रस्तुत ब्यौरा एक व्यक्ति की यात्रा का ब्यौरा होता है और वह यात्रा जितनी बाहरी होती है उतनी भीतरी भी। यात्रा विवरण जितना स्थूल भू-विस्तार से संबद्ध होता है उतना ही सूक्ष्म मानसिक भूगोल से भी। 'टूरिस्ट गाइड' के सहारे अनेक व्यक्तिएक ही यात्रा करसकते हैं; यात्रा संस्मरण के सहारे की गयी प्रत्येक पाठकीय यात्रा भी उतनी ही विशिष्ट होती है जितनी लेखक की यत्रा रही और प्रत्येक के लिए संस्मरण-लेखक के मासन में प्रवेश करना आवश्यक होता है। अर्थात यात्रा संस्मरण भौगोलिक मार्ग दर्शन की कुंजी न होकर लेखक के मानसिक भूगोल पर प्रकाश डालता है। वह पृथ्वी की भौगोलिक परिधि तक सीमित न होकर संस्मरण लेखक के अंत:करण तक विस्तृत होता है। 'टूरिस्ट गाइड' जहां बाहरी यथार्थ की विभिन्न जानकारियों का स्रोत होती है और व्यक्ति की ज्ञान पिपासा बुझाती है वहीं यात्रा संस्मरण में रचनाकार की आंतरिक अनुभूतियों की स्पष्ट छाप होती है। वस्तुपरक सूचनाएं जहं बोझिल और एक जैसी होती है, वहीं यात्रा संस्मरण लेखक के व्यक्तित्व की मनोभूमि का जीवंत संसार होता है। रचनाकार का स्मृति भंडार बाहरी वास्तविकता को आत्मसात कर स्वतंत्र भाव से ग्रहण करता है और स्मृति चित्रों के रूप में अपने भ्रमणानुभवों को व्यक्त करता है। इस संबंध में डॉ रामचंद्र तिवारी का निम्नलिखित उद्धरण संगत प्रतीत होता है-

'वे (अज्ञेय) अनुभव और अनुभूति में अंतर करते हैं, उनके अनुसार अनुभव तो घटित होता है पर अनुभूति संवेदन और कल्पना के सहारे उस सत्य को आत्मसात कर लेती है जो वास्तव में कृतिकार के साथ घटित नहीं हुआ, जो आंखों के सामने नहीं आया, जो घटित के अनुभव में नहीं आया वही आत्मा के सामने ज्वलंत प्रकाश में आ जाता है, तब वह अनुभूति प्रत्यक्ष हो जाती है। तात्पर्य यह कि काव्यगत भाषा घटित अनुभव न होकर अनुभूति प्रत्यक्ष होती है और इसी अर्थ में वह अ-वैयक्तिक या इम्पर्सनल होती है। साहित्य-सृष्टि की मूल प्रेरणा साहित्यकार की एक आंतरिक विवशता होती है, अज्ञेय की यह मान्यता विवाद से परे है।'

अत: अनुभव (जो घटित हुआ) तथा अनुभूति (जो वस्तुत: संवेदना द्वारा ग्राह्य है) दोनों का संश्लेषण ही यात्रा साहित्य को पूर्णता दिलाता है। कुछ वर्षो के पश्चात 1960 में अज्ञेय का दूसरा यात्रा संस्मरण 'एक बूंद सहसा उछली' प्रकाशित हुआ जिसमें अज्ञेय ने फिर से गाइड तथा पुराने यात्रा वृत्तांतों पर इतिवृत्तात्मकता, मार्गदर्शकों को उपयोगी सूचनाएं प्रदान करने का आरोप लगाते हुए लिखा 'यह पुस्तक मार्गदर्शिका नहीं है इसके सहारे यूरोप की यात्रा करने वाला यह जान लेना चाहे कि कैसे वह कहां से कहां जा सकेगा, या कैसे मौसम के लिए कैसे कपड़े, उसे ले जाने होंगे या कि कहां कितने में उसका खर्चा चल सकेगा, तो उसे निराशा होगी। जो यह जानना चाहते हों कि कहां से नायलॉन की साड़ियां या कैमरे या घड़िया या सेंट, या ऐसी दूसरी चीजें जो कि भारतवासी विदेशों से उन कला वस्तुओं के एवज में लाते हैं जो कि विदेशी यहां से ले जाते हैं- कहां से किफायत से मिल जाएगी उसके भी काम ही यह पुस्तक नहीं होगी। वास्तव में ऐसे पाठक को यह पुस्तक पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।'

उपर्युक्त उद्धरण में गाइड की व्यावहारिक जानकारियों पर व्यंग्य करते हुए अज्ञेय अपने आदर्श पाठक को हमारे सम्मुख इन शब्दों में परिभाषित करते हैं : 'संवेदनशील', 'उदारमना' तथा 'अनुभव के प्रति खुला' ताकि वह लेखक की संवेदना ग्रहण कर सके, लेखक के विचारों का सम्मान करे और जीवन को प्रेम की दृष्टि से देखे, परखे। यात्रानुभूति के साथ ही अज्ञेय यात्रा संस्मरणों की एक और विशेषता संकेतित करते हैं तीर्थाटन के संबंध में वे लिखते हैं : 'तीर्थ यात्री की धर्म-भावना का स्थान मिथक के अन्वेषी की विस्मय-भावना ले लेती है।... ये पुरानी यात्राएं मिथक के सहारे दोहरायी जा कर भूगोल के आयाम में ही नहीं, इतिहास के आयाम में भी अग्रसर करती हैं- देश को ही नहीं नापती, काल को भी नापती चलती है।'

इस उद्धरण में अज्ञेय काल के दो स्तरों की चर्चा करते हैं- पहला ऐतिहासिक, दूसरा मिथकीय। ऐतिहासिक समय की सीमाएं निश्चित होती हैं जबकि मिथक अपनी प्रकृति में सनातन, अनादि, अनंत होत है। अज्ञेय अपने 'वैज्ञानिक सत्ता, मिखतीय सत्ता और कवि' शीर्षक निबंध में मिथक का महत्व रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि 'इतना तो है कि पौराणिक अवस्थिति की चर्चा में हम अपने को एक ऐसे अतीत के साथ जोड़ रहे होंगे जो हमारी सांस्कृतिक अस्मिता का आधार

है।' अर्थात मिथक एक ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को अपने अतीत के साथ जोड़ सकती है। जिस प्रकार इतिहास बाह्य संसार की घटनाओं का कालक्रमानुसार वस्तुपरक विवरण होता है उसी प्रकार मिथक मनुष्य के शाश्वत अंत:करण अथवा उसकी अस्मिता का रूपात्मक वर्णन होता है। इतिहास में मनुष्य की स्थूल बाह्य क्रियाएं महत्वपूर्ण होती हैं जबकि मिथक में उसकी सूक्ष्म मानसिक संघटनाएं। इस प्रकार इतिहास एवं मिथक में जो अंतर होता है वही अंतर आरंभिक यात्रा वृत्तांत एवं आधुनिक यात्रा संस्मरणों में देखने को मिलता है। आरंभिक यात्रा वृत्तांत एवं आधुनिक यात्रा संस्मरणों में देखने को मिलता है। आरंभिक यात्रा वृत्तांतों में इतिवृत्तात्मकता, कालक्रमिकता तथा तटस्थ दृष्टि निहित है जबकि आधुनिक यात्रा संस्मरण कालातीत है एवं इतिहास की एक रेखीय अवधारणा को तोड़ते हैं। यात्र साहित्य अपने में अनेक गद्य विधाओं को समा लेता है। एक मिश्रित गद्य विधा होने की वजह से यह संस्मरण दैनन्दिनी तथा पत्र-लेखन की आकृति में भी प्रस्तुत होता है। यात्रा-साहित्य में न केवल गद्य विधाएं समाविष्ट होती है वरन पद्य और गद्य की विभाजक रेखाएं भी अस्पष्ट होती है कई बार यात्रा लेखक उत्कृष्ट काव्यात्मक भाषा का प्रयोग भी करता है।

हालांकि आरंभिक यात्रा वृत्तों में भाषा का सर्जनात्मक रूप कम ही देखने को मिलता है परंतु आधुनिक यात्रा संस्मरणों की भाषा सृजनशक्तिकी अद्‌भूत मिसाल है, तथा : 'कहते हैं कि सृष्टि की सर्वोत्तम आकृति चक्र है- क्योंकि इसका आदि-अंत कुछ नहीं है। मैंने देश की भिन्न-भिन्न संकरी-चौड़ी, कच्ची-पक्कीी, ऊबड़-खाबड़ सड़कों पर लुढ़कते-पुढ़कते अनेकों बार सोचा है कि चक्रत्कृति में सौंदर्य के लिए बहुत अधिक नंबर चाहे न बी पाऊ, अपनी आदि-अंतहीन गति-क्षमता का दावा तो कर सकता हूं और यह भी कह सकता हूं कि स्वयं सुंदर न होकर भी मैं संसार के अखिल सौंदर्य की नींव हूं, क्योंकि मैं संस्कृति की नींव हूं। संस्कृति और स□यता के विकास में अग्नि के अवतरण के बाद जो दूसरी पीढ़ी मानव प्राणी चढ़ा, वह मैं हूं; या यूं कह लीजिए कि देवताओं के समुद्र-मंथन से जैसे सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि अग्नि की हुई, उसी प्रकार मानव-मन-रूपी महासागर के मंथन से जो श्रेष्ठ नवनीत प्राप्त हुआ है, वह है चक्राकार की उ्भावना।'

यात्रा साहित्य की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि लेखक स्वयं अपनी कथा यात्रा का नायक होता है। अत: यात्रा न केवल दूसरे को पहचानने की क्रिया है, बल्कि एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें लेखक अपनी अस्मिता का निर्माम कर आत्मान्वेषन की ओर प्रवृत्त होता है। हालांकि 'परशुराम से तूरखम' एक टायर की रामकहानी है जिसके माध्यम से अज्ञेय बाह्य यथार्थ से अपनी भीतरी दुनिया में प्रवेश करते हैं अर्थात यात्रा प्रस्थान की क्रिया न होकर निरंतर वापसी की क्रिया होती है। स्मृति तथा कल्पना व्यक्ति की नितांत निजी अभिव्यक्ति का आधार होती है।

अत: हम कह सकते हैं कि यात्री भौगोलिक स्तर पर एक अनजान जगह की ओर जाता है जबकि मानसिक स्तर पर यात्रा एक ज्ञान की क्रिया न होकर पुन: अन्वेषन की क्रिया होती है। इसमें लेखक न केवल कल्पित स्थान को पहचानने की चेष्टा करता है बल्कि उसके बहाने स्वयं को पहचानने का भी प्रयत्न करता है। अतएव यह कहा जा सकता है कि यात्रा एक आत्म-साक्षात्कार भी होती है। अत: कह सकते हैं कि यह एक प्रकार का कालिक विस्थापन है जिसका तात्पर्य यह है कि यात्रा वृत्तांत का लेखक अ पनी ज्ञात संस्कृति-भूमि से प्रस्थान कर अज्ञात या कल्पित संस्कृति क्षेत्र में प्रवेश करता है। परशुराम से तूरखम में भी लेखक साक्षी के रूप में पाठक के सम्मुख आता है हालांकि यहां वह साक्ष्य टायर के ब्याज से प्रस्तुत करता है। यथा 'मैं जो राम-कहानी कहूंगा, वह भी मेरी राम-कहानी इसलिए है कि वह मेरे चालक की कहानी है। अपने अनुभव को दूसरे के-अपने मालिक के इतिवृत्त के रूप में कहना ही तो मर्यादा-संगत है;.... मैं अपने प्रतीक-पुरुष को ही आधार बनाता हूं।' दृष्टि का यात्रा साहित्य में अत्यंत महत्व है अनेक यात्रा वृत्तांतों के शीर्षक इसके प्रमाण हैं, जैसे पं. जवाहरलाल नेहरू का 'आंखों देखा रूप' और कमलेश्वर का 'आंखों देखा पाकिस्तान'। अज्ञेय के यात्रा संस्मरण में भी अनेक दृश्य बिम्बों की योजना की गयी है। यथा-

'जंगल में बीच-बीच खुला घास-भरा प्रदेश आ जाता, जिसमें महाकाव्य सेमल के धवल-गात पेड़ मानो आगमिष्यत् रक्त प्रसूनों ती सुलगती हुई पूर्वानुभूति से कंटकित हो रहे थे; और कहीं-कहीं किंशुकों के झुरमुट। कुछ ही दिन में इनमें आग खिल जाएगी; पहाड़ियों के पार्श्व को चिपटती हुई, लपलपाती एक के बाद एक रुख को लीलती रुई ऊपर तक फैलजाएगी और बालुका के पीले उत्तरीय में लिपटा हुआ ब्रह्मपुत्र का नीलगात मानो वसंत-श्री के लाल चुंबनों से मुद्रांकित हो उठेगा! फिर धीरे-धीरे नद उमगेगा और उसका उदबुद्ध पौरुष आस-पास के प्रदेश को लील लेना चाहेगा- लील लेगा और अपनी सफलता के खेद से खिन्न और गंदलाा हो उठेगा...।'

ऐसे दृश्य बिंबों की भरमार इस यात्रा संस्मरण को अदभूत् रमणीयता और नाटकीयता से भर देती है। इस तरह के रूपक यात्रा वृत्तांत को बोझिल नहीं होने देते एवं उसको रोचक बनाते हैं। यात्रा साहित्य की तथ्यात्मकता केवल पाठ के स्तर पर ही निर्दिष्ट की जा सकती है भौतिक स्तर पर सत्यापित नहीं की जा सकती। विश्वसनीयता के संबंध में डॉ बापू राव देसाई मानते हं कि इस विधा की अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि यात्रा लेखन में यात्रा के समय, स्थान, दूरी की सही-सही जानकारी होती है उदाहरणत: 'प्रात:काल चलकर 'विलिंगडन ब्रिज' द्वारा हुगली पार करके उत्तर-पाड़ा और वर्धमान (बर्दवान) होते हुए आसनसोल पहुंचे। आसनसोल में एक खुले मैदान के बीच में कैंप था, वहीं एक 'बासे' में रात काटी। सबेरे स्टेशन जाकर नाश्ता किया और चल पड़े। 'आसनसोल से बढ़ी 110 मील।' हालांकि अज्ञेय की रचनाओं में इस प्रकार की जानकारी यदा-कदा मिलती है जबकि राहुल सांकृत्यायन के यात्रा वृत्तांतों में इतिवृत्तात्मकता

स्पष्टतया पायी जाती है। शुरुआती यात्रा वृत्तांतों की इतिवृत्तात्मकता का द्योतक क्रियाओं की प्रधानता है जैसे- बस पकड़ना, चल पड़ना, नौका खेना आदि जबकि यात्रा संस्मरण मूलतः विशेषण प्रधान होते हैं। यथा- 'दोधपुर में रंगों की विविधता उसे विशिष्ट करती है, श्रीनगर में गंधों की विविधता 'सहस्त्रगंधा नगरी' लाहौर में गंदगी की अथवा (इस विषय में कलकत्ते को प्रतियोगी मान ले तो), फैशन की इत्यादि।' यात्रा वृत्तांतो की शैली विवरणात्मक होती है तथा यात्रा संस्मरणों की वर्णनात्मक। अज्ञेय उक्त यात्रा संस्मरण में खुद को पाठक के सामने दूसरी संस्कृति के अनुवादक के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस क्रम में समकालीन जीवन स्थितियों और साहित्यिक प्रवृत्तियों पर टिप्पणी भी करते चलते हैं। कहते हैं 'सुना है कि जब कवि ताजगंज से गधा हांकते निकलते थे कि मदरसे जाकर लड़कों को पढ़ा आवें, तब रास्तें में इतनी जगह लोग उन्हें रोक-रोक कर उनसे दो-चार बंद सुना के जाने का सफल आग्रह करते थे कि नजीर मियां को गोकुलपुरे में अपने मदरसे से पहुंचते-पहुंचते सांझ हो जाती थी, और वह लड़कों को छुट्टी देकर फिर रुकते चलते रात तक घर पहुंच जाते थे। एक वह दिन था, जब कविता का स्वाभाविक उद्रेक राह चलते को खींचता था औक फक्कड़ कवियों की बानी सीधे लोक-हृदय में पैठ जाती थी; एक हमारा दिन है कि ट्रक हांकते धूल उड़ाते चले जा रहे हैं, हर पोखरे में ढील फेंकते हैं और हर झमेले में टांग अड़ाते हैं (क्योंकि 'जीवन की धारा के बीचों-बीच रहना कलाकार का धर्म है') किंतु फिर भी उस लोक हृदय के आस-पास भी नहीं फटकते जो वास्तव में जीवन का मूल स्रोत है! क्योंकि जीवन का स्रोत घटनाओं का स्रोत नहीं है, वह चेतना का स्रोत है। हमारी कविता बानी नहीं रही, लिखतम हो गयी है; हृदय तक नहीं जाती वरन एक मस्तिष्क की शिक्षा-दीक्षा के संस्कारों की नली से होकर कागद पर ढाली जाती है जहां से दूसरा मस्तिष्क अपने संस्कारों कीनली से उसे फिर खींचता है...।'

रस सिद्धांत के आलोक में यात्रा साहित्य की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता हमारे स□मुख प्रकट होती है- अदभुत रस की प्रधानता। प्रथम दृष्टया इस काव्यशास्त्रीय अवधारणा को यात्रा साहित्य पर आरोपित करना कुछ विचित्र जान पड़ता है। परंतु कुछ दशकों से यह प्रवृत्ति पश्चिमी साहित्यालोचन में उभरने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है कि यात्री-लेखक की मनोवैज्ञानिक या मानसिक प्रक्रियाओं तथा लेखक द्वारा रचित छवियों के निर्माण की प्रक्रियाओं को भली-भांति समझने के लिए यात्रा-साहित्य को रसों की आभा में विश्लेषित करना अत्यंत जरूरी है। अज्ञात संस्कृति भूमि में प्रवेश करते हुए अक्सर उस गैर संस्कृति के प्रति वैचित्रय का भाव उत्पन्न होता है यही आश्चर्य भाव अदभुत रस की निष्पत्ति का आधार है।

यात्रा-संस्मरण में गति का महत्व लगभग वैसा ही है जैसा यात्रा में। अज्ञेय ने स्वयं गति की अनिवार्यता को स्वीकार किया है- 'किंतु यायावर ने समझा है कि- देवता भी जहां मंदिर में रुके कि शिला हो गए और प्राण-संचार के लिए पहली शर्त है गति, गति, गति।'

एक अच्छा यात्रा संस्मरण अनायास ही कहावतों, मुहावरों और लोकोक्तियों का संग्रह भी बन जाता है जो यात्राकार अनेक स्थानों से गुजरते हुए संकलित करता चलता है। यथा- 'छुटपन में चीनी कहावतों के एक संग्रह मेंजिस वाक्य ने उसे सबसे अकि प्रभावित किया था और जिसे उसने अपना गुरुमंत्र मानकर डायरी के मुख-पृष्ठ पर लिख लिया था वह था : 'मैं क्यों चाहूं कि मेरी अस्थियां भी मेरे पुरखों की अस्थियों के साथ एक सुरक्षित समाधि-सतूप में दबी रहे?' जहां भी कोई चला जाए, वहीं कोई हरी-भरी पहाड़ी मिल जाएगी...(कहावत)।' इस यात्रा संस्मरण की एक अन्य विशेषता है स्वयं को किसी नाम से संबोधित न कर यायावर कहना और इस यायावर से दूरी स्थापित कर भोक्ता के सच से सर्जक के सच को अलगाना। शीर्षक 'अरे याचावर, रहेगा याद?' देकर अज्ञेय ने यात्रा वृत्तों के लेखक की उत्तम पुरुष प्रधान शैली से खुद को अलग रख भोक्ता कि देश की पराधीनता सबसे अधिक अखरती है तो एक अपने हिमालय के अंग, संसार के सबसे ऊंचे शिखर का नाम 'एवरेस्ट' सुनकर और एक सीमा-प्रदेशों में जाने के परमिट के लिए फिरंगी पॉलिकिल एजेंट के दफ्तर में जाकर। देश की प्रत्येक सीमा तीर्थ होती है। नहीं तो देश पुण्यभूमि कैसे होता है? पर अपने ही तीर्थ तक जाने के लिए परदेशयी सत्ता के अहंमन्य प्रतिनिधि का मुंह जोहना जैसा चुभता है,उसे भुक्तभोगी जानते हैं...।' यहं लेखक स्वयं अपने ब्यौरे का नायक बनने का मोह छोड़ टायर के बहाने स्वयं को प्रस्तावित करता है। इस यात्रावृत्त में भाषा की व्यंजकता अर्थपूर्ण प्रतीकों के माध्यम से भी प्रस्तुत हुई है। 'यायावर ने कुंड में और धारा के नीचे स्नान किया। कुंड का जल बर्ष सा ठंडा है। सोते का जल गर्म।... स्नान से पाप धुल जाते हैं, पाप तो दिखते नहीं, अत: उनके दृश्य प्रतीक के रूप में जिन वस्त्रों से स्नान किया जाता, उन्हें कुंड पर ही छोड़ देने की प्रथा है। इस सरल उपाय से यात्री अपने पाप वहीं छोड़कर चले आ सकते हैं।... मुमुक्षु नहाकर निकल-न-निकले कि मुक्ति-पथ के ये सहयक उसकी धोती-गमछा-लंगोट जो कुछ हो खींच लेते हैं... इसका विरोध संभव नहीं है, यही रीति चली आयी है और सभ्य मुमुक्षुओं के पाप का बोझ इस प्रतीक के द्वारा ढोने का अधिकार सदा से असभ्य उपत्यकावासी मिश्मियों का रहा है। विकसित नागरिक सभ्यता के पापों का बोझ अविकसित वन्य जातियों द्वारा ढोया जाता है। इस सत्य की यह रीति स्वयं कितनी अर्थपूर्ण प्रतीत है, इसकी ओर कदाचित दोनों ही पक्षों का ध्यान कभी नहीं जाता होगा।' 'परशुराम से तूरखम' तक पूर्व से पश्चिमकी ओर प्रस्थान

के क्रम में बरबस ही लोक कथाओं, जन-श्रुतिों, दंत कथाओं, एवं अनेक किंवदंतियों का कोश भी बन जाता है जिसमें पिता आज्ञा से मातृ-वध करने के पश्चात परशुराम की ब्रह्मधारा और कुंड में नहाने की कथा,महाभारत कालीन राजा भीष्म की कथा, कोच राजवंश के प्रतापी राजा नर नारायण से जुड़ी कथाएं, मियां नजीर की कहानी आदि महत्वपूर्ण हैं। कहीं-कहीं भाषा चुटोली, चपल एवं हास्य व्यंग्य प्रधान है।

यायावर की यात्रा के रोचक किस्से, लेखक के अपने निजी अंदाज में पाठक को हंसते-हंसाते यात्रा का साथी बना देते हैं। पाठक भी यायावर के साथ पूरी ईमानदारी से उन सभी जगहों से गुजरता है जहां से टायर गुजरा। हंसी, चुहल और जीवनेच्छा,यात्रा की ही तरह संस्मरण को भी ताजा और जीवन से लवरेज बनाए रखती है। यथा-

1. भीगते-भीगते यायावर को उस जाट की कहानी याद आयी जो गाभिन घोड़ी को हांकता हुआ चला जा रहा था। थक कर सोचने लगा किकहीं एक घोड़ा होता तो क्यों उसे घोड़ी हांकते पैदल चलना पड़ता। राह में ही घोड़ी ब्याह गयी। जाट ने बछेरे को कंधे परलादा और फिर चला, तब लंबी सांस लेकर खुदा की ओर मुखातिब होकर बोला, 'वाह रे सखी-सर्वरा, तेरी उलटी अकल की बलिहारी-मांगा था नीचे, दे दिया ऊपर।'

2. 'नयी दिल्ली... सब की वह भाभी, जो कि गरीब की जोरू नहीं है जिसकी मुसकान की अपेक्षा सबको है, लेकिन जिससे ठिठोली करने की हिम्मत किसी को नहीं होती।'

अज्ञे के अनुसार यायावर पुराविद नहीं होते, न पुरातत्व उनके लिए साध्य होता है। वह उनके लिए दूसरों के संचित अनुभव का ही फल होता है, पर इसका कार्य यह नहीं कि वह महत्व ही है। शायद इसीलिए चाहे तक्षशीला हो या शहरे बहलोल के बौद्ध अवशेष यायावर के लिए बेहद जरूरी पर्यटक स्थल हैं।

यह सच है कि चाहे वह दर्रा खैबर हो या सदिया यात्राकार की स्मृति में हर अच्छा, बुरा, चुनौती भरा रमणीय स्थान अपनी विशेष जगह रखता हैपर एबटाबाद की 'जंगली नरगिस' उनके स्मृति-चित्रों की दुनिया में अपने रंग, रूप, गंध के साथ कुछ इस तरह मौजूद है कि जैसे जादू-यथा-

'एबटाबाद की सबसे स्पष्ट स्मृति है वहां के जंगली नरगिस.. .सारा ढलान इनसे छाया हुआ था और दूर पेड़ों के झरमुट के भीतर क फूल ही फूल दीख रहे थे- और उसके आगे धुंध की दीवार और उनकी असंख्य चकित आंखें नीचे जमीं बर्फ को निहार रही थी, मानो अपलक विस्मय कि यह कठोर भूमि ही इस रूप-श्री की जननी है।'

जहां एक ओर एबटाबाद की नरगिस है (तो दूसरी ओर यात्राकार) उसका रूप रस-रंग, गंध-स्पर्श का इंद्रिय सुख है तो वहीं दूसरी ओर राजनैतिक विप्लव का बीज-वपन काल भी वही है, तभी तो यायावर ने अपनी डायरी में लिखा भी था कि 'मेरी कल्पना देखती है। इन नरगिसों को

हजारों पैर रौंद रहे हैं, बेदर्द और बेरहम पैर और फूलों की डांठो के टूटने की आवाज, वातावरण में नारों के बीच में डूब जाती है... सिनेमा का प्रतीक-चित्र-सा सामना आता है- बर्फ में झूमते नरगिस, रौंदते हुए पैर, केवल पैर...' यहं लेखक आने वाले समय की हलचल का पूर्वानुमान ही नहीं लगाते अपितु उसके बेरहम और भयावह रूप को अपने काल्पनिक संसार में प्रत्यक्ष देख भी लेते हैं। यह यात्रा-संस्मरण इस मायने में विशिष्ट है कि उन्नीस सौ पचास के भूकंप से लुहित नदी और डि-डंग की धाराओं में अनेक परिवर्तन हुए। जिस श्रृंग के कारण ब्रह्मपुत्र में परशुराम कुंड नामक आवर्त बना था वह श्रृंग भी धंस गया है, वह कुंड अब नहीं है। आज यदि कोई यायावर परशुराम कुंड को देखने का अभिलाषी है तो वह इस वर्णन के माध्यम से ही संभव है। पूरब में परशुराम को 'मातृ-घात' के महापातक' से मु**क्ति** दिलाने वाला यह कुंड जहां यायावर की आंखों को शीतलता पहुंचा मन:संताप को कम करता है वहीं तूरखम का गर्बीला उभार उनकी हृतंत्री के तारों को झंकृत करता हुआ चेतना का अविभाज्य अंग बन जाता है। यात्रा में अलग-अलग जगहों सो गुजरते हुए अज्ञेय सिर्फ भांति-भांति के भौगोलिक विस्तार से ही समत्कृत नहीं होते बल्कि भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व, युगों के संस्कार, शता**ब्दि**यों की सांस्कृतिक परंपराओं को संयोजित करते हुए अनेकता में एकता के सूत्रों का अन्वेषण भी करते हैं।

'तूरखम' जो हमारे देश का मर्यादा पर्वत है जिसके नीचे क्षितिज स्पर्शी अनंत सागर है और ऊपर नभ चुंभी हिमालय का अंचल। वह सदा से आलोक की खोज में लवलीन रहा है, और इसी क्रम में चहुंओर से आती प्रज्ञा किरणों को उसने आभार के साथ स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति जड़ धातु-पिंड नहीं है, वह तो एक ऐसी परंपरा है जिसमें मानव का समस्त अर्जित ज्ञान कड़ी-कड़ी जुड़ता रहा है। बनना और मिटना, पाना और खोना, उठना और गिरना, मनुष्ट के जीवन के साथ उसी तरह तुड़े हैं जैसे हवा और पानी। यदि पतझड़ न हो तो वासंतिक नवरात्र का कैसा महा**त्म्य**। यदि नीरव निशा का घटाटोप अंधकार न हो तो कौन रोशनी की आस में सूरज को अर्ध्य देगा। जो बढ़ता है, पत्ते झारता ही है, केंचुल छोड़ता ही है, चोला बदलता ही है।

दैनंदिन जीवन के राग-विराग, ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट और बेहद दिनचर्या के बीच विस्मृ-ति के घटाटोप अंधकार को चीतरे 'अज्ञेय' के अपराजेय जीवनेच्छा का प्रमाण स्विनबर्न के पृथ्वी स्त्रोत हैर्था के पद सिर्फ यायावर के मन में ही नहीं गूंजते, पाठक के एकांत में भी चुपके से प्रवेश कर जाते हैं।

'विश्वास एक रूढ़ि है,
राज-मुकुट तामस है,
ईश्वर एक यही बात है-
पूरे सामर्थ्य के साथ मानव होना।
प्राणों के संपूर्ण बल के साथ सीधा

विकसित होना, प्रकाश की तरह जीना।
मैं तुझ में हूं, मेरी रक्षा के लिए
यह मेरा स्वर तेरे भीतर बोलता है:
तू दे, जैसे कि मैंने जुथे दिया हो
अपना जीवन-रस और अपने प्राण,
अपने कर्म के हरित पत्र, अपने ज्ञान के

शुभ्र सुमन और अपनी मुक्ति के लाल फल।'

कथा यही यात्रांत है? नहीं यायावरतो वैसे भी अजातशत्रु होता है- निर्भय, स्वाधीन और राहों का अन्वेषी।

5.2.2 लेखन-शैली

आधुनिक हिंदी साहित्य की नयी उपलब्धियों में अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों का विशिष्ट स्थान है। अकाल्पनिक गद्य-वृत्त अर्थात यात्रा-संस्मरण, डायरी, जीवनी, आत्मकथा, रेखाचित्र आदि। इन गद्य-वृत्तों क उपजीव्य ज्यादातर वास्तविक घटनाएं होती है और इसी वजह से कल्पना का योग इनमें काफी कम होता है। छायावादी युग के पूर्व तक ऐसे गद्य वृत्तांत सूचनापरक एवं विवरणात्मक ही होते थे किंतु स्वातंत्रयोत्तर भारतीय परिदृश्य में इन वृत्तों का सर्जनात्मक रूपांतरण आरंभ हु और भाषिक सर्जनात्मकता के सहारे ये गद्य-वृत्त उपयोगी सूचनात्मक साहित्य की परिधि से बाहर निकलकर स्वतंत्र कला रूपों के वर्ग में प्रतिष्ठित हो गए, और फिर धीरे-धीरे इन अकाल्पनिक गद्य वृत्तों की एक श्रृंखला बनती चली गई। अज्ञेय ने इन अकाल्पनिक गद्य वृत्तों के वर्ग में से यात्र-संस्मरण को चुना और विकसित किया जिसमें संस्मरण, डायरी, रेखाचित्र और यात्रा-वर्णन के तत्वों का अनोखा मिश्रण है। यात्रा-संस्मरणों में वातावरण की एकरसता विधान की दृष्टि से सबसे कम संभव है, इसिलिए वह आधुनिक लेखकों की रुचि और जरूरतों के सर्वाधिक निकट है।

अज्ञेय के दो यात्रा संस्मरण- 'अरे यायावर, रहेका याद!' (1953) और 'एक बूंद सहसा उछली' (1960) जिनमें से पहले की पृष्ठभूमि स्वदेश है और दूसरे की विदेश। 'अरे यायावर, रहेगा याद!' में सर्जनात्मक चमक है, वर्णनात्मकता के बावजूद इसे पढ़ने पर लेखक का समृद्ध और संवेदनशील व्यक्तित्व पाठक के स□मुख उपस्थित हो जाता है। जीवन से प्रेम यों तो अज्ञेय के समूचे कृतित्व में ही व्यक्त हुआ है, पर यात्रा वृत्तों में वह अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है। क्योंकि जीवन से प्रेम के कारण ही अज्ञेय यायावर बने। यहजीवन-प्रेम उनके भीतरके यायावर एवं रचनाकार दोनों को अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, फिफर लक्ष्य चाहे व्यक्ति हो, दृश्य हो या फिर कोई विचारधारा। 'अरे यायावर, रहेगा याद!' में प्रकृति के प्रति गहरी आसक्ति

एवं उत्सवधर्मिता का भाव है, और है उसकी जादुई सम्मोहन-शक्ति, यहां रचनाकार को महसूस हे की यायावर के मन में 'जो जंगर की पुकार गूंजती है, उसे सर्किट हाउस के कमरे की दीवार नहीं रोक सकती...'। और इस तरह जंगल की यह पुकार उनके यात्रा वृत्तांत में बीच-बीच में कौंधती भी है और गूंजती भी है। उनके यात्रा-संस्मरण एक संवेदनशील एवं समृद्ध मन की ही प्रतिक्रिया है। लेखक की भाषा संबंधी सजगता उनके यत्रा-संस्मरणों में सर्वत्र सहज रूप मे देखी जा सकती है। भाषा शालीन, मर्यादित और अनौपचारिक के बीच संतुलन कायम रखकर चलती है। भाषिक स्तर पर संघटित यात्रा-प्रसंग में लेखक के प्रबुद्ध व्यक्तित्व की छटा सम्मोहित करती है। दोनों ही यात्रा वृत्तों में मानविकी और प्राकृतिक शास्त्रों में दीक्षित, एक असाधारण रुचि संपन्न और अधीत व्यक्तित्व का जीवन स्पर्श मिलता है, किंतु पांडित्य प्रदर्शन कहीं नहीं मिलता। लेखक के जीवन दर्शन से संबद्ध स्थितियों का उल्लेख यत्र-तत्र हुआ है। यों अपनी ललित शैली, सांस्कृतिक वातावरण और विनोदप्रिय मानसिकता के साथ ये यात्रा-संस्मरण अज्ञेय के 'आस्तिक मन' मन की 'हां' के साथ जीवन को देखने-समझने की कोशिशका रचनात्मक प्रतिफलन है।

5.3 रिपोर्ताज : ऋणजल-धनजल - फणीश्वरनाथ रेणु

साहित्य जीवन सत्य से असंपृक्त होकर एकांगी और निष्प्राण हो जाता है। कल्पना के पंखों पर सवार होकर अंतरिक्ष की सैर करने पर भी साहित्य मानवीय संभावनाओं की तर्क प्रणाली से पृथक नहीं हो सकता। साहित्यकार की समस्त कल्पना शक्ति, कला कौशल एवं रचना कौशल जीवन सत्य को ही उद्घाटित करने का प्रयत्न करते हैं। विचारधारा जीवन का पर्याय नहीं हती लेखक मूलत: जीवन से ही जुड़ी होती है एवं उसी में लक्षित होने वाली विसंगतिया, विडम्बनाएं, अंतर्विरोध उसकी रचनाओं का विषय बनते हैं। जीवन की कसौटी पर ही विचारधाराओं का खरापन भी परखा और आंका जाती हैं। कहां तक उनमें जीवन की सच्चाई की झलक देखने को मिलती है, कहां तक मानव हृदय का स्पंदन, उसकी छटपटाहट, उसके हर्ष-विषाद, उसकी आकांक्षाएं व्यक्त हो पाती हैं, उसी में रचना की सार्थकता निहित होती है। ऐसा ही व्यक्तित्व हिंदी कथाकारों में रेणु का है। 'रेणु' प्रेमचंद के बाद ग्रामीण जीवन के साथ आत्मीयता स्थापित करने वाले प्रमुख साहित्यकार हैं।

हिंदी कथा साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाकार फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म औराही हिंगना, जिला- पूर्णिया (बिहार) में 4 मई, 1921 को हुआ। ने एक साधारण मध्यवर्गीय किसान परिवार के संस्कारों में पले बढ़े। उन्होंने फार्बिसगंज, विराटनगर, नेपाल तथा काशी हिंदु विश्वविद्यालय,वाराणसी में शिक्षा प्राप्त की। रेणु के बचपन का नाम फणीश्वरनाथ मण्डल था। यही नाम उनके हाथ पर गुदा हुआ था। 'रेणु' उपनाम को कुछलोग उनके काव्यात्मक रुझान का प्रभाव

मानते हैं, परंतु इसकी असली कथा वे स्वयं इस प्रकार बताते हैं- 'जब मैं पैदा हुआ था तो घर वालों पर कुछ कर्ज यानि ऋण हो गया। दादी बोली- अरे, यह रिणुआ है। बाद में उसी रिणुआ से रिणु और फिर रेणु हो गया। बड़ा हुआ तो पिता जी के एक मित्र ने कहा, इसे रेणु कहो, रेणु, और मैं रेणु हो गया। रेणु जी के पिता का नाम शिलानाथ मण्डल एवं माताजी का नाम पानो देवी था। उनके तीन भाई तथा पांच बहने थीं। रेणु सं बड़ी केवल एक बहन थी। पिता जी की मृत्यु के बाद परिवारका पूरा दायित्व रेणु पर आ गया। उनके जीवन को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो उसमें एक विशिष्ट रूप उभरता हुआ दिखायी देता है वह है- द्वंद्वात्मक संघर्ष और नैसर्गिक प्रवाह, परंतु कभी-कभी उसमें उद्दाम तरंगे भी अवसरानुकूल प्रकट होने लगती हैं। एक स्वतंत्रता सेनानी, एक राजनीतिक व्यक्तित्व और रचनाकार में जहां सतही तौर पर एक द्वंद्व परिलक्षित होत है वहीं गहरे पैठ कर देखने पर तीनों एक चरणबद्ध प्रक्रिया के अंग ही अधिक जानपड़ते हैं। 'रेणु' एक संवेदनशील, कर्मठ और सुलझे हुए व्यक्तित्व के स्वामी थे। राजनीति में उनकी सक्रिय भागीदारी थी। वे दमन और शोषण के विरुद्ध आजीवन संघर्षरत रहे। उन्होंने समसामयिक परिस्थितियों में स्वतंत्तरा सेनानी की भूमिका का निर्वाह किया। इसी दौर में 'रेणु' का रचनाकार, जो शोषण के विरुद्ध आवाज उठा रहा था, जाग उठा और अपनी संवेदना को शोषित से जोड़कर जब रचनात्मक स्तर पर प्रकट किया तो सन् 1945 से 1948 की परिस्थितियां मैला-आंचल (1954) उपन्यास के रूप में कलमबद्ध हो गयी।

सन् 1942 में 'रेणु' ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम में एक प्रमुख सेनानी की भूमिका निभाई और तीन वर्ष तक नजरबंद रहे। जेल से चूटने पर 'किसान आंदोलन' का नेतृत्व किया। सन् 1950 में उन्होंने नेपाल में राणाशाही और जनता के शोषण के खिलाफ सशस्त्र संघर्ष और राजनीति में जीवंत योगदान दिया। उन्होंने नेपाल के मजदूरों को, जो सामंती शिकंजे में जकड़े हुए थे, एकजुट होकर, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। इस संघर्षमय जीवन की वजह से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और वे एक वर्ष तक पटना अस्पतालमे रहे। 1952-53 की दीर्घकालीन बीमारी ने उनके जीवन में बदलाव लाकर उनका जुकाव राजनीति से साहित्य-सर्जन की ओर कर दिया। वे देहात की पगडंडी पर चलते हुए पात्र, कथानक और वातावरण ढूंढने में सफल रहे। आम मनुष्य का चेहरा, उसका भावनाओं को रेणु ने पूरी सजीवता और रचना कौशल से अभिव्यक्त किया। राजनीतिक आंदोलन से पुनः गहरा जुड़ाव, पुलिस और प्रशासन का दमन सहते हुए जेल यात्रा और समानांतर साहित्य-सृजन रेणु जी के जीवन के आकस्मिक अंत तक जारी रहा।उनके स्वर्गवास से भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल नक्षत्र डूब गया । सत्ता के दमनचक्र के विरोध में उन्होंने पद्मश्री की उपाधि का भी त्याग किया।

कृतित्व

रेणु ने कथा साहित्य (उपन्यास एवं कहानियां) के अतिरिक्त अन्य विधाओं में लिखा, यथा- संस्मरण, रेखाचित्र और रिपोर्ताज आदि।

उपन्यास- मैला-आंचल 1944 , परती परिकथा 1957, दीर्घतपा 1963, (परिवर्धित संस्करण कलंक मुक्ति के नाम से 1972 में प्रकाशित), जुलूस 1965, कितने चौराहे 1966 एवं पल्टूबाबू रोड़ (मरणोपरांत 1979)।

कहानी- ठूमरी 1957, आदिमरात्रि की महक 1967, तीसरी कसम, अग्निखोर 1974।

रिपोर्ताज- पटना की बाढ़, नेपानीक्रांति-कथा, ऋणजल-धलजल।

'तीसरी कसम', 'लाल पान की बेगम', रसपिरिया, पंचलाइट, विकट संकट तथा तीन बिंदियां आदि कहानियां आंचलिक साहित्य के श्रेष्ठ रचनाओं में शुभार की जाती हैं। रेणु 'रचनावली' तीन में उनका एक अधूरा उपन्यास 'रामरतनराय' नाम से प्रकाशित हुआ है। 'ठूमरी' एवं 'मैला आंचल' में इलाके की बोली मुहावरे, आचार-विचार एवं ग्रामीण जीवन संपूर्णता में अभिव्यक्त किये गए हैं। अद्‌भुत सौंदर्य से ओत-प्रोत देहाती जीवन के प्रति उनकी सबल आस्था, उनकी रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। फणीश्वरनाथ रेणु 'आदिमरात्रि की महक' तथा 'तीसरी कसम' आदि रचनाओं के साथ कथा-साहित्य में नये प्रतिमान स्थापित करने में सफल हुए। अपनी रचनाओं में वे मानवीय समस्याओं के प्रति सजग थे। फणीश्वरनाथ रेणु पीड़ित एवं हारे मनुष्य के प्रति सहानुभूति ही नहीं बरतते थे, बल्कि उसे आगे बढ़ाने की प्रेरणा भी देते थे। रेणु की कृतियों का प्रिय क्षेत्र कोसी नदी के आर-पार का देहात है। उस नदी की बाढ़ के समय उनकी करुणा उभरती है और बाढ़ के उतर जाने पर उनकी भावना जीवन की ओर मुड़ जाती है।

फणीश्वरनाथ रेणु ने एक कथाकार होने के साथ-साथ गद्य साहित्य की प्राय: सभी विधाओं को समृद्ध किया है। 'रेणु' जन्मजात विद्रोही हं। वे कभी और कहीन दायरे में नहीं बंधे। उन्होंने उपन्यास ही नहीं, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, दृश्यालेख सभी के प्रचलित ढांचे को तोड़ा है। नये प्रयोग किये हैं। हां, उन्होंने यह ध्यान अवश्य रखा है कि प्रयोग खालिस प्रयोग बनकर न रह जाय। उन्होंने रचना में जीवन के स्पंदन को सुरक्षित करते हुए उसके ढांचे को नया आयाम देने की कोशिश की है। उनकी लेखकीय ईमानदारी के प्रमाण मैला-आंचल में स्पष्ट मिलते हैं- 'इसमें फूलभी है, शूल भी है, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी, मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।' यह ईमानदार सृजनधर्मिता ही वह तत्व है, जो 'रेणु' के सहित्य को मूल्यवान और स्पृहणीय बनाता है।

5.3.1 ऋणजल-धनजल

रिपोर्ताज फ्रांसीसी भाषा का शब्द है, जिसका संबंध अंग्रेजी शब्द रिपोर्ट से है। किसी घटना के यथा तथ्य वर्णन को 'रिपोर्ट' कहते हैं। रिर्पो सामान्यत: समाचार पत्रों के लिए लिखी जाती है और

उसमें साहित्यिकता का नितांत अभाव होता है। रिपोटआआ का कलात्मक एवं साहित्यिक रूप ही रिपोर्ताज कहलाता है। वस्तुगत तथ्य को स्मृति के आधार पर रेखाचित्र की शैली में प्रभावशाली ढंग से अंकित करने में ही रिपोर्ताज की सफलता है। निरोर्ताज आंखों देखी घटनाओं पर ही लिखा जा सकता है कल्पना के आधार पर नहीं लेकिन तथ्यों के वर्णन से रिपोर्टाज नहीं बना करता रिपोर्ट भले बन जाए क्योंकि घटना प्रधान होने के साथ ही यह कथा तत्व से युक्त होता है। निपोर्ताज लेखक पत्रकार भी होता है और कलाकार भी एवं वह जनसाधारण के जीवन की प्रामाणिक जानकारी भी रखता है। लोगों का जीवन, उनके तीज-त्योहार, मेले-ठेले, बाढ़-अकाल, युद्ध और महामारियों को वह केवल अखबरी रिपोर्टर की तरह देखता ही नहीं अपितु रचनाकार की हैसियत से जन-जीवन का प्रभावोत्पादक ब्यौरा भी प्रस्तुत करता है। यह मिश्रित साहित्य में बहुत प्रचलित हुई। हिंदी में रिपोर्ताज साहित्य वस्तुत: विदेशी साहित्य के प्रभाव से आया परंतु आज भी इस गद्य विधा की शैली पूर्णत: मंजकर विकसित नहीं हो सकी। हिंदी में विभिन्न जन आंदोलनों पर, बंगाल के अकाल पर या बाढ़ पर कुछ रिपोर्ताज लिखे अवश्य गए हैं पर आज भी हिंदी में रिपोर्ताज को एक सुनिश्चित साहित्य रूप की प्रतिष्ठा नहीं मिल सकी है। इस विधा को समृद्ध करने में प्रकाश चंद्रगुप्त, प्रभाकर माचवे, रांगेय राघव, अमृत राय, फणीश्वरनाथ रेणु आदिने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् 1966 का भयानक सूखा जब अकाल के काले साये ने पूरे दक्षिण बिहार को लील लिया था और शुष्क बंध्या धरती पर चारों ओर कंकाल ही कंकाल नजर आते थे... और सन् 1975 की जल प्रलय जब पटना की सड़कों पर वेगवती बन्या उमड़ पड़ी थी और लाखों लोग बेघर हो जीने के लिए संघर्ष कर रहे थे। इन दोनों प्राकृतिक आपदाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज है ऋणदल-धनजल। अपने समक्ष और अपने चहुं ओर बेबस मनुष्यों की भीड़ और यंत्रणा का त्रासद हाहाकार देखकर रेणु जैसे कथाकार का व्यथित हो उठना स्वाभाविक ही था। रेणु प्राकृतिक प्रकोप की इन दो अभूतपूर्व घटनाओं के प्रत्यक्ष द्रष्टा तो थे ही, बाढ़ के दौरान कई दिनों तक अपने मकान के दुत्तल्ले पर फंसे रहने के कारण भुक्तभोगी भी। मानव यातना के चरम साक्षात्कार के क्षणों को शब्दचित्रों के आकार में ढालने के क्रम में उन्होंने संस्मरणातामक रिपोर्ताज लिखे। जिनमें उनके चारों ओर बिखरे लोग और उनका सत्य अक्षय करुणा और संस्पर्श संवेदना को पाकर सजीव हो उठा है। इस रिपोर्ताज में व्यापक मानवीय त्रासदी की वह अकथ-कथा वर्णित है जो शब्द-शिल्पी रेणु की विलक्षण मर्मस्पर्शी दृष्टि से सहज ही रेखाचित्रों के रूप में आश्चर्यजनक रूप से जीवंत हो उठी है उनके लिए लोग हीसत्य थे- वहां तक सत्य जहां तक वह उन्हें जानते थे। उनकी रचना (ऋणजल-धनजल, बाढ़ 1975, सूखा : 1966 बिहार) ऋणजल-धनजल दो खंडों में विभाजित रिपोर्ताज संग्रह है जिनमें पहले खंड के अंतर्गत कुत्ते की आवाज, जो बोले सो निहाल,

पक्षीकी लाश, कलाकारों की रिलीफ पार्टी, एवं मानुष बने रहो नामक रिपोर्ताज हैं। यहं कुत्ते की वाज शीर्षक रिपोताज का विश्लेषण अभीष्ट है। रेणु ने परती क्षेत्र में जन्म लिया और वहां के ज्यादातर लोगों की तरह उन्हें भी तैरना नहीं आता था। परंतु बालचर, स्वयं सेवक राजनीतिक कार्यकर्ता अथवा रिलीफ वर्कर की हैसियत से उन्होंने अनेक बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों में का किया था। जय गंगा (1947), डायन कोसी (1947), हड्डियों का पुल (1948) आदि छुटपुट रिपोर्ताजों के अलावा उन्होंने अपने कई उपन्यासों में बाढ़ की भयंकर विनाश लीलाओं के चित्र अंकित किये हैं। पर गांव में रहते हुए बाढ़ से घिरने, बहने औक भोगने का अनुभव उन्हें कभी नही हुआ। वह पहली बार हुआ 1967 में जब लगातार अठारह घंटे का बारिश की वजह से पुनपुन का पानी पटना शहर के अनेक निचले हिस्सों में घुस गया। रेणु ने बाढ़ को शहरी दमी की हैसियत से भोगा। बाढ़ से घिरने के प्रथम अनुभव को रेणु इन शब्दों में व्यक्त करते हैं- 'बाढ़ को मैंने भोगा है, शहरी आदमी की हैसियत से। इसलिए इस बार जब बाढ़ का पानी प्रवेश करने लगा; पटना का पश्चिमी इलाका छाती-भर पानी में डूब गया, तो हम घर में ईंधन, आलू, मोमबत्ती, दियासलाई, सिगरेट, पीने का पानी और कांपोज की गोलियां जमाकर बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे। सुबह सुना, राजभवन और मुख्यमंत्री निवास प्लावित हो गया है। दोपहर में सूचना मिली, गोलघर जल से घिर गया है। (यों सूचना बंगला में इस वाक्य से मिली थी- 'जानो! गोलघर डूबै गेछे!') और पांच बजे जब कॉफी हाउस जाने के लिए (तथा शहर का हाल मालूम करने) निकला तो रिक्शेवाले ने हंसकर कहा- 'अव कहां जाइएगा? कॉफी हाउस में तो 'अबले' पानी आ गया होगा।' 'चलो, पानी कैसे घुंस गया है, वही देखना है।' कहकर हम रिक्शा पर बैठ गए।... 'आचार्य जी, आगे जाने की जरूरत नहीं। वह देखिये- आ रहा है... मृत्यु का तरल दूत!'

आतंक के मारे दोनों हाथ बरबस जुड़ गए और सभय प्रणाम- निवेदन में मेरे मुंह से कुछ अस्फुट शब्द निकले (हां, मैं बहुत कायर और डरपोक हूं!)।

रिक्शावाला बहादुर है कहता है- 'चलिए न-थोड़ा और आगे!'

यह रेणु की ईमानदार आत्म स्वीकृति है जो उन्हें पहली बार बाढ़ में घिरने पर हुई। दूसरी बार इस विभीषिका से उनका सामना 1975 में हुआ और इस बार यह सिर्फ बाढ़ ही नहींथी लगभग जल-प्रलय थी। हर किसी की जुबान पर एक ही पंक्ति थी 'काहो! पनिया आ रहलै है?'

जवाबमें एक कुत्ते ने रोना शुरू किया। फिर दूसरे ने सुर में सुर मिलाया। फिर तीसरे ने। करुण आर्तनाद की भयोत्पादक प्रतिध्वनियां सुनकर सारी काया सिहर उठी, किंतु एक साथ करीब एक दर्जन मानवकंठों से गालियों के साथ प्रतिवाद के शब्द निकले- 'मार स्साले को। अरे

चुप...चौप! (प्रतिध्वनि : चौप! चौप! चौप!!) कुत्ते चुप हो गए। वे अपने सिक्स्थ सेंस से भांप चुके थे...।'

कहते हैं कि कुत्ते यूं ही नहीं रोते 'तार सप्तक' में उनका रोना निश्चित ही खतरे की घंटी है। फिर चाहे वह कैसी भी प्राकृतिक आपदा हो। कुत्तों के सामूहिक रूदन के साथ ही जनसंपर्क वालों का स्वर भी गूंज जा रहा था। जिनके ऐलान में खतरा, होशियार और आशंका जैसे शब्द बार-बार दोहराये जा रहे थे। चाहे 1947 की मनिहारी (तब पुर्णिया अब कटिहार जिला) की बाढ़ हो जिसमें रेणु जी बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों पर 'पकाही घाव' की दवा, दियासलाई की डिबिया, किरोसिन का तेल और खाने-पीने की चीजों के साथ लोगों को राहत पहुंचाने गए ते य फिर 1949 की महानंदा की बाढ़ जिसमें वे राहज बांटने के लिए डॉ साहब के साथ गए थे। खबर मिली थी कि मुसहरों की बस्ती में लोग कई दिनों से मछली और चूहों को झुलसा कर खा रहे थे। पर मुसहर टोले के पास पहुंचने पर रेणु को ढोलक और मंजीरे की आवाज सुनाई पड़ी। एक ऊंची जगह पर 'मचान' बनाकर स्टेज बनाया गया था जिस पर 'बलवाही' नाच रहा था। लाल साड़ी पहनकर काला कलूटा 'नटुआ' 'घानी' बन दुलहिन का हाव-भाव दिखला रहा था और ढोलक पर द्रुत ताल बज रही थी- 'धानिड़गिड़, धागिड़गिड़चकैकै चकधुम चकैके चकधुम-चदधुम-चकधुम।' कीचड़ भर पानी में लथपथ भूखे-प्यासे नर-नारिओं के झुंड और उनकी मुक्त खिलखिलाहट, ताज्जुब होता है, भारक के इन भूखे-नंगे असंख्य लोगों की इस जीवनी शक्ति पर। जिसे जल प्रलय भी मद्धम नहीं कर पायी आखिर किन पंचतत्वों से बने है ये लोग। (हमारे मध्यवर्गीय आलोक वर्ग के सम्मानित सदस्य तो अपने घर में तेज झोंके के साथ आयी बारिश से ही बेसाख्ता परेशान होकर छींकने-खांसने और हाहाकार करने लगते हैं) रेणु के लेखक का सरोकार जिंदगी जिंदाबाद के नारे लगाते, यही लोग हैं जो गरीबी और जहालत में जीते हुए भी पराजित नहीं होते। बाढ़ के भयावह दृश्यों से खुद को विलगाते हुए रेणु बार-बार आंखें मूंद कर सफेद भेड़ों का झुंड देखने की चेष्टाकरते हैं... उजले सफेद भेड़। पर पता नहीं कैसे ये उजले भेड़ काले हो जाते हैं। या फिर भूरे या गेंहुएं, सारी रात अशांति में बिताने के बाद सबेरे मुंह में झाग (फेन) लिए मोती डोरी की शक्ल में चारों ओर शौर, कोलाहल, कलरव और चीख-पुकार के बीच पानी तेजी से आकर उनके चारों ओर नाचने लगता है। लहरों का नर्तन 1967 में एक सप्ताह तक पुनपुन का पानी झेल चुके ये मकानपता नहीं इस चक्राकार जल प्रलय की तेज धारा का सामना कर पाएंगे या नहीं। बस चारों ओर लाचार कुत्तों का सामूहिक रूदन, बहुत हुए सूअर के बच्चों की चिचिआहट, कलरव, कोहराम। इस भयावह दृश्य क्के साक्षी रेणु आने वाले कल की आशंका में थर-थर कांपने लगे और ठाकुर रामकृष्ण के पास जाकर शहर को बचाने की प्रार्थना

करने लगे। यथा- 'अरे दुर साला। कांददिस केन? रोता क्यों है? बाहर देख साले! तुम लोग थोड़ी सी मस्ती में जब चाहो तब राह-चलते कमर दुलिए-दुलिए (कमर लचकाकर, कूल्हे मटककर) टवीस्ट नाच सकते हो। रंबा-संबा-हीरा-टीरा और उलंग नृत्य कर सकते हो और वृहत सर्वग्रासी महामत्ता रहस्यमयी प्रकृति कभी नहीं नाचेगी?... ए-बार नाच देख! भयंकरी नाच रही है- ता-ता थेई-थेई, ता-ता थेई-थेई। तीव्रा तीव्रवेगा, शिवनर्तकी गीतप्रिया वाद्यरता प्रेतनृत्यपरायणा नाच रही है। जा, तू भी नाच!'

अगरबत्ती जलाकर, शंख फूंकता हूं- नाचो मां! ...उलंगिनी नाचे रण रंगे, आमरा नृत्य करि संगे। ताता थेई-थेई। ता-ता थेई-थेई... मदमत्ता मातंगिनी उलंगिनी जी भरकर नाचों!

बाहर कलरव-कोलाहल बढ़ता ही जाता है, मोटर, ट्रक टैक्टर, स्कूटर, पानी की धारा को चीरती, गरजती-गुर्राती, गुजरतची हैं...सुबह सात बजे ही धूप इतनी तीखी हो गयी? सांस लेने में कठिनाई हो रही है। संभवत: ऐसी घड़ी में वातावरण में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है। उमस, पसीना, कंपल, धड़कन? तो, क्या...तो क्या?

अब, तुमुल तरंगिनी के तरल नृत्य और वाद्यकी ध्वनियों को शब्दों में बांधना असंभव है! अब... अब... सिर्फ हिल्लोल-कल्लोल-कलकल, कुलकुल-छहर-छहर-शहर-शहर झर झरन्अर, र-र-र है-ए-ए धिग्रा-घिंग-धातिन-धा तिन धा-आ आहै, मैया-गे-झांय-झांइया-झप-झप झांय झिझिना-झिझिना कलल कुलल-कुल कुल-बॉ-ऑ-य-बां-ऑ-म-भौ-ऊं-ऊं-ऊं... चेंई-चेंई छचना-छछना-हा-हा ततथा-ततथा-कलकल-कुलकुल...!!

उपर्युक्त पंक्तियां कविता नहीं हैं ना भाषिक सौंदर्य का उदाहरण ही हैं यह जल-प्रलय का वह विनाशकारी नाद है जो प्रकृति के रौद्र रूप और उसकी सत्ता के सम्मुख मनुष्य को विनीत बना अपने विकास की प्रकृति संरचना एवं स्वरूप पर सोचने को विवश भी करता है प्रकृति के इस विनाशकारी तांडब की वर्तमान जलप्रलय इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। हमारे विवेचन का सरोकार 'भूमिदर्शन की भूमिका' भाग-एक (1966) में बिहार में पड़े सूखे से ही। इस रिपोर्ताज में रेणु ने बुद्धिजीवी वर्ग की खोखली सहानुभूति के दंभ को बेबाकी से स्वीकार किया है। किस तरह सूखा और बाढ़, आज की अमानवीय जीवन स्थितियों में पत्रकार और लेखकों के लिए सिर्फ लेखन के 'विषय' होकर रह गए हैं। जिसको वें अंधों के हाथी की तरह ऊपरसे टटोलकर शब्द क्रीड़ा जिह्वा विलास में रत रहते हैं। इसका माखौल वे स्वयं खुद पर हंसते हुए उड़ाते हैं। आज के संबंध-विहीन जड़ होते समाज में 'सूखा' महज एक ऐसी खबर है, जिसको लोग पढ़ कर भूल जाते हैं। परउनके अंतर्जगत परकहीं कोई र्क नहीं पड़ता। रेणु लिखते हैं- 'पिछले कई वर्षो से सैकड़ों शब्द, नाम, देश समस्याएं और समाचार मेरे लिए बेमानी हो रहे हैं, होते जा रहे हैं, उनमें

डेमोक्रेसी, चाइना, चुनाव, रेल-दुर्घटना, खाद्यान्न, भ्रष्टाचार, जनता, सत्यमेव जयते, कर्फ्यू, फायरिंग, बाढ़-फल्ड, दहाड़, सूखा-जरी-सुखाड़ जैसी नित्य के समाचारों में इस्तेमाल होने वाले शब्द भी है जिनके बिना आजकल किसी का काम नहीं चल सकता।... इसलिए, 'हथिया-जनच्छत्तर' नहीं 'फरा' और भयानक सूखे की आशंकाओं और संभावनाओं-भरी खबरें प्रकाशित होने लगीं तो 'फल्ड-बाढ़-दहाड़' की तरह 'ड्राउट' सूखा-सुखाड़-भूखमरी भी मेरे लिए धीरे-धीरे बेमतलब हो गए।

इसी कारण कलकत्ते के एक प्रसिद्ध बंगला (अंग्रेजी) दैनिक का विशेष संवाददाता जिसको विशेष रूप से 'ड्राउट' देखने के लिए भेजा गया था- मेरी बातें सुनकर हतप्रभ हो गया (हूं! ड्राउट देखने आये हैं मानो उत्तर सोनपुर का मेला देखने आये हैं।)

हैरत होती है कि 'सूखा', 'पिकनिक' बन गया है और जैसे लोग 'बहरी-अलंग' में गोंठ के लिए जाते हैं कुछ-कुछ उसी तरह सूखा पीड़ित क्षेत्र का भी हवाई दौरा कुछ विशिष्ट लोग करते हैं।

वाह रे मनुष! कितना तेल लगाकर नहाता है। ऐसे विशेष पत्रकारों से मिलने के बाद रेणु को अपने लेखक पर दया आती है। ऐसा लेखक जो सांस्कृतिक रिक्तता के दौर में कुंठित और पतित हो गया है। आईने में अपनी काया देखकर वह स्वयं से पूछता हैं- 'तुमने कभी कोसी-कवलित जनों, अकाल पीड़ितों और शरणार्थियों के दु:ख-दर्द को भोगकर जीती-जागती छवियां आंकी थी? क्या हो गया तुझे जो इस तरह 'बोटल प्रसाद' हो गया तू?'

इस सवाल के जवाब में मुझसे सवाल किया जाता है- 'कौन कहता हैसूखा पड़ा है? सरकार? सोशलिस्ट (प्रजा-संयुक्त)? कम्युनिस्ट? कांग्रेसी। कौन बोलता है। कोई मिनिस्टर? कोई जनता का सेवक? ऑल फ्रॉड।' किंतु,दूसरे ही दिन लेखक जी यानी 'बोटल प्रसाद' ने देखा कि सूखे के नाम पर राजधानी के 'बार' और सब्जी बाजार में सुरा से लेकर बैंगन तक की कीमतें अचानक बढ़ गयी है, तो उसका माथा ठनका, तब वह पटना की सड़कों पर 'ड्राउट' देखने निकला।' देश की राजधानी दिल्ली अर्थात केंद्र से रोज ही कोई-न-कोई अंन्दाता उड़कर आता है भयानक और भीषण स्थिति है, बयान दे डालता है, पर न बयान देने से पहले उसकी आत्मा उसे कचोटती है और न बयान देने के बाद उसके भीतर कुछ पिघलता है। सूखा सिर्फ अखबार की मोटी सुर्खी बनकर रह जाता है जिसका कोई प्रभाव शहरों परनहीं पड़ता। रेणु के शब्दों में, 'राजधानी में, शहरों में, दीपावलियां सजती हैं। पटाखे फूटते हैं, फुलझड़ियां छूटती हैं।... उधर, गया के गांव में, मुंगरे के दक्षिणी हिस्से में, पलामू और हजारीबाग की पहाड़ियों और जंगलों की धरती की छातियां दरकती जाती हैं, पानी पाताल की ओर खिसकता जा रहा है। आदमी भूख से ऐंठ-ऐंठकर मरने लगते हैं।

... सू झूठ! जय प्रकाश नारायण नामक 'आदमी' को कोई काम तो है नहीं। अत: वह इसी तरह कभी भूदान, कभी भोटान,कभी नागालैंड, कभी कश्मीर पर बे-बात की बात करता है। अब सूखा की समस्याओं पर बात करता है और एक सर्वदलीय सभा बुलाकर सुख-सैन से सोये हुए लोगों के सूखे हृदय में 'करुणा' के ऊपर से गुजर जाती है... इतना फालतू समय और पैसे किसके पास है ?... चलो दिल्ली.. जय हिंद!?

'आदमी मर रहे हैं' खबरें आने लगीं।

'हम न मरि हैं संसारा' जिस देश के बुद्धिजीवियों का नारा हो, उस देश का तो ईश्वर ही मालिक है। यह रिपोर्ताज अपने भीतर के लेखक को कोंचकर उदासीन से सक्रिय बनाने की प्रक्रिया का गवाह है। इस रिपोर्ताज में अपनी रचना प्रक्रिया के प्रति विश्लेषणात्मक रवैया अपनाते हुए परिवेश से अपने संबंध को पुनर्जीवित करने की चेटा की है। 'ऋणजल' और 'धनजल' को एक साथ रखने में निश्चय ही 'रेणु' का कोई रचनात्मक प्रयोजन रहा होगा, यह महज शाब्दिक मनोविनोद नहीं है। रघुवीर सहाय के शब्दों में 'इन लेखों में कहानी, कविता या नाटक उस रूप में विद्यमान नहीं है। जिसमें साहित्यिक व्याख्यात उन्हें देखने के दी हो चुके हं पर इनमें यह सब है और यह प्रमाण भी है कि कोई रपट भी उतनी सर्जनात्मक हो सकती है जितनी वह रचना जो रपट नहीं है- बशर्ते की लेखक अपने व्यक्तित्व के प्रति सजग है।' इससे स्पष्ट है कि रेणु ने रिपोर्ताज को पत्रकारिता के क्षेत्र से चुना, लेकिन उसे अद्‌भुत सृजन क्षमता से भर कालातीत बना दिया। यह उनके रपटों की खासियत है कि खबरों की तरह वह सिर्फ वर्तमन में नहीं जीती, बल्कि समय के अंतराल को पार कर भविष्य में भी अपनी दखल कायम रखती हैं। रेणु समकालीन हिंदी सहित्य के एक ऐसे संत लेखक थे जिन्होंने हर जीवित तत्व में सौंदर्य का अन्वेषन किया। उन्होंने बहुत निकट से मनुष्य की पीड़ा, गरीबी और जहालत को देखा था और संभवत: इसीलिए वह उसके साथ कोई खिलवाड़ नहीं कर सके, भवानी प्रसाद मिश्र की ये पंक्तियं रेणु के समस्त रचनाकर्म कोो परिभाषित करती हैं-

'जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख।
और इसके बाद भी, हमसे बड़ तू दिख।।'

वस्तुत: यह रेणु की जनस्वीकृति का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उनका 'बोलक' और 'लेखक' एक ही 'संवेदनशील मन' है। वे अपनी पीड़ा को दूसरों पर नहींथोपते और न ही उसका प्रदर्शन कर वाहवाही लूटने क स्वांग रचते हैं उनके लिए लेखन जीवन का अविभाज्य अंग हैं। निर्मल वर्मा उनकी इस विशेषता को कुछ इस तरह से देखते हैं 'रोणु जी की इस समग्र मानवीय दृष्टि को अनेक जनवाही और प्रगतिवादी आलोचक संदेह की दृष्टि से देखते थे- कैसा है यह अजीब लेखक, जो गरीबी की यातना के भीतर भी इतना रस, संगीत, इतना आनंद छक सकता है।

सूखी परती जमीन के उदास मरुस्थल में सूरों, रंगों और गंधों की रासलीला देख सकता है। सौंदर्य को बटोर सकता है, आंसुओं को परखता है किंतु उसके भीतर में झांकती धूल-धूसरित मुस्कान को देखना नहीं भूलता- एक सौंदर्यवादी की तरह नहीं, जो सुंदरता को अन्य जीवित तत्वों से अलग करके उसका रसास्वादन करता है। रेणु एथीस्ट नहीं थे। किंतु वह हाय-हाय करते, छाती पीटते प्रगतिशील लोगों के आडंबर से बहुत दूर थे, जो मनुष्य की यातना को उसके समूचे जीवन से अलग करके अपने सिद्धांतों की लेबोरेटरी में एक रसायन की तरह इस्तेमाल करते हैं।'

अत: यह तय है कि 'समग्र मानवीय दृष्टि' के वाहक रेणु के ये स्मृति चित्र उनकी आंखों देखी पीड़ा का रूपांकन है। जिस वर्ग पर 'बाढ़' या 'सूखा' अपने अमिट निशान छोड़ जाता है। उस वर्ग की भाषिक संरचना में गालियों का एक खास महत्व है। यथा- 'गांधी मैदान (सरवा) एकदम लबालब भर गया... (अरे तेरी मतारी का) करंट में इतना जोर का फोर्स है कि (ससुरा) रिक्सा लगा कि उलटियै जाएगा... गांजा फुरा गया का हो रामसिंगार? चल जाए एक चिलम 'बालचरी-माल'- फिर यह शहर (बेटच:) डूबे या उबरे।'

समग्र रूम से कहा जा सकता है कि रेणु के ये रिपोर्ताज 'प्रत्यक्ष', 'सजीव', 'रोमांचक', 'बिंबधर्मी', 'विश्वसनीय' और 'प्रभावी' हैं, जैसा कि कलात्मक रिपोर्ताज को होना चाहिए। रिपोर्ताज को एक स्वतंत्र गद्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित करने में रेणु का अविस्मरणीय योगदान है उनके इस संकलन के विषय मेंडॉ रामचंद्र तिवारी का यह उद्धरण दृष्टव्य है- ''रेणु' में स्थितियों को शब्दों में अंकित करने की अद्‌भुत क्षमता है। स्थितियों को वे देखकर ही नहीं, पूरी तरह महसूस करके लिखते हैं। उनकी सारी इंद्रियां सहज होकर एक साथ काम करती हैं। इसलिए उनके रिपोर्ताज में स्थितियों का समग्र अनुभव उभर आता हैं।'

6.3.2 लेखन शैली

इनकी लेखन शैली वर्णनात्मक थी जिसमें पात्र की मनोवैज्ञानिक सोच को लुभावने तरीके से प्रस्तुत किया जाता था। पात्रों का चरित्र-चित्रण काफी गति से होता था। कहानी में पात्रों की सोच घटनाओं से प्रभावित होती थी। रेणु की कहानियों और उपन्यासों में एक आदिम रात्रि की महक इसका एक सुंदर उदाहरण है। उन्होंने आंचलिक जीवन की हर धुन, हर गंध, हर लय, हर ताल, हर सुर, हर सुंदरता और हर कुरूपता को शब्दों में बांदने की सफल कोशिश की है। उनकी भाषा शैली में एक जादुई असर है जो पाठकों को अपने साथ बांध कर रखता है। रेणु एक अदद्‌भुत किस्सागों थे और उनकी रचनाएं पढ़ते हुए लगता है मानो कोई कहानी सुना रहा हो। ग्रा□य जीवन के लोकगीतों का उन्होंने अपने कथा सहित्य में बड़ा ही सर्जनात्मक प्रयोग किया है। इनका लेखन प्रेमचंद की सामाजिक यथार्थवादी परंपरा का अतिक्रमण करता है। अपनी कृतियों में इन्होंने आंचलिक पदों का प्रयोग किया है।

5.3.3 साहित्यिक अवदान

इन्होंने गद्य-साहित्य की प्राय: सभी विधाओं को समृद्ध किया है। सभी विधाओं पर उनकी छाप है। 'रेणु' जन्मजात विद्रोही हैं। वे कभी और कहीं दायरे में नहीं बंधे। उन्होंने उपन्यास ही नहीं, कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, दृश्यालेख सभी के प्रचलित ढांचे को तोड़ा है। नये प्रयोग किये हैं। हां, उन्होंने यह ध्यान अवश्य रखा है कि प्रयोग, खालिस प्रयोग बनकर न रह जाए। उन्होंने रचना में जीवन के स्पंदन को सुरक्षित रखते हुए उसके ढांचे को नया आयाम देने की कोशिश की है। 'रेणु' ने गद्य को नई अर्थवत्ता और नवीन व्यंजना-शक्ति प्रदान की है। उन्होंने गद्य-भाषा को रूप, रस, गंध और स्पर्श की संवेदन से दीप्त करके पूर्णत: बिंबधारण की क्षमता प्रदान की है। 'रेणु' की सबसे बड़ी शक्ति- उनकी अत्यंत संवेदनशील मानवीय दृष्टि है। उनकी रचनाओं में यह दृष्टि सारी नैतिक वर्जनाओं का अतिक्रमण करती हुयी पात्रों की भाव-तंत्रियों को झंकृत करके उनके अंतस को उद्घाटित कर देती है। उनकी इसी दृष्टि ने उन्हें सभीतरह के आग्रहों से मुक्त रखा है। वे सर्वत्र विवेकनिष्ठ और संतुलित रहे हैं। वे सत्ता और व्यवस्था के प्रति भी निर्मम नहीं हैं। वे उसके सकारात्मक पक्ष को सामने लाने से हिचकते नहीं। उन्होंने व्यवस्था के उजास को भी देखा है। इसी दृष्टि से प्रेरित होकर उन्होंने यह लक्षित किया है कि अत्यंत पिछड़े अंचलों में भी जीवन को सीचने वाली सांस्कृतिक रस-वेलि अभी मुरझाई नहीं है। जीवन में अभी भी बहुत कुछ कोमल, सुंदर,शालीन और शेष है, जो रक्षणीय है। 'मैला आंचल' के विषय में कहे हुए उनके ये शब्द- 'इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी, मैं किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया'- उनकी लेखकीय ईमानदारी के प्रमाण हैं। यह ईमानदार सृजनधर्मिता ही वह तत्वहै, जो 'रेणु' के साहित्य को मूल्यवान और स्पृहणीय बनाया है।

5.4 रेखाचित्र : भाभी - महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में हुआ। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। घर पर पढ़ाई के लिए एक पंडित, एक मौलवी, एक कला शिक्षक तथा एकसंगीत शिक्षक का प्रबंध किया गया। सन् 1906 ई. में इनका विवाह हो गया तथा कुछ समय के लिए शिक्षा स्थगित हो गई। इन्होंने सन् 1919 ई. में प्रयाग के क्राईस्ट कॉलेज से पुन: शिक्षा प्रारंभ की। 1921 ई. में इन्होंने मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की एवं प्रांत भर में प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति भी मिली। सन् 1926 में इंटर की परीक्षा पास की। 1929 ई. में बी. ए. उत्तीर्ण किया। सन 1930 में अस्वस्थ होने के कारण सालभर के लिए अध्यन कार्य स्थगित हो गया तथा प्रयाग में अखिलभारतीय कवयित्री सम्मेलन का संयोजन किया। 1932 में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम.ए. किया। प्रयाग महिला विद्यापीठ की

प्रधानाचार्या का कार्यभार संभाला एवं 'चांद' पत्रिका का संपादन शुरु किया। 1933 में प्रयाग मे ही इनकी भेंट कवीन्द्र रवीन्द्र से हुई। इसी वर्ष इन्होंने मीरा जयंती का शुभारंभ किया। इसी समय इन्होंने कलकत्ता में जापानी कवि योग नागची के स्वागत समारोह में भाग लिया तथा शांतिनिकेतन में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ से भेंट की। 1936 में इन्होंने रामगढ़ (नैनीताल) में 'मीरा मंदिर' नाम के कुटीर का निर्माण कराया। 1942 में 'विश्ववाणी' के बुद्ध अंक का संपादन किया एवं साहित्यकार संसद की स्थापना भी की। सन् 1943 में इन्हें 'मंगला प्रसाद' पुरस्कार मिला। 1945 में इन्होंने साहित्यकार संसद के लिए गंगा किनारे रसूलाबा (प्रयाग) में एक भवन खरीदा। 1950 में साहित्यकार संसद की ओर से अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन तथा साहित्य पर्व का सफल आयोजन किया तथा तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसाद द्वारा साहित्यकार संसद में 'वाणी मंदिर' का शिलान्यास कराया।

1952 में स्वतंत्रता के बाद उ. प्र. की विधान परिषद की सम्मानित सदस्या मनोनीत हुई तथा दिल्ली में स्थापित साहित्य अकादमी की संस्थापक सदस्या के लिए भी चुनी गयी। 1955 में साहित्यकार संसद के मुख पत्र पर 'साहित्यकार' का प्रकाशन और श्री इलाचंद्र जोशी के साथ संपादन शुरू किया। साहित्यकार संसद के तत्वावधान में उत्तरापथ(ताकुला) नैनीताल में अंत: प्रादेशिक साहित्यकार शिविर का एक माह के लिए आयोजन किया। प्रयाग नैनीताल में नाट्य-संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापनी की। सन् 1956 में इन्हें भारत सरकार की 'पदम भूषण' उपाधि से सम्मानित किया गया। 1960 में सर्वसम्मति से प्रयाग महिला विद्यापीठ की कुलपति निर्वाचित की गई। 1963 में लेखिका संघ, दिल्ली की ओर से तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ राधाकृष्णन द्वारा अभिनंदित की गई। 1966 में षष्ठि प्रवेश के उपलक्ष्य में साहित्यकारों की ओर से कविवर पंत जी ने संस्मरण ग्रंथ भेंट किया। 1976 में दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डी.लिट. की उपाधि से सम्मानित की गई एवं बिहार सरकार के द्वारा भी विशेष रूप से स□मानित की गई। 1981 मेंसाहित्य अकादमी की सम्मानित सदस्यता (फेलोशिप) व 1982 मे उत्तरप्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा प्रथम 'भारत-भारती' पुरस्कार से सम्मानित की गई। 1983 में 'यामा' व 'दीपशिखा' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। 1984 में काशी हिंदू विश्वविद्यालय से डी. लिट. की उपाधि से सम्मानित किया गया। 11 सितंबर, 1987 ई. को इनका निधन हो गया तथा 1988 ई. में मरणोपरांत 'पदम विभूषण' उपाधि प्रदान की गई।

महादेवी वर्मा छायावाद युग की प्रतिनिधि कवयित्री मानी जाती हैं। इनकी कविताओं में जिज्ञासा, व्यथा, विस्मय, आध्यात्मिकत के भाव परिलक्षित होते हैं। समय के साथ ये भाव और भी

परिपक्व एव परिमार्जित होते गए हैं। इन्होंने अज्ञात प्रियतम के विरह में वेदनात्मक गीतों की सर्जना की। वे प्रिय से मिलने में विश्वास नहीं करती क्योंकि उनकी मान्यता हैकि मिलन में तो व्यक्तित्व का नाश हो जात है- 'मिलन क मत नाम ल, मैं विरह में चिर हूं।'

उनका दु:खवाद किसीसीमा तक समाज-कल्याण के भाव से परिपूरित है। यहव्यक्तिगत होकर भी समस्त समष्टि के कल्याण की भावना से संपृक्त है। महादेवी जब अपने जीवन की तुलना 'नीर-भरी दु:ख की बदली' से करती हैं तो वहां आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ लोक-कल्याण का भाव भी निहित रहता है। जिस प्रकार दीपक स्वयं जलकर संसारको आलोकित करता है उसी प्रकार महादेवी भी स्वयं साधना रूपी अग्नि में जलकर सामाजिक जीवन को अधिक सुखदएवं मंगलमय बनाना चाहती हैं।

महादेवी के रचनाओं की प्रेरणभूमि करुण और पीड़ा है। यह वेदना कहीं वैयक्तिक तो कहीं सामाजिक है। 'रश्मि' की भूमिका में महादेवी ने लिखा है- 'अपने दु:खवाद के विषय में भी दो शब्द कहदेना आवश्यक जान पड़ता है। सुख और दु:ख के धूपछाई डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दु:ख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य काकारण है। इस क्यों का उत्तर दे सकना मेरे लिए किसी समस्या को सुलझा डालने से कम नहीं है। संसार साधारणत: जिसे दु:ख और अभाव के नाम से जानता है है वह मेरे पास नहीं हैं। जीवन में मुझे दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सबकुछ मिला है, उस पर पार्थिव दु:ख की छाया नहीं पड़ी। कदाचित यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है।'

प्रेम, करुणा, वेदना के भाव ही उनकी कृतियों में सघन से सघनतर होते गए हैं। इनकी प्रथम कृति 'नीहार' है जिसका रचना काल 1924-1928 है। इसमें कवयित्री के हृदय का उद्वेलन और भावनाओं का बिखराव ही देखने को मिलता है। इसमें गंभीर चितं व्यक्त नहीं हुआ है।

'रश्मि' महादेवी के काव्य-पथ का दूसरा चरण है। स्वभावत: प्रथम की अपेक्षा सशक्त और कुछ निश्चित। 'नीहार' की भटकती हुई कवयित्री 'रश्मि' में पथ पा लेती है। उनकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति एक निश्चित पथ की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है। 'रश्मि' के गीतों में महादेवी के द्वारा मृत्यु और जीवन का दार्शनिक विनेचन प्रस्तुत किया गया है। 'नीहार' में आत्मा और परमात्मा का पृथक-पृथक अस्तित्व था। पर 'रश्मि' में आकर एक ओर त्मा और दूसरी ओर प्रकृति और परमात्मा में द्वैत का निराकरण हो गया है।

'नीरजा' इनकी काव्य-साधना की तीसरी सीढ़ीहै। इसमें 'नीहार' की अनुभूति और 'रश्मि' का चिंतन दोनों मिलाकर रचना को वयस्कता प्रदान करते हैं। 'नीरजा' में रसात्मक अनुभूतियों का उत्कर्ष और अभिव्यक्ति की सुंदरता एवं सहजता देखते ही बनती है। 'नीरजा' में आकर वे सुख-दु:ख में सामंजस्य ढूंढती हैं।

'सांध्य गीत' महादेवी के काव्य विकास की चौथी सीढ़ी है। 'प्रिय सांध्य गगन मेरा जीवन' इस संकलन की मूल कविता है। इस रचना में भाषा व छंद गौण हो जाते हैं और आत्मा के स्वर प्रधान। 'सांध्यगीत' में जहा अनेक भावं का समन्वय है वहां उसमें एक स्थिरता भी हैं। इस संग्रह में उनकी दार्शनिक एकाग्रता भी उच्च-स्तर की है। इसके गीतों पर एक रहस्यावरण सा छाया हुआ है।

'दीपशिखा' महादेवी की पांचवीं कृति हैं। स्वयं महादेवी का कथन है- 'दीपशिखा में अविश्वास का कोई बंधन नहीं है। नवीन प्रभात के वैतालिकों के स्वर के साथ इसका ध्यान रहे ऐसी कामना नहीं, पर रात की सघनता को इसकी लौ झेल सके, यह इच्छा तो स्वाभाविक ही रहेगी।'

'सप्तपर्णा' उनके चिंतन और विश्लेषण का परिणाम है। यह कृति उन्हें एक नये मोड़ पर लाकर खड़ा कर देती है। इसमें उन्होंने भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर को कुशल अभिव्यक्ति के माध्यम से हिंदी जगत के समक्ष रखा।

गद्य रचनाएं- महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, श्रृंखला की कड़िया (1942), क्षणदा (1957), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1964) ई. संभाषण 1975 ई., भारतीयसंस्कृति के स्वर (1984), संकल्पिता (1968)।

महादेवी काव्य के सीमित कलेवर में जीवन की विविधता का चित्र नहीं उकेर पायीं हैं। उसे उन्होंने गद्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पद्य की अपेक्षा गद्य कहीं अधिक भाव-प्रवण और विविधतपूर्ण है। 'अतीत के चलचित्र', 'श्रृंखला की कड़िया', 'स्मृति की रेखाएं', 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध', 'पथ के साथी', 'मेरा परिवार' आदि गद्य कृतियां हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

'अतीत के चलचित्र' और 'स्मृति की रेखाएं' में उन्होंने समाज के उपेक्षित, अभावग्रस्त तथा अत्याचार से जर्जर व्यक्तियों के अत्यंत मार्मिक चित्र प्रस्तु किये हैं। 'श्रृंखला की कड़ियां' नारी यातना पर लिखे गए महादेवी के निबंधो का संग्रह मात्र नहीं है, बल्कि वह 'नारी जागरण' का प्रामाणिक दस्तावेज है। इसमें भारतीय नारी के संघर्ष एवं उसकी अदम्य जिजीविषा का इतिहास मौजूद है। 'नारी जागरण' की लय में आकर भारतीय नारी न केवल घर-परिवार की चाहारदीवारी

को तोड़कर आत्म प्रसार करना चाहती है अपितु बौद्धिक सजगता से पुरानी संकीर्णताओं को तोड़ना चाहती है।

इस निबंध संग्रह में महादेवी का व्यक्तित्व उभरकर सामने आया है। यहां उनके कवि हृदय ने समाज की संकीर्णताओं के कारणों को समझना चाहा है। 'चांद' पत्रिका की संपादिका के रूप में उन्होंने जो संपादकीय लेख लिखेवे ही 'श्रंखला की कड़ियां' में संकलित हैं।

'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएं'उनके जीवन में आए अविस्मरणीय चरित्रों के संग्रह है। भाभी, बालिका, मां, अभागी स्त्री, लछमा आदि रेखाचित्रों में पुरुष प्रधान समाज द्वारा शोषित और उपेक्षित कई पुरुष पात्र भी इसमें मौजूद हैं।

महादेवी की रचनाओं में स्त्री-शिक्षा पर विशेष आग्रह रहा है। 'लछमा' कोभी महादेवी इलाहाबाद लाकर पढ़ाना चाहती थी। उनके 'प्रस्ताव के उत्तर में लछमा ने केवल अपने जीर्ण-शीर्ण घर की ओर देखकर सिर झुका लिया। उतने प्राणियों को वह किसके भरोसे छोड़ आती।' (अतीत के चलचित्र) अंतत: महादेवी को उसे इलाहाबाद लो का विचार छोड़ना पड़ा। उसे पढ़ाने के लिए उन्हें दूसरा जन्म लेना पड़ेगा वे ऐसा सोचती है।

उनके कथा-साहित्य में समाज में व्याप्त दरिद्र विधवाओं की दशा और अबला जीवन की विवशता है। टूी देह और फूटे भाग्य लिए उनके पात्र जीवन के प्रति आस्था रखने वाले हैं। भाभी के पास विधवा जीवन के आंसू हैं तो भक्तिन के पास जुल्म से लड़ने की शक्ति। मुन्नू की भाई सामाजिक मान्यताओं क विरोध करते हुए परिश्रम को महत्व देती है चीनी देश-प्रेम की मिसाल प्रस्तुत करता है तो ठकुरी बाबा लोक संस्कृति के महत्व को बताते हैं। ये सभी तकलीफों से न पराजित होने वाले मानव है। ये अपने अभावों में जीते हैं और गरीब को जीने की दृष्टि देते हैं। महादेवी ने इनके कष्टों को निकट से देखा और महसूस किया है। महादेवी अपनी तरफ से जितना संभव होताहै उनकी सहायता भी करती है।

'पथ के साथी' के प्रथम संस्करण में महादेवी जी ने कवि रवीन्द्र का स्मरण किया है। कवि रवीन्द्र युग प्रवर्तक माने गए हैं। उस युग के प्राय: सभी लेखक रवीन्द्र से प्रभावित एवं प्रेरित हुए। महादेवी कहती हैं- 'उस साहित्यकार अग्रज ने अनजाने में ही हमारे छोर मे अपना उत्तराधिकार बांधकर विदा ली है। दीपक चाहे छोटा हो चाहे बड़ा सूर्य जब अपना आलोकवादी कर्तव्य उसे सौंपकर चुपचाप डूब जाता है तब जब उठना ही उसके अस्तित्व की शपथ है- जब उठना ही उसका जाने वाले को प्रणाम है।' महादेवी ने अपनी सृजन यात्रा में उनसे बहुत कुछ सीखा।

उन्होंने न अपने युग के रचना नायकों और युग नायकों का चाटुकारिता पूर्ण गुणगान किया, न ही अधिक बढ़ा-चढ़ा कर प्रशंसा की है। केवल उनके गुणों को ध्यानपूर्वक देख, उनका साक्षात्कार किया और अपनाया। 'पथ की साथी' ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, बल्कि यह स्मृति की ऐसी साहित्य सृष्टि है जो हिंदी गद्य की एक अमूल्य रचना के रूप में महत्वपूर्ण है।

महादेवी ने सांस्कृतिक,सामाजिक और साहित्यिक विषयों पर अनेक निबंधों की रचना की है। इन निबंधों में उन्होंने प्राचीन वाङ्मय का खुलकर प्रयोग किया है। समकालीन समस्याओं के प्रति ध्यान आकष्ट करना इन निबंधों की विशेषता है। इन निबंधों में उन्होंने पारंपरिक सोच से हटकर नवीन बोध जागृत करने की कोशिश की है। ये निबंध उनकी मानसिक एवं बौद्धिक चेतना का परिचय देते हैं।

महादेवी का प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग था। प्राकृतिक सौंदर्य तथा पशु-पक्षियं से निकटता उनके संस्मरणों की धुरी रही है। 'मेरा परिवार' पशु-पक्षियों से संबंधित महादेवी के संस्मरणों का संग्रह है। उन्होंने इनके माध्यम से यह संदेश दिया है कि व्यक्ति और प्रकृति का सहअस्तित्व ही मानव-समाज के लिए श्रेयस्कर है। उन्होंने दैनिक जीवन से लेकर साहित्यिक जगत तकपशु-पक्षियों को जैसी महत्ता प्रदान की, वह अद्वितीय है। महादेवी का समूचा गद्य-साहित्य जीवन, समाज तथा साहित्य के विविध संदर्भों का महाकाव्यात्मक लेखा जोखा है। पीड़ितों एवं वंचितों की पक्षधर होने के कारणये रचनाएं तत्कालीन समाज का प्रामाणिक दस्तावेज कही जा सकती हैं।

5.4.1 भाभी

रेखाचित्र अंग्रेजी के स्केच (SKETCH) का पर्यायवाची है परंतु स्केच शŽद मूलतः चित्रकला का शब्द है। स्केच उन चित्रों को कहे हैं जिनमें केवल रेखाओं के माध्यम से एक भावात्मक चित्र प्रस्तुत किया जाता है। उनमें न रंगों की छटा होती है, न वातावरण की पृष्ठभूमि पर बल, साधारण-सी संक्षिप्त रेखाओं द्वाराा इच्छित व्येक्ति का ऐसा चित्र उपस्थित किया जाता है जिसे देखकर संपूर्ण व्यक्तित्व उभर सके। अतः सरलता, संक्षिप्तता एवं वस्तुनिष्ठता रेखाचित्र की विशेषताएं हैं। यही कार्य जब हम रेखाओं के द्वारा न करके शब्दों के द्वारा करते हैं तो उसे शब्दचित्र या रेखाचित्र (साहित्यिक) कहते हैं। यहां शब्द रेखाओं का कर्य करते हैं। डॉ नगेन्द्र के अनुसार-

'जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसका साथ आयी अर्थात रेखाचित्र शब्द एक ऐसी विधा के लिए प्रयुक्त होने लगा जिसमें रेखाएं हा परंतु शब्द रूप में। कथानक का उतार-वढ़ाव न हो, तथ्य का उद्‌घाटन मात्र है।'

डॉ भगीरथ मिश्र रेखाचित्र के स्वरूप पर विचार करते हुए कहते हैं-'अपने संपर्क में आए किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगाने वाली सामान्य घटना से युक्त किसी मर्मस्पर्शी चरित्र को देखी-सुनी या संकलित घटना की पृष्ठभूमि मं इस प्रकार उभारकर दिखाना कि उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाए रेखाचित्र या शब्द चित्र कहलाता है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि रेखाचित्रों में प्रमुखत: किसी प्रतिनिधि चरित्र के हृदयग्राही स्वरूप को संक्षिप्त घटनाओं के माध्यम से उभारने का प्रयत्न किया जाता है। अत: रेखाचित्र कहानी और संस्मरण की कतिपय विशेषताओं को अपने रचना संसार में समाहित कर लेता है, इसमें कहानी के चरम विकास की उत्सुकता न होकर संस्मरण की आत्मीयता ही अधिक रहती है। रेखाचित्र की सीमाएं निश्चित हैं। उसे कम शब्दों में संक्षिप्त रूप-विधान और छोटे-छोटे वाक्यों में अधिक से अधिक तीव्र और मर्मस्पर्शी भाव व्यंजना करनी पड़ती है। संक्षेप में रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना का वह मर्मस्पर्शी एवं भावमय रूपविधान है जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि निजनीप उड़ेल कर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है। जिस प्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलात्मक संस्पर्श से चित्रपटल पर अंकित कुछ उभरी रेकाओं को संवारकर एक सजीव रूप प्रदान कर देता है उसी प्रकार एक रेखाचित्रकार मानस पटल पर विश्रृंखलित रूप से बिखरी हुई स्मृति की रमणीय रेखाओं को स्वानुभूति की तूलिका के रंगों में रंग कर जीते-जागते शब्दचित्र प्रस्तुत करता है। महादेवी जी के रेखाचित्र इस मामले में विशिष्ट हैं कि वे संस्मरणात्मक हैं जैसा कि स्मृति-चित्र की भूमिक में उन्होंने लिखा है- 'रेखाचित्र के साथ लेखक का संबंध चित्र और चित्रकार के संबंध के समान है जिसमें चित्र का आधार चित्रकार की दृष्टि से ही महत्व पाता है। दो चित्रकार एक ही वस्तु के दो ऐसे भिन्न चित्र आंक सकेत हैं जिनमें एक में चित्रित वस्तु महत्वपूर्ण हो उठे और दूसरे में महत्वहीन। संस्मरण में स्मृति का सामंजस्यपूर्ण पुन: अवतरण है। अत: इसमें हमारी मानसिक क्रियाएं अधिक सक्रित होकर ही स्मृति के आधारों से हमें एक आत्मीय संबंध में जोड़ती हैं।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि अतीत की दुखत स्मृतियां भी पुनर्जीवन पाकर सुधद अनुभूति का कारण बन जाती हैं। अतीत कथाएं इसी से नित्य रसमयी हैं। स्मृति के आधार, जब समय का दीर्घ व्यवधान पार कर लौटते हैं, तब हमें मित्र-मिलन की विस्मयमयी सुधद अनुभूति होती है। संस्मरण में तटस्थता का प्रश्न नहीं उठता। रेखाचित्र के समान व्यंग्य घटना या व्यक्ति का महत्व भी लेखक की दृष्टि पर निर्भर नहीं रहता, क्योंकि महत्वहीन वस्तुओं और व्यक्तित्व से उसके संबंध पर समय विस्म-ति की कई परतें बिछा चुका होता है। संस्मरण पुरातत्व का उत्खनन नहीं है, जिसमें आश्चर्यजनक तथा अपरिचित सामग्री मूल्यांकन या अनुमान के लिए प्राप्त होती है। संस्मरण में हम अपनी स्मृति के आधारों पर से समय की धूल पोंछ-पोंछ कर उन्हें अपने मनोजगत के निभृत कक्ष में बैठाकर उनके साथ जीवित रहते हैं और अपने आत्मीय संबंधों को पुन: जीवित करते हैं। इस स्मृति-मिलन में मानो हमारा मन बार-बार दोहराता हैं- हमें आज भी तु□हारा अभाव है। अन्य आत्मपरक विधाओं में वर्तमान अतीत की ओर चलता है, किंतु संस्मरण में अतीत समय का अंधकार पार कर वर्तमान में लौटना है। मेरे संस्मरण उन स्मरणीयों का स्मरण है, जिनके अभाव

की मुझे तीव्र अनुभूति होती है, चाहें वे मनुष्यों हो चाहे पशु-पक्षी।' स्मृति चित्रों में संकलित, मेरे संगी के अंतर्गत लिखा गया 'भाभी' नामक रेखाचित्र महादेवी जी के रेखाचित्रों में अप्रतिम है. भाभी से जुड़ी लेखिका की स्मृतियां शब्द संकेतं द्वारा उनकी मानसिक क्रिया से एकाकार होकर शब्द रूप में कुछ इस प्रकार ढल जाती हैं कि भाभी अनायास ही हमारे स□मुख सजीव रूप में उपस्थित हो जाती है। भाभी की करुण, कोमल काया का वर्णन करते हुए महादेवी जी लिखती है, 'छोटे गोल मुख की तुलना में कुछ अकि चौड़ा लगने वाला, पर दो काली रुखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को एक साथ अपने भीतर बंद कर लेने का प्रयास-सा करती हुई, लंबी बरौनियों वाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई-सी आंखें, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी-सी नाक और मानों अपने ऊपर छपी हुई हंसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहने वाले ओठ समय के प्रभाव से फीके भर हो सके हैं, घुल नहीं सके।

घर के सब उजले-मैले, सहज-कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा-जालसे गुंथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न-सा करती हुई, कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियां, काली रेखाओं में जड़े कंतिहीन नखों से कुछ भारी जान पड़ने वाली पतली उंगलियं, हाथों का बोझ संभालने में भी असमर्थ-सी दुर्बल, रूखी पर गौर बांहें और मारवाड़ी लहंगे केभारी घेरे से थकित-से, एक सहज-सुकुमारता का आभास देते हुए, कुछ लंबी उंगलियों वाले दो छोटे-छोटे पैर, जिनकी एड़ियों में आंगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर-सी लगती थी, भुलाए भी कैसे जा सकते हैं ?'

उपर्युक्त शब्दचित्र सिर्फ भाभी की तस्वीर ही नहीं प्रस्तुत करता अपितु तत्कालीन हिंदू समाज में बाल विधवा की बेबस, करुण एवं बेचैन करने वाली दास्तान है। रेखाचित्रकी यह विशेषता है कि वह पाठक के स्मृति पटल पर न भूलने वाला प्रभाव अंकित कर सके और भाभी का यह शब्दचित्र बिना किसी प्रचार या नारे के पाठक के अंतजर्गत में न केवल अपनी जगह बनाता है, बल्कि उसे तीव्र अकुलाहट से भर देता है। अत: बिना किसी कोशिश के हम महादेवी जी के बचपन की संगी भाभी के घर की अंधेरी चारदीवारी का हिस्सा बन जाते हैं। कल्लू की मां चाहे महादेवी के लिए विशेष जंतु रही हो, जिसकी बात कहकर बच्चों को डराया जाता है पर निरीह आंखों की स्वामिनी भाभी से परिचय करने का श्रेय उससे नहीं छीना जा सकता है।

जाति, बिरादरी, मर्यादा, संयम जैसे भारी-भरकम शब्दों के बोझ तले किशोरी विधवा बिना किसी संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, समाधि जैसे घर में, मानो निरंतर वृद्धा होने की साधना मे लीन थी। प्राय: निराहार और निरंतर मिताहार से दुर्बल देह से भाभी कितना परिश्रम करती थी। यह बचपन में भी लेखिका से छिपा न था। बालिका के अंतर्मन की गहन पीड़ को महादेवी जी ने इस रेखाचित्र में हमारे सम्मुख अनावृत कर दिया है।

स्वाधीनता से पूर्व श्रृंखला की कड़ियों को तोड़ने की छटपटाहट एवं संस्तानों से टकराती हुई स्त्री जहां महादेवी जी के रचना संसार का अभिन्न हिस्सा है वहीं भाभी क आर्त मौन क्रंदन हिंदू समाज की बाल विधवा का जीवंत दस्तावेज है। भाभी निरक्षर थी अत: स्त्री अधिकारों से जुड़ी प्रखरता उसके व्यक्तित्व में न थी। उसका जीवन तो जैसे ौचका-बरतन, कूटना-पीसना, खंडहर जैसे घर और लंबे-चौड़े आंगन को बुहारना, कुएं से पानी काढ़ना एवं मैले कपड़ों को काठ का मोंगसी से पीटकर साफ करना एवं अंधेरी रसोई की कोठरी के घुटते हुए धुएं में खुद को दफन कर देने के लिए हुआ था।

बूढ़े सेठ जब सबके मना करते-करते भी इसे अपने इकलौते लड़के के लिए ब्याह लाओ और वह लड़का बिना किसी बीमारी के मर गया तो यह बाल विधवा बिना किसी प्रतिरोध अपने वृद्ध ससुर के अनुशासन के सम्मुख समर्पण कर देती है। वृद्ध सेठ की सौभाग्यवती पुत्री जब कभी नैहर आती थी, तो उसके जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर लंबे काले निशान और पैरों पर पड़े नीले दाग घरेलू हिंसा व शोषण सहने को मजबूर, बेसहारा, असहाय बाल विधवाओं की शोचनीय जीवन स्थितियों को उद्घाटित करती है। विधवाओं के जीवन में रंगों का प्रयोग उस समाज में अकल्पनीय था। तमाम निषेधों में एक और निषेध। अत: भाभी सदैव सफेद ओढ़नी और काला लहंगा या काली ओढ़नी और सफेद बूटदार कत्थई लहंगा ही पहनती थी, जबकि उसकी सौभाग्यवती नंद वृद्ध ससुर से हत तीज-तौहारपर सुंदर रंगीन कपड़े उपहार स्वरूप पाती ती। रंगों का यह निषेध भाभी पर तब गाज बन गिरा, जब लेखिका ने रंगीन ओढ़नी बनाकर, चुपचाप, छिपाकर, दबे पांव जाकर, तीज के दिन भाभी के सिर पर डाल दी, आश्चर्य नहीं कि वह क्षण बर के लिए अपनी स्थिति भूल गयी, वैधव्य बिसर गया (जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे) और एक बेसुधपन में उसे ओड़ वह खिलखिला पड़ी, 'बिंदनीश सुनकर जब उस अबोध बाल विधवा की सुख लौटी सब क्रोध से जलते अंगारे कैसे वज्र बन भाभी पर टूटे इसकी स्मृति भी शरीर की कोशिकाओं में रक्त कोो जमाने के लिए काफी है क्योंकि संयम एवं मर्यादा के नाम पर क्रूरता का ऐसा नग्न प्रदर्शन किसी भी सभ्य समाज में अन्यत्र दुर्लभ है। क्षण भर के लिए जो रंग भाभी की आंखों में दिखे उन्होंने भाभी के जीवन लेख पर विषाद काा गाढ़ा रंग पोत दिया। उस एक छोटी-सी घटना से बालिका प्रौढ़ हो गयी और युवती वृद्धा। इंदौर छोड़ने के बाद अनेक वर्षों के उपरांत पता चला कि भाभी की रक्षा का भार संसार को सौंपकर वृद्ध ससुर बैकुं सिधार चुके हैं परंतु इस निर्मम संसार ने उस बाल विधवा की रक्षा कैसे की यह आज भी अज्ञात है। रंगीन कपड़ों के प्रति आसक्त एक भारतीय बाल विधवा के लिए कितना अक्षम्य अपराध है। यह इस इक्कीसवीं सदी में भी कट्टक हिंदू आचार संहिता पर प्रश्नचिह्न लगाता है।

5.4.2 भाषा शैली

इस रेखाचित्र के विकास के मूल में, स्मृति की महत्वपूर्ण और क्रियाशील भूमिका है। मनुष्य के व्यक्तित्व की रचना करने वाली बौद्धिक और रागात्मक क्रियाएं और उनसे जुड़े संस्कार स्मृति में ही संरक्षित रहते हैं। मनुष्य के मनोजगत का निर्माण अनेक अंतर बाह्य तत्वों से मिलकर हुआ है। पर उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम सदैव भाषा ही रही है। इस मारवाड़ी विधवा बहू से तुड़ी महादेवी जी की व्यक्तिगत अनुभूति शब्द-संकेतों द्वारा ही संपन्न हुई है। भाषा की सारी शक्तियां लेखिका की मानसिक क्रिया से एकाकार होकर शब्द रूप में ढल गयी हैं। चित्रण प्रधान कलात्मक गद्य का स्वरूप इस रेखाचित्र को मानवीय संवेदना एवं भाव परिधि का बाहक बनाकर विशिष्ट बनाता है। साधारण शब्द समाज की इन बिसरी हुई विधवाओं के जीवन को किस तरह महादेवी जी के सहानुभूति की परिधि में लाकर उनके संसार में पाठक को प्रवेश देते हैं। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है, 'काम चाहे कैसा ही कठिन रहा हो, शरीर चाहे कितना ही कलंत रहा हो, मैंने न कभी उसकी हंसी से आभासित मुख-मुद्रा में अंतर पड़ते देखा और न कभी काम रुकते देखा और इतने काम में भी उस अभागी का दिन द्रौपदी के चीरसे होड़ लेता था। सवेरे स्नान, तुलसी-पूजा आदि में कुछ समय बिताकर ही वह अपने अंधेरे रसोई घर में पहुंचती थी, परंतु दस बजते-बजते ससुर को खिला-पिलाकर, उसी टाट के परदे सें मुझे शाम को आने का निमंत्रण देने के लिए स्वतंत्र हो जाती थी। उसके बाद चौका-बर्तन, कूटना-पीसना भी समाप्त हो जाता, परंतु तब भी दिन का अधिक नहीं तो एक प्रहर शेष रह ही जाता था। दुकान की ओर जाने का निषेध होने के कारण, वह अवकाश का समय उसी टाट के परदे के पास बिता देती थी, जहां से कुछ मकानों के पिछवाड़े और एक-दो आते-जाते व्यक्ति ही दिख सकते थे, परंतु इतना ही उसकी चंचलता का ढिंढोरा पीटने के लिए पर्याप्त था।'

संक्षिप्त, तीखी और धारदार भाषा ने इस रेखाचित्र को चलचित्र की-सी गति प्रदान की है। अल्पविरामों का इस्तेमाल अनेक क्रिया व्यापारों को जोड़ने के लिए किया गया है। विश्मयबोधक चिह्न एवं अंतरल ने इस शब्द चित्र को नाटकीय संभावना से युक्त किया है और अधूरे वाक्यों का प्रयोग इस बाल 'बिंदनी' के अनिश्चित भविष्य की ओर संकेत करता है।

'प्राय: सोचती हूं- जब वृद्ध ने कभी न खोलने के लिए आंखें मुंद ली होंगी, तब वह, जिसे उन्होंने संसार की ओर देखने का अधिकार ही नहीं दिया था, कहां गयी होगी।

और तब-तब न जाने किस अनिष्ट संभावना से, न जाने किस अज्ञात प्रश्न के उत्तर में मेरे मन की सारी ममता आर्त-क्रंदन कर उठती है नहीं नहीं...।'

उन्नीस वर्ष की इस युवती की दयनीयता महादेवी जी की अनुभूति के सांचे में ढल इस शब्द चित्र को अद्‌भुत, अनूठेपन से भर देती है और भाभी जिसके जीवन के सुनहरे स्वपन गुड़ियों

के घरौंदों के समान नष्ट हो, उसे एकाकी छोड़ गए, उन अधूरे स्वप्नों की कथा हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहरके रूप में आज भी हमें चमत्कृत करती है। यह मारवाड़ी विधवा सिर्फ एक स्त्री न होकर उस समाज में विधवाओं के प्रतिनिधि चरित्र के रूप में उभरती है और उसका मौन-क्रंदन भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति पर बेबाक टिप्पणी है। महादेवी जी के रेखाचित्र का आकलन करते हुए डॉ रामचंद्र तिवारी का यह उद्धरण दृष्टव्य है- 'महादेवी की स्मृत्याधृत संवेदनशील चित्र रचना तो हिंदी गद्य-साहित्य में एक नवीन कला-विधा की अवतारणा है। चित्र-रचना करते हुए, स्वयं चित्रित हो जाना और चित्र को अपनी संवेदना से सिक्त करके प्राणवान बना देना, महादेवी की अनुपम कला-साधना का प्रतीक है। महादेवी ने सामान्यजनों को चित्रित करके विशिष्ट बना दिया है और विशिष्ट जनों को आकार देरक, उनके भीतर अनुस्यूत मानवीयता के सामान्य-धरातल को लत्रित करके साहित्य रस की सार्वजनिकता को समर्थन प्रदान किया है। सबसे बड़ी बात है- मानवीय संवेदना और भावपरिधि काा विस्तार। यह विस्तार ही मनुष्य की मनुष्यता की पहचान है। मनुष्ट इसलिए मनुष्य है कि वह जड़-चेतन, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी को अपना महत्व और स्नेह दे सकता है। सभी के प्रति द्रवीभूत हो सकता है। सभी को अपनी भाव-परिधि में लाकर व्यक्तित्व प्रदान कर सकता है। महादेवी जी को हम मनुष्यत्व की इसी उच्चतर भूमि पर प्रतिष्ठित पाते हैं।'

इस रेखाचित्र में कम से कम शब्दों में मारवाड़ी बाल विधवा (भाभी) का मर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है। इसकी विशेषता विस्तार में नहीं अपितु तीव्रता में है। यह पूर्ण चित्र नहीं है अपितु कुछ घटनाओं को एक निश्चित दृष्टि-बिंदु से प्रतिबिंबित किया गया है, जिसमें विवरण महत्वपूर्ण न होकर संवेदन प्रधान है। दृष्टि की सूक्ष्मता तथा अधिक से अधिक अभिव्यक्त करने की तत्परता रेखाचित्रकार को शब्दों और वाक्यों से परे भी बहुत कुछ संकेतित करने की सामर्थ्य से युक्त करती है। कहते हैं निर्मल जल के पुष्कर में तट के वृक्ष प्रतिबिंबित होते हैं, किंतु शैवाल, रजकण आदि से आच्छादित जल प्रतिबिंब ग्रहण नहीं करता। अभागिनी भाभी के जीवन-सरोवर में तदयुगीन समाज अपनी पूरी क्रूरता एवं निर्मम हस्तक्षेप के साथ प्रतिबिंबित हुआ है। अबला जीवन का यह मार्मिक रेखाचित्र अपनी दुखभरी कहानी से हमें आंदोलित ही नहीं करत वरन हमारी अनुभूतियों के संसार में अपना विशिष्ट स्थान बनाता है लेखिका के ही शब्दों में-

'हरसिंगार झरते हैं झर झर।

आज नयन आते क्यों भर-भर।।'

5.9 मुख्य शब्दावली

तमाशबीन : तमाशा देखने वाला, ऐयास।

यायावर: हमेशा घूमते रहने वाला।

टटकापन : ताजापन, कोरापन।

इतिवृत्तात्मकता : घटना प्रधान, वर्णनात्मक।

उद्रेक : प्रचुरता, आरंभ।

प्लावित : डूबना।

जहालत : अज्ञान, मूर्खता।

उजास : उजाला, रोशनी।

निभृत : छिपा हुआ, गुप्त।

विस्मयकारी : आश्चर्य से भरा।

तूलिका : चित्रकारों की रंग भरने की कूची।

सहअस्तित्व : सहजीवन।

अधीत : जिसने अध्ययन पूरा कर लिया हो।

चस्पां : चिपका हुआ, उपयुक्त।

तारिका : अभिनेत्री, ताड़ी।

5.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. 7 मार्च, 1911
2. 1925 में पंजाब में
3. सन् 1945 में
4. सन् 1951 में
5. सन् 1969 में
6. सन् 1953 में
7. एक बूंद सहसा उछली
8. पं. जवाहर लाल नेहरू
10. अज्ञेय
11. 4 मई, 1921 को
12. सन् 1954 में
13. रामरतनराय

14. फ्रांसीसी भाषा का
15. दो
16. 1966 में
17. 1907 ई. में उत्तर प्रदेश के फर्रूखाबाद जिले में
18. सन् 1936 में
19. सन् 1944 में
20. सन् 1976 में
21. 11 सितंबर, 1987 ई. को
22. सन् 1924-1928
23. मारवाड़ी बाल विधवा (भाभी) का
24. 21 जुन, 1912 ई. में
25. 17 एकांकी संग्रह
26. स्त्री जीवन एवं उससे जुड़े प्रश्न
27. शरतचंद्र के जीवन पर
28. 20 वीं सदी के तीसरे दशक में
29. 1930 के आसपास
30 कस्तूरी
31. 'मैं' की शैली में
32. ज्ञान को
33. 10 उपन्यास
34. 'चाक' उपन्यास में
35. 34 भाषाओं पर
36. 150 ग्रंथों की
37. 9 अप्रैल, 1893 को
38. यूरोप की
39. 1918 ई. में
40. 1939 में

5.11 अ□यास हेतु प्रश्न

लघु-उत्तरीय प्रश्न

1. 'अज्ञेय' का यात्रा साहित्य किन दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं ?

2. तीर्थाटन का क्या उद्देश्य है ?

3. यात्रा-संस्मरण में गति के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

4. 'रिपोर्ट' किसे कहते हैं ?

5. फणीश्वरनाथ रेणु की लेखन शैली को स्पष्ट कीजिए।

6. महादेवी की गद्य रचनाएं बताइए।

दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

1. 'परशुराम से तूरखम' यात्रावृत्तांत की मूल संवेदना को स्पष्ट करते हुए अज्ञेय की लेखन शैली की विशेषताएं बताइए।

2. 'ऋणजल-धनजल' प्राकृतिक आपदाओं का ऐतिहासिक दस्तावेज है'- कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।

3. फणीश्वरनाथ रेणु की लेखन शैली को स्पष्ट करते हुए उनके साहित्यिक अवदान का वर्णन कीजिए।

4. रेखाचित्र के तत्वों के आधार पर 'भाभी' का मूल्यांकन कीजिए।

5. विष्णु प्रभाकर के संस्मरण 'यादों की तीर्थयात्रा' के आधार पर जैनेन्द्र कुमारके व्यक्तित्व की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

6. आत्मकथा का स्वरूप स्पष्ट करते हुए 'गुड़िया भीत गुड़िया' का आत्मकथा के तत्वों के आधार पर मूल्यांकन कीजिए।

7. महापंडित राहुल सांकृत्यायन की चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए उनके साहित्यिक योगदान का वर्णन कीजिए।

5.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, *हिंदी गद्य विन्यास और विकास,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. रवीन्द्रनाथ मिश्र, *इक्कीसवीं सदी का हिंदी साहित्य,* लोकभारती प्रकाशन।

3. महीप सिंह, विष्णु प्रकाकर, *व्यक्ति और साहित्य,* अभिव्यंजना प्रकाशन।

4. अज्ञेय, *आधुनिक हिंदी साहित्य,* राजपाल एंड संस, नई दिल्ली।

5. डॉ विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, *समकालीन हिंदी कविता,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

6. डॉ. शिवकुमार शर्मा, *हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियां।*

Institute of Distance Education

Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 | Ide Rgu | Ide Rgu | helpdesk.ide@rgu.ac.in